सुलभ-साहित्य माला

बाईसवाँ पुष्प

शरत्-साहित्य

श्रीकान्त

(चतुर्थ पर्व)

२२

अनुवादकर्ता

कमल जोशी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बम्बई-४

एक रुपया पचास नये पैसे

पाँचवीं बार

जनवरी, १ ९[illegible]

प्रकाशक : यशोधर मोदी, मैनेजिंग डायरेक्टर,
हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, हीराबाग, बम्बई-४
मुद्रक : ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी (बनारस) ५०८९-१०

श्रीकान्त

चतुर्थ पर्व

अबतकका मेरा जीवन एक ग्रहकी तरह ही बीता, जिसको केन्द्र बनाकर घूमता रहा हूँ, उसके निकटतक न तो मिला पहुँचनेका अधिकार और न मिली दूर जानेकी अनुमति। अधीन नहीं हूँ, लेकिन अपनेको स्वाधीन कहनेकी शक्ति भी मुझमें नहीं। काशीसे लौटती हुई ट्रेनमें बैठा हुआ बार-बार यही सोच रहा था। सोच रहा था कि मेरी ही किस्मतमें बार-बार यह क्यों घटित होता है! मरते दमतक अपना कहने लायक क्या किसीको भी न पा सकूँगा! क्या इसी तरह जिन्दगी काट दूँगा! बचपनकी याद आई। दूसरोंकी इच्छासे दूसरोंके घरमें वर्षों बाद वर्ष रहकर इस शरीरको तो कैशोरसे यौवनकी ओर आगे बढ़ाता रहा, लेकिन, मनको न जाने किस रसातलकी ओर खदेड़ता रहा। आज बार-बार पुकारनेपर भी उस छिपे हुए मनकी ओर आहट नहीं मिलती, हालाँ कि कभी-कभी क्षीण कण्ठका अनुसरण कानमें आ लगता है, फिर भी, बिना जोरके नहीं पहचान पाता कि वह अपना ही है,—विश्वास करते डर लगता है।

यह समझकर ही यहाँ आया हूँ कि आज मेरे जीवनमें राजलक्ष्मी मृत है। नदी-किनारे खड़े होकर विसर्जित प्रतिमाके अन्तिम चिह्नतकको अपनी आँखोंसे देखकर लौटा हूँ —आशा करनेका, कल्पना करनेका, अपनेको धोखा देनेका कोई भी सूत्र शेष रखकर नहीं आया हूँ। उस तरफ सब शेष हो गया है, निश्चिन्त हो गया हूँ, पर यह शेष कितना शेष है, यह किससे कहूँ और कहूँ ही क्यों!

पर कुछ दिनका ही तो जिक्र है। कुमार साहबके साथ शिकार खेलने गया। दैवात् पियारीका गाना सुननेके लिए बैठा, बैठते ही महफ़िलमें कुछ ऐसा मिला

जो जितना आकस्मिक था उतना ही अपरिसीम। न अपने गुणसे पाया और न अपनी गलतीसे खोया ही, फिर भी आज स्वीकार करना पड़ा कि मैंने उसे खो दिया —मेरे संसारमें सब मिलाकर क्षति ही शेष रही। जा रहा हूँ कलकत्ते, पर वासना फिर एक दिन बर्मा पहुँचायेगी। लेकिन यह मानों पुजारीका घर लौटना है। घरका चित्र अस्पष्ट, अप्रकृत है,—सिर्फ पथ ही सत्य है। ऐसा लगता है मानों इस पथपर चलनेका कोई अन्त नहीं।

"अरे, यह तो श्रीकान्त है!"

यह ख्याल ही न था कि गाड़ी स्टेशनपर रुकी है। देखता हूँ कि हमारे गाँवके बाबा रांगा दीदी तथा सत्रह अठारह सालकी एक लड़की,—तीनों गर्दन सिर और कन्धोंपर गठरी-पोटली लादे प्लेटफार्मसे दौड़ लगाते आये और खिड़कीके सामने आकर एकाएक थम गये। बाबा बोले "उफ़, कैसी भीड़ है! कहीं एक सुईके अनेकी भी गुंजाइश नहीं वहीं तीन-तीन आदमी हैं! तुम्हारा डब्बा तो काफी खाली है चढ़ आवें!" "आइये," कहकर दरवाजा खोल दिया। वे तीनों जने ठेलते-ठालते ऊपर आये और जितना सामान था नीचे रख दिया। बाबाने कहा, "यह शायद ज्यादा किरायेका डब्बा है, दण्ड तो नहीं देना पड़ेगा!"

मैंने कहा, "नहीं मैं गार्डसे कह आता हूँ।"

गार्डको इत्तिला दे अपना कर्तव्य पूरा कर जब लौटा, तब वे लोग निश्चिन्त हो आराममें बैठे थे। गाड़ीके छूटनेपर रांगा दीदीने मेरी ओर नजर डाली, और चौंककर कहा "तुम्हारा यह कैसा शरीर हो गया है श्रीकान्त! सारा मुँह सूखकर एकदम लम्बा-सा हो गया है कहाँ थे इतने दिन! कुछ भी हो, तुम अच्छे तो हो! कहते गये एक चिट्ठीतक नहीं दी! घरवाले सब सोच-फिक्रमें मरे जाते हैं!"

इस तरहके प्रश्नोंके उत्तरकी कोई आशा नहीं करता, कारण न मिलनेपर कुछ भी नहीं मानता।

बाबाने बताया कि तीर्थ करनेके लिए वह नजदीक गया धाम आये थे और यह लड़की उनकी सगी भानजी है,—चार हजार रुपये गिन देनेको तैयार है लेकिन फिर भी अबतक कोई योग्य पात्र नहीं जुटा। मानती ही न थी इसलिए साथ लाना पड़ा। हूँ, पेटकी ढोंढ़ी तो गोल बैठी—

क्योंजी, पूछता हूँ कि वहाँका बर्तन भूल तो नहीं आई।—हाँ तो पत्तेपर रख दो —दो-चार पेड़े, थोड़ा दही,—पेड़ा दही तुमने कभी खाया न होगा भैया, कसम खाकर कह सकता हूँ। नहीं नहीं, हरिद्वारके पानीसे पहले हाथ धो डालो, पूँटू, ऐरे-गैरोंको तो दे नहीं रही हो,—ऐसे लोगोंको कैसे देना चाहिए यह सीखो।"

पूँटूने पथ्य आदेश कर्तव्यका यथाव पालन किया। अतएव, ट्रेनमें ही असमयमें अयाचित दही-पेड़े मिल गये। खाते हुए सोचने लगा कि मेरे ही भाग्यमें सारी अनहोनी घुमा करती है, तो इस बार कहीं पूँटूके लिए मैं ही हजार रुपयेकी कीमतका पात्र न चुन लिया जाऊँ। यह खबर उन्हें पहली बार ही मिल गई थी कि मैं बर्मामें अच्छी नौकरी करने लगा हूँ।

राँगा दीदी बहुत ज्यादा स्नेह करने लगीं, और आत्मीय ज्ञानकी वजहसे पूँटू भी घंटेभरमें ही घनिष्ठ हो गई, क्योंकि, मैं कोई दूसरा तो था नहीं।

लड़की अच्छी है। साधारण गृहस्थ घरानेकी, रंग गोरा तो नहीं था लेकिन देखनेमें सुन्दर थी। ख्याल यह हुआ कि बाबा उसके गुणोंका बखान खतम ही न कर पा रहे थे। लिखने-पढ़नेके बारेमें राँगा दीदीने कहा, "वह ऐसी सुन्दर चिट्ठी लिख सकती है कि आजकलके तुम्हारे नाटक और नॉविल भी हार मान जायें। उस घरकी नन्दरानीको एक ऐसी चिट्ठी लिख दी थी कि जमाई महाशय सात दिनके बजाय पन्द्रह दिनकी छुट्टी लेकर आ पहुँचे।"

[illegible] उल्लेख किसीने इंगितसे भी नहीं किया जैसे उस तरहकी कभी कोई बात हुई थी, यह किसीको मालूम नहीं।

दूसरे दिन गाँवके स्टेशनपर गाड़ी ठहरी तो मुझे भी उतरना पड़ा। उस वक्त करीब दस बजे थे। ठीक वक्तपर स्नानाहार न होनेपर पित्त भड़क उठनेकी आशंकासे वे दोनों जने चिन्तित हो उठे। मकान पहुँचनेपर मेरी खातिरदारीकी सीमा न रही। पाँच-सात दिनके अन्दर ही गाँव-भरमें किसीको यह सन्देह न रहा कि पूँटूका वर मैं ही हूँ। यहाँतक कि पूँटूको भी सन्देह न रहा।

बाबाजीने चाहा कि यह शुभ काम आगामी वैशाख महीनेमें ही सम्पन्न हो जाय। पूँटूके रिश्तेदार जो जहाँ थे उनमें शुभ दिनकी बात भी उठी। राँगा दीदीने पुलकित हृदयसे कहा, "देखते हो, किसीके भाग्यमें कौन बदा है, यह पहलेसे कोई भी नहीं बता सकता।"

मैं पहले उदासीन था, फिर चिन्तित हुआ, और उसके बाद डरा। क्रमशः मनमें ऐसा ही सन्देह होने लगा कि कहीं मैंने मंजूरी तो नहीं दे दी! मामला ऐसा बेढंग हो गया कि कहीं पीछे कोई बुरी घटना न घट जाय इसलिए ना करनेका साहस ही न रहा। पूँटूकी माँ वहीं थी। एक दिन रविवारको एकाएक उसके पिताके भी दर्शन हो गये। मुझे कोई नहीं जाने देना चाहता, आमोद प्रमोद और हँसी-मजाक भी होने लगा,—पूँटू मेरे ही सिर पड़ेगी, सिर्फ थोड़े दिनोंकी देर है—धीरे-धीरे ऐसे लक्षण ही चारों ओर स्पष्ट नजर आने लगे। जालमें फँसा जा रहा हूँ, मनको शांति नहीं मिलती—भाग छोड़कर बाहर भी नहीं निकल पाता। ऐसे वक्त अचानक एक सुयोग मिला। दादाने पूछा, "तुम्हारी कोई जन्मपत्री है या नहीं! उसकी तो जरूरत है।"

जोर लगाकर सारे संकोचोंको दूर करके कह दिया, "आप लोगोंने पूँटूके साथ मेरा विवाह करना क्या सचमुच स्थिर कर लिया है!"

दादा मुँह उठाकर थोड़ी देरतक अचम्भेसे देखते रहे, फिर बोले, "भाई! सुन लो इनकी बात!"

"पर मैं तो अभीतक स्थिर नहीं कर पाया हूँ।"

"नहीं कर पाये तो अब कर लो। लड़कीकी उम्र मैं चाहे बारह-तेरह बरसकी बताऊँ या और कुछ लेकिन असलमें वह सतरह-अठारह सालकी है। इसके बाद हम इस लड़कीकी शादी कैसे करेंगे!"

"पर वह मेरा दोष तो नहीं है!"

"तो फिर किसका है! शायद मेरा!"

इसके बाद लड़कीकी माँ और पैंठ बीबीसे शुरू करके पास-पड़ोसकी महिलाओं तक आ गईं। नाना भाँति अनुरोध-अभियोगोंका अन्त नहीं रहा। मुहल्लेके पुरुषोंने कहा, 'ऐसा शैतान आदमी नहीं देखा; इसे अच्छा सबक मिलना चाहिए।"

पर स्वप्न देखना और बात है और लड़कीको शादी करना दूसरी बात है। फलतः भागना शुरू हो गया। इसके बाद अनुनय-विनयकी बारी आई। पूँटूका मुँह नहीं देखता हूँ। शायद वह गरीब शर्मसे मुँह छिपाये कहीं पड़ी है। सन्देह होने लगा। वैसा दुर्भाग्य लेकर वह हमारे घरमें पैदा हुई है। सुना कि ठीक यही बात उसकी माँ भी कह रही है,—हा अभागिन, हम तुझको

सालके बाद आयेगी। इसकी ऐसी तकदीर है कि समुद्रपर दृष्टि डाले तो समुद्रतक सूख जाय और कभी भुनी हुई शोल मछली भी पानीमें भाग जाय। इसका ऐसा हाल न होगा तो किसका होगा!

कलकत्ते जानेके पहले बाबाको बुलाकर अपने घरका पता बता दिया। कहा, "मेरे लिए एक व्यक्तिकी राय लेना जरूरी है, उनके कहनेपर मैं राजी हो जाऊँगा।" बाबा मेरा हाथ पकड़कर गद्‌गद कण्ठसे बोले, "देखो भाई, लड़कीको मत मारो। उन्हें जरा समझा-बुझाकर कहना कि वे अपनी असम्मति न दें।" मैं बोला, "मेरा विश्वास है कि वे असम्मति प्रकट न करेंगे। बल्कि खुश होकर ही सम्मति देंगे।"

बाबाने आशीर्वाद दिया, "तुम्हारे मकानपर कब आऊँ, भैया?"

"पाँच छः दिन बाद ही आइये।"

पूँटूकी माँ और राँगा दीदीने पास आकर आँसुओंके साथ मुझे विदा किया।

मन-ही-मन कहा, तकदीर! किन्तु यह अच्छा ही हुआ कि एक प्रकारका वचन दे आया। मैंने इस बातपर निःसंशय विश्वास कर लिया कि इस विवाहमें राजलक्ष्मी लेशमात्र भी आपत्ति न करेगी।

२

स्टेशनपर पहुँचते ही ट्रेन छूट गई। दूसरी ट्रेन आनेमें दो घंटेकी देर थी। समय काटनेका उपाय खोज रहा था कि एक मित्र मिल गये। एक मुसलमान युवकने कुछ देरतक मेरी ओर देखते रह कर पूछा, "आप श्रीकान्त हैं?"

"हाँ।"

"मुझे नहीं पहचान सके? मैं गौहर हूँ।" कहकर उसने मेरा हाथ जोरसे दबा दिया पीठपर धम्म धक्का लगाई और जोरसे गले लिपटकर कहा, "चलो, हमारे घर चलो। कहाँ जा रहे थे,—कलकत्ते? घर जानेकी जरूरत नहीं —चलो।"

यह मेरा पाठशालाका मित्र है, उमरमें कोई चार साल बड़ा होगा, हमेशासे ही कुछ आधा पागल जैसा। ऐसा लगा कि उम्र बढ़नेके साथ-साथ उसका यह पागलपन कम होनेकी बजाय बढ़ गया है। पहले भी उसकी जबरदस्तीसे

बचनेका उपाय न था, अतः यह समझ कर मेरी दुश्चिन्ताकी सीमा न रही कि कमसे कम आज रातको वह मुझे किसी तरह नहीं छोड़ेगा। यह कहना व्यर्थ है कि उसकी आत्मीयता और उत्साहमें हिस्सा बँटानेकी शक्ति आज मुझमें नहीं है। पर वह छोड़नेवाला जीव नहीं था। मेरा बैग उसने खुद उठा लिया और कुली बुलाकर उसके सिरपर बिछौना रख दिया। फिर जबरदस्ती खींचता हुआ बाहर ले आया और गाड़ीका भाड़ा ठीक कर मुझसे बोला, "चलो।"

बचनेका कोई उपाय नहीं है, यह कहना फिजूल है।

यह कह चुका हूँ कि गौहर मेरा पाठशालाका साथी है। हमारे गाँवसे उसका मकान एक कोस दूर था एक ही नदीके किनारे। बचपनमें बन्दूक चलाना उसीसे सीखा था। उसके पिताकी एक पुरानी बन्दूक थी, उसीको लेकर नदी किनारे, आमके बगीचोंमें और झाड़-झंखाड़ोंमें घूमकर हम दोनों चिड़ियोंका शिकार किया करते थे। बचपनमें अनेक बार उसीके यहाँ रात काटी है,—उसकी माँ चिउड़ा गुड़, दूध और केला लाकर मुझे फलाहार करा देती थी। उनकी जमीन-जायदाद, खेती-बारी बहुत थी। गाड़ीमें बैठकर गौहरने प्रश्न किया, "इतने दिनोंतक कहाँ थे, श्रीकान्त?"

कहाँ-कहाँ था उसका एक संक्षिप्त विवरण दे दिया। पूछा "तुम अब क्या करते हो, गौहर?"

"कुछ भी नहीं।"

"तुम्हारी माँ अच्छी तरह हैं?"

"माँ-बाप दोनोंकी मृत्यु हो गई,—मकानमें अकेला मैं ही हूँ।"

"शादी नहीं की?"

"वह भी मर गई।"

मन-ही-मन सोचा कि शायद इसीलिए चाहे जिसे पकड़ ले जानेका इतना आग्रह है। जब कोई बात करनेको नहीं मिली तो पूछा, "तुम्हारी वह पुरानी बन्दूक है?"

गौहरने हँसकर कहा, "देखता हूँ कि तुम्हें उसकी याद है। वह है, और उसके सिवा और भी एक अच्छी बन्दूक खरीदी थी। तुम शिकार खेलने जाना चाहो तो [illegible] दूँगा। किन्तु अब मैं चिड़ियाँ नहीं मारता,—बहुत [illegible]।

"यह क्या गौहर, तब तो तुम दिन-रात इसीके पीछे पागल थे !"

"यह सच है। लेकिन अब बहुत दिनोंसे छोड़ दिया है।"

गौहरका एक परिचय और है कि वह कवि है। उन दिनों वह मुँह-जबानी अनर्गल ग्राम-गीत बना सकता था,—किसी भी वक्त और किसी भी विषयपर। छन्द, मात्रा और ध्वनि इत्यादि काव्य शास्त्रके कानून-कायदोंको मानता था या नहीं, इसका ज्ञान मुझे न तो तब था और न अब है। पर मुझे याद है कि मैं उन दिनों मणिपुरका युद्ध और टिकेन्द्रजीत सिंहके वीरत्वकी कहानी उसके मुँहसे सुनकर पुनः पुन उत्तेजित हो उठता था। पूछा, "गौहर, उन दिनों तुम्हें कृत्तिवाससे भी सुन्दर रामायण लिखनेका शौक था, वह संकल्प अब भी है या गया ?—" गौहर क्षण-भरमें गम्भीर हो गया। बोला, "वह शौक क्या कभी जा सकता है रे ? उसीके बलपर तो बचा हुआ हूँ। जबतक जिन्दा रहूँगा तब तक उसे लिखे रहूँगा। कितना लिखा है, पढ़ो न, आज सारी रात तुम्हें सुनाऊँगा तो भी खत्म न होगा।"

"कहते क्या हो गौहर !"

"नहीं तो क्या तुमसे झूठ कहता हूँ !"

प्रवीण कवि-प्रतिभासे उसकी आँखें और मुँह चमक उठे। सन्देह नहीं किया था, सिर्फ विस्मय जाहिर किया था। तथापि, कहीं केंचुआ खोदते हुए साँप न निकल आये—मुझे जबरदस्ती बैठाकर सारी रात काव्य-चर्चा ही न करता रहे —मेरे मनकी खोज नहीं रही।

खुश करनेके लिए कहा, "नहीं गौहर, यह थोड़े ही कहता हूँ। तुम्हारी अद्भुत शक्तिको सभी स्वीकार करते हैं, पर बचपनकी बातें याद हैं या नहीं, यही जाननेके लिए पूछा है। तो ठीक,—यह बंगालकी एक कीर्ति होकर रहेगी।"

"कीर्ति ! अपने मुँहसे क्या कहूँ भाई, पहले सुन तो लो, फिर ये सब बातें होंगी।"

किसी भी तरह छुटकारा नहीं। कुछ देर स्थिर रहकर मानो कुछ-कुछ अपने आप ही कहा, "सुबहसे ही तबीयत खराब हो रही है। ऐसा लगता है कि अगर नींद आ जाती—"

गौहरने इसपर ध्यान ही न दिया। कहा, "चुपचाप इधर बैठकर सीताकी

जब रोते-रोते गाना टेक रही है—इस अंशको जिन-जिनने सुना है वे अपने आँसू नहीं रोक सके हैं श्रीकान्त।"

आँसुओंको अब मैं भी रोक सकूँगा, इसकी सम्भावना कम है। कहा, "किन्तु—" गौहर ने कहा "हमारे उस बूढ़े नयनचाँद चक्रवर्तीको तुम्हें याद है न? उसके मारे नाकमें दम है। बात-बेबात आकर कहता है, 'गौहर, क्या बात अंश पढ़ो न, सुनूँगा।' कहता है, 'बेटा, तुम मुसलमानकी सन्तान कभी नहीं हो। ऐसा लगता है कि तुम्हारे शरीरमें असली ब्राह्मण रक्त प्रवाहित है।' 'नयनचाँद' नाम हर जगह नहीं होता, इसलिए याद आ गया। मकान भी गौहरके गाँवमें ही है। पूछा, "वही बूढ़ा चक्रवर्ती? उसके साथ तो तुम्हारे पिताजीका बड़ा झगड़ा हुआ था,—लाठियाँ चली थीं और मामला भी?"

गौहरने कहा "हाँ। लेकिन पिताजीके सामने उसकी क्या चलती?—उन्होंने उसकी जमीन, बगीचा, तालाब इत्यादि सबको कर्जमें नीलाम करवा लिया था। लेकिन मैंने उसका तालाब और मकान लौटा दिया है। बहुत गरीब है। रात-दिन रोता था—यह क्या अच्छा होता श्रीकान्त?"

अच्छा तो नहीं होता, परन्तु चक्रवर्तीके काव्य-प्रेमसे कुछ ऐसा ही अन्दाज लगा रहा था। कहा, "अब तो रोना बन्द हो गया है न?"

गौहरने कहा, "लेकिन आदमी बड़ा अच्छा है। कर्जके मारे उसने उस वक्त जो कुछ किया था, वैसा बहुत लोग करते हैं। उसके मकानके पास ही डेढ़ बीघेका आमका बगीचा है उसके हरेक पेड़को चक्रवर्तीने अपने हाथोंसे लगाया है। नाती-पोते बहुत-से हैं, खरीदकर खानेके लिए पैसे नहीं हैं।—फिर, मेरा ही कौन है, कौन खानेवाला है?"

"यह ठीक है। उसे भी लौटा दो।"

"लौटा देना ही ठीक है, श्रीकान्त। आँखोंके सामने ही आम पकते हैं, लड़के-बच्चे टगी बाँधे मरते हैं—मुझे बहुत दुःख होता है भाई। आमके दिनोंमें मेरे सब बगीचे व्यापारी लोग ले लेते हैं, सिर्फ यह बगीचा नहीं बेचता। कह दिया है, चक्रवर्ती, तुम्हारे नाती तोड़-तोड़कर खायें।—क्या कहते हो, ठीक किया न?"

"बिलकुल ठीक।" मन-ही-मन कहा, बैकुण्ठके खातेकी जय हो। उसकी

बदौलत यदि गरीब नयनचाँद परिवारसहित आराम उठा सके तो नुकसान ही क्या है ? इसके अलावा गौहर कवि है। कविकी इतनी सम्पत्ति किस मतलबकी, अगर तुम्हारे सरीखे गुणियोंके काममें न आये !

लगभग तीसरे पहरके बीचोंबीचकी बात है। गाड़ीकी खिड़कीको एकाएक अचानक खोलकर गौहरने बाहर सिर निकालते हुए कहा, "दक्षिणी हवाका अनुभव हो रहा है श्रीकान्त ?"

"हो रहा है।"

गौहरने कहा, "वसन्तको पुकारते हुए कविने कहा है—

'खोल दे आज दखिनका द्वार'।"

कच्ची मिट्टीका रास्ता है। अचल पवनके एक झोंकेने रास्तेकी सूखी धूलको जमीनपर नहीं रहने दिया, उसने समस्त मुँह और सिरको भर दिया। मैं अप्रसन्न होकर बोला, "कविने वसन्तको नहीं बुलाया। वह कहता है कि इस वक्त यमका दक्षिण द्वार खुला है—अतः नासाको बन्द न करोगे, तो यमदूत यहीं आकर हाजिर हो जायगा।"

गौहरने हँसकर, "चलकर देखोगे एक बार। चकोतरेके दो पेड़ोंपर फूल खिले हैं, कोई आध कोससे उनकी गन्ध आती है। सामनेवाला जामुनका पेड़ मानो फूलोंसे भर गया है, उसपर एक दानवाकार माधवीकी लता है। फूल अभी नहीं खिले हैं, कलियोंके गुच्छोंके गुच्छे लटक रहे हैं। हमारे चारों ही ओर आमके बगीचे हैं और अबकी बार बौरसे आमके झाड़ छा गये हैं। कल सुबह मधु-मक्खियोंका मेला देखना। कितने नीलकंठ, कितनी बुलबुलें और कितनी कोयलोंके गान! इस वक्त चाँदनी रात है, इस कारण रातको भी कोयलकी कूक नहीं रुकती। बाहरके कमरेकी दक्षिणवाली खिड़की यदि खुली रखोगे तो फिर तुम्हारी पलकें न लगेंगी। लेकिन इस बार मैं तो नहीं छोड़ूँगा भाई, यह पहलेसे कह देता हूँ। इसके अलावा खानेकी भी कोई फिक्र नहीं, चक्रवर्ती महाशयको एक बार खबर मिलने भरकी देर है। तुम्हारा आदर गुरुकी तरह करेंगे।"

आमन्त्रणकी अकपट आन्तरिकतासे मुग्ध हो गया। कितनी मुद्दतोंके बाद मुलाकात हुई है, लेकिन यह ठीक उस दिन जैसा ही गौहर है,—जरा भी नहीं बदला है,—वैसा ही बचपन है, मित्र-मिलनमें वैसा ही अकृत्रिम उल्लास है।

गौहर मुसलमान फकीर-सम्प्रदायका है। सुना गया है कि उसके पितामह बाउल* थे। वे रामप्रसादी और दूसरे गीत गा-गाकर भिक्षा माँगते थे। उनकी पाली हुई सारिकाकी अलौकिक संगीत-पारदर्शिताकी कहानी उन उन दिनों इधर बहुत प्रसिद्ध थी। लेकिन गौहरके पिता पैतृक-वृत्ति छोड़कर तिजारत और पाटका कारबार करने लगे और अपने लड़केके लिए बहुत-सी जायदाद खरीदकर छोड़ गये। परन्तु लड़केमें बाप जैसी व्यापारी बुद्धि नहीं है,—बल्कि बाबाका काम और संगीतके प्रति अनुराग ही उसमें है। अतः पिताकी जी-तोड़ मेहनतसे संचित जमीन-जायदाद और खेती-बारीका अन्तमें क्या परिणाम होगा, यह शंका और सन्देहका विषय है।

खैर, जो हो उन लोगोंका मकान बचपनमें देखा था। ठीकसे याद नहीं। अब वह शायद कविकी वाणी-साधनाके तपोवनमें रूपान्तरित हो गया हो। उसे एक बार आँखोंसे देखनेकी इच्छा हुई।

उसके ग्रामके पथसे मैं परिचित हूँ, उसकी दुर्गमता भी याद आती है। किन्तु थोड़ी ही देर बाद मालूम हो गया कि रास्तेकी उस यादके साथ आजकी आँखोंसे देखनेकी कहीं तुलना नहीं हो सकती। बादशाही जमानेकी सड़क है अविच्छिन्न सनातन। मिट्टी पत्थरोंकी परिकल्पना यहाँके लिए नहीं है। कोई करेगा, ऐसी दुराशा भी कोई नहीं करता। इतना ही नहीं संस्कार या मरम्मतकी सम्भावना भी लोगोंके मनसे बहुत समय पहले ही धुल गई है। गाँववाले जानते हैं कि शिकायत या अभियोग निष्फल है—इसके लिए किसी भी दिन दफ्तरोंमें धरने नहीं देंगे। वे जानते हैं कि पुरुषानुक्रमसे सड़कके लिए सिर्फ सड़क-टैक्स देना पड़ता है पर वह सड़क कहाँ है और किसके लिए है, यह सब सोचना भी उनके लिए ज्यादती है।

इस सड़कपर बहुकालसे संचित और स्तूपीकृत बालू और मिट्टीको रगड़ती हुई हमारी गाड़ी सिर्फ चाबुकके जोरसे अग्रसर हो रही थी। ऐसे ही वक्त गौहर एकाएक बड़े जोरसे चिल्ला उठा, "गाड़ीवान! और नहीं,—और नहीं ठहरो—एकदम रोको!"

---

* बाउल—बंगालमें वैरागी सम्प्रदायका एक सम्प्रदाय। कबीर, दादू आदि हिन्दीके सन्त-कवियोंकी वाणी गा-गाकर ये घर-घर भिक्षा माँगते हैं।

उसने यह इस तरह कहा जैसे पंजाब-मेलका मामला हो,—जैसे पल-भरमें ही सब वैकुण्ठ मेल अगर बन्द न किये जा सकें तो दुर्घटनाकी सम्भावना हो।

गाड़ी रुक गई। बाँयें हाथवाला रास्ता उनके गाँव जानेका है। उतरकर गौहरने कहा, "श्रीकान्त, उतर आओ। मैं बैग ले लेता हूँ, तुम बिछौना उठाओ चलो।"

"शायद गाड़ी और आगे नहीं जायगी?"

"नहीं। देखो न, रास्ता नहीं है।"

बात सही है। दक्षिण ओर बाँयीं ओर कँटीले पेड़ और बेंत-कुंजकी घनी तथा सम्मिलित शाखा प्रशाखाओंके कारण गाँवकी यह गली अतिशय संकीर्ण हो गई है। गाड़ीको अन्दर घुसानेका तो प्रश्न ही अवैध था, क्योंकि अगर आदमी भी होशियारीके साथ झुककर न घुसे तो काँटोंमें फँसकर उसके कपड़ोंका फटना अनिवार्य है,—अतएव कविके कथनानुसार यहाँका प्राकृतिक सौन्दर्य अनिर्वचनीय था। उसने बैगको कन्धेपर रखा और मैंने बिछौनेको बगलमें दबाया। इस तरह हम लोग मातृभूमिकी गोदमें गाड़ीसे उतरे। कवि गृहमें जब पहुँचा तो शाम हो चुकी थी। अन्दाज लगाया कि आकाशमें बसन्त रात्रिका चन्द्रमा भी निकल आया है। शायद पूर्णिमाके आस-पासकी तिथि थी, अतएव इस आशामें था कि गम्भीर निशीथमें चन्द्रदेव सिरके ऊपर आ जायँ तो तिथिके बारेमें निःसंशय हो जाऊँ। मकानके चारों ओर बाँसोंका घना वन है। बहुत सम्भव है कि इसी जंगलमें उसका कोयल, नीलकण्ठ और बुलबुलोंका झुण्ड रहता हो और उन्हींकी अविराम पुकार तथा गाना कविको भावुक बना देता हो। बागके पके सूखे हुए असंख्य पत्तोंने झड़-झड़कर आँगन और चबूतरेको चारों ओरसे परिप्लावित कर रक्खा है। इनपर नजर पड़ते ही इस प्रेरणासे सारा मन क्षणभरमें ही भावना कर उठता है कि सड़े हुए पत्तोंका मोह पाया जाय। नौकरने आकर बाहरकी बैठक खोल दी और बत्ती जला दी। गौहरने खाट बिछाते हुए कहा, "तुम इसी कमरेमें रहो। देखना, कैसी सुन्दर हवा आती है।"

असम्भव नहीं है। देखा, कि दक्षिणकी हवाके वजहसे देशभरकी उड़ी हुई धूलों और पत्तोंने गवाक्ष-पथसे भीतर घुसकर कमरेको भर दिया है, तख्तको भी छा लिया है। फर्शपर पैर पड़ते ही शरीर सनसना उठा। खाटके

उससे संसारमें एक धूम मच जायगी। वह ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं है। पाठशाला और स्कूलमें उसने सिर्फ थोड़ी-सी बँगला और अँग्रेजी सीखी थी। इच्छा भी नहीं थी, और शायद समय भी नहीं मिला। शैशवमें न जाने कब और कैसे वह कवितासे प्रेम कर बैठा। सम्भव है कि वह प्रेम उसकी शिराओंके खूनमें ही बह रहा हो—इसके बाद संसारका सब-कुछ उसकी नजरोंमें अर्थहीन हो गया है। अपनी अनेक रचनायें उसे याद हैं। गाड़ीमें बैठा हुआ बीच-बीचमें वह गुनगुनाकर आवृत्ति भी करता था। उस वक्त सुनकर यह नहीं सोचा था कि इस अधम भक्तको वाग्देवी अपने स्वर्ण-पद्मकी एक पंखुड़ी देकर किसी दिन पुरस्कृत करेंगी। पर अक्लान्त आराधनाके एकाग्र आत्मनिवेदनमें इस बेचारेको विराम नहीं विश्राम नहीं। बिछौनेपर लेटा हुआ सोचने लगा कि बारह साल बाद मुलाकात हुई है। इन बारह वर्षोंसे उसने सब पार्थिव स्वार्थों को जलांजलि देकर और एक रचनाके बाद दूसरी गूँथ करके श्लोकोंका पहाड़ जमा कर लिया है। पर वह सब किस काममें आवेगा? जानता हूँ कि काममें नहीं आयेगा। गौहर ज्ञान नहीं है पर उसकी दुष्कर तपस्याकी व्यर्थताका स्मरण कर आज भी मन दुखी होता है। सोचता हूँ कि न जाने कितने शोभाहीन, गन्धहीन फूल लोग जंगलोंके अन्तरालमें खिलते हैं और फिर अपने आप ही मुरझा जाते हैं। परन्तु विश्व विधानमें यदि उसकी कोई सार्थकता है, तो शायद गौहरकी साधना भी व्यर्थ नहीं हुई होगी।

गौहरने बहुत सवेरे ही पुकारकर मेरी नींद खोल दी। तब शायद सात बजे थे, या न भी बजे हों। उसकी इच्छा थी कि वसन्तके दिनोंमें बगीचेके निभृत कोनोंके कोनेपर शोभा-सौन्दर्यको अपनी आँखोंसे देखकर धन्य होऊँ। उसका भाव कुछ ऐसा था कि मानों मैं विलायतसे लौटकर आया हूँ। उसका बगीचा पासमें ही था। अनुरोध टालनेका उपाय नहीं था। अतएव हाथ-मुँह धोकर तैयार होना पड़ा। खम्भीरसे छटे हुए एक आमके बागके पीछेके अधिक हिस्से-में माधवी और अधिकमें मालती लता लिपटी थी। यह कविकी अपनी योजना है। अत्यन्त निर्दोष शकल,—तथापि एकमें थोड़े-से फूल खिले हैं और दूसरेमें अभी कलियाँ फूटी हैं। उसकी इच्छा थी कि थोड़े-से फूल मुझे उपहार दे, पर पेड़में इतने ज्यादा काँटे थे कि चुननेका कोई उपाय नहीं रहा। उसने मुझे यह कहकर सान्त्वना दी कि कुछ देर बाद उन्हें लाँगीसे मँगवाकर

...रा दिया जायगा।—अच्छा, चलो।

प्रतिक्रिया ठीक करके निश्चय हो सके (अर्थात् कष्ट न रहे) इसके ...पत्तीमें नवीन चिलम हाथमें लिये दम लगाकर बड़े जोरसे खाँस रहा था। ...कर, खखारकर और बहुत-कुछ हिलाकर हाथ हिलाकर उसने मना किया। ...ा, "जंगलमें कहीं पागल मत हो जाइयेगा, कहे देता हूँ।"

गौहरने नाराजीसे कहा, "क्यों रे!"

नवीनने जवाब दिया, "कोई दो-तीन सियार पागल हो गये हैं, ढोर-जान... लोगोंको काटते डोल रहे हैं।"

मैं डरके मारे पीछे हट गया।

"कहाँ रे नवीन?"

"यह क्या मैंने देखा है कि कहाँ हैं! कहीं-न-कहीं झाड़ी-झाड़ीमें छिपे ...गे। जरूर जाते हो तो आँखें खोलकर जाना।"

"तो भाई, जानेका काम नहीं गौहर।"

"धत् रे! इस वक्त कुत्ते और सियार सब पागल हो ही जाते हैं,—...इसी डरसे क्या लोग रास्ता चलना बंद कर देंगे! चल चल!"

पर मैं रसिकजीका रास्ता जानता हूँ। अतएव, प्रकृतिकी शोभा देखने ...में आया ही नहीं। रास्तेमें दोनों ओर आमके बगीचे हैं। करीब पहुँचते ही असंख्य छोटे छोटे कीड़े-मकोड़े चार-चार पर-पर आवाज करते हुए आम मुकुलोंको छोड़कर आँख, नाक, मुँह और कपड़ोंके भीतर घुस गये। उसके पर्याप्त आमका मधु गिरकर जिसकी बेंची तरह हो गया था, वह जूतोंके तलोंमें चिपकने लगा। पैरके रास्तेका बहुत-सा हिस्सा बेरहम कर विराजमान मुकुलित-विकसित पुष्पोंके भारसे लदी भरी कटहलकी शाखियों,—इसी समय याद आ गई नवीनकी चेतावनी। गौहरके मतानुसार यह वक्त पागल होनेलायक ही है इसलिए कटहलके फूलोंकी शोभा और किसी दिन समयके अनुसार उपभोग की जायगी। आज गौहर और मैं,—यानी नवीनके 'ढोर मादमी'ने सब तेज कदमसे ही स्थान त्याग किया।

मैं कह चुका हूँ कि हमारे गाँवकी नदी इस गाँवकी सीमामें भी होकर बहती है। वर्षाकी चौड़ी जलधारा बसंतके समागमसे पतली क्षीण हो गई है। उस

समय धारके साथ बहकर आई अपरिमेय सेवार और काई शुष्क स्तर भूमिपर फैल गई है और शिशिर और धूपमें सड़कर उसने सारी जगहको दुर्गन्धमय नरक-कुण्ड बना दिया है। नदीके उस पार कुछ दूर सेमरके पेड़में सैकड़ों लाल फूल खिले हुए थे। उनपर नजर पड़ी, लेकिन इस वक्त कविको भी उस ओर दृष्टि आकर्षित करना ठीक नहीं लगा। उसने कहा, "चलो, घर लौट चलें।"

"अच्छा, चलो।"

"मेरा खयाल था कि ये सब चीजें अच्छी लगेंगी।"

कहा "अच्छी लगेंगी भाई, लगेंगी। अच्छे-अच्छे शब्दोंमें तुम इनको कवितामें लिखो, मैं पढ़कर खुश हूँगा।"

"शायद इसीलिए गाँवके आदमी एक बार मुड़कर भी इन्हें नहीं देखते।"

"नहीं। देखते-देखते उन्हें अरुचि हो गई है। भाई, आँखोंकी रुचि और कानोंकी रुचि एक नहीं है। जो यह सोचते हैं कि कविके वर्णनको अपनी आँखों देखनेपर लोग मोहित हो जाते हैं, वह नहीं जानते सच क्या है। दुनियाके हर काममें यह बात लागू है। आँखोंके लिए जो एक साधारण घटना या बहुत मामूली-सी वस्तु है वही कविकी भाषामें 'नयी सृष्टि' हो जाती है। तुम जो देखते हो वह भी सत्य है और जो मैं नहीं देख सका वह भी सत्य है। इसके लिए तुम दुखी मत होना गौहर।"

तो भी लौटते समय रास्तेमें उसने न जाने कितनी और क्या-क्या वस्तुएँ दिखानेकी चेष्टा की। पथका प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक लता-पौधा तक मानो उसका पहचाना हुआ है। न जाने कब एक पेड़की छाल ओषधिके लिए कोई छीलकर ले गया था और उससे निकलनेवाला पराग अब भी हरा रहा था। [illegible] उसे देखकर गौहर सिहर-सा उठा। उसकी आँखें छलछला आईं — मैं उसके मुँहकी ओर देखकर यह स्पष्टतया समझ गया कि अन्तरमें उसने कितनी वेदनाका अनुभव किया है। चक्रवर्ती जो अपनी सब खोई हुई चीजें पुनः वापस प्राप्त कर रहा था, सो केवल अपनी होशियारीके कारण नहीं इसका कारण तो गौहरके स्वभावमें ही है। चक्रवर्तीके प्रति मेरा क्षोभ बहुत-कुछ अपने आप ही कम हो गया। चक्रवर्तीसे मुलाकात नहीं हुई, क्योंकि सुना गया कि उनके घरमें उनके दो नातिनोंपर शीतला-माताकी कृपा

हुई है। अबतक गाँव-गाँवमें विसूचिका-माताके दर्शन नहीं हुए हैं,—वे यहीं हुए तलैयोंके पानीके थोड़ा और सूख जानेकी राह देख रही हैं।

खैर, घर पहुँचकर गौहरने अपना पोथा मेरे सामने हाजिर कर दिया। ऐसा आदमी संसारमें विरला ही होगा जिसे उसका परिमाण देखकर भय न लगता। बोला, "बिना पढ़े छुट्टी नहीं मिलेगी श्रीकान्त, और तुम्हें अपनी सच-सच राय देनी होगी।"

यह आशंका तो थी ही। साफ-साफ राय दे सकूँ इतना साहस नहीं था, तो भी कविकी वाटिकामें इस यात्राके, एकके बाद एक, मेरे तीन दिन काव्यालोचनामें ही कट गये। काव्यकी बात जाने दो, किन्तु इतने समयमें इस मनुष्यका जो परिचय मिला, वह जितना सुन्दर था उतना ही विस्मयकारक।

एक दिन गौहरने कहा, "श्रीकान्त, तुम्हें बर्मा जानेकी क्या जरूरत है! हम दोनोंके ही अपना कहने लायक कोई नहीं है, तो आओ न हम दोनों यहीं एक साथ जीवन बिता दें।"

हँसकर कहा, "मैं तो तुम्हारी तरह कवि नहीं हूँ भाई, न पेड़-पौधोंकी भाषा ही समझता हूँ, और न उनसे बातचीत कर सकता हूँ, फिर इस जंगलमें कैसे रह सकूँगा! दो दिनमें ही ऊब जाऊँगा।"

गौहरने गम्भीर होकर कहा, "किन्तु मैं उनकी भाषा सचमुच समझता हूँ। वे सचमुच बातें करते हैं,—क्या तुम लोग विश्वास नहीं करते!"

मैंने कहा, "यह तो तुम भी समझते हो कि विश्वास करना मुश्किल है!"

गौहरने सरलतासे स्वीकार कर लिया, कहा, "हाँ, हाँ, यह तो समझता हूँ।"

एक दिन सुबह अपनी रामायणका अशोक-वनवाला अध्याय कुछ देरतक पढ़नेके बाद उसने हठात् किताब बन्द कर दी और मेरी ओर घूमकर प्रश्न किया, 'अच्छा श्रीकान्त, तुमने कभी किसीको प्यार किया है?'

कल बहुत रात तक जागकर राजलक्ष्मीको उत्तर अपनी अन्तिम चिट्ठी लिखी थी। उसमें यात्राकी बातें, गौहरकी कथा और उसके गुणग्रामका समस्त विवरण था। उन लोगोंको वचन दिया था कि एक आदमीकी अनुमति माँग लूँगा,—सो यह भिक्षा भी उसमें माँगी थी। चिट्ठी भेजी नहीं जा

उस वक्त पाकेटमें ही पड़ी हुई थी। गौहरके प्रश्नके उत्तरमें हँसकर कहा, "नहीं।"

गौहरने कहा, "यदि कभी प्यार करो, यदि कभी ऐसा दिन आये तो मुझे बताना श्रीकान्त।"

"जानकर क्या करोगे?"

"कुछ भी नहीं। तब सिर्फ तुम लोगोंके बीच जाकर कुछ दिन काट आऊँगा।"

"अच्छा।"

"और अगर उस वक्त रुपयोंकी जरूरत हो तो मुझे खबर दे देना। बाबूजी बहुत रुपया छोड़ गये हैं, वह मेरे काममें तो लगा नहीं,—किन्तु शायद तुम लोगोंके काममें लग जाय।"

उसके कहनेका तरीका कुछ ऐसा था कि सुनते ही आँखोंसे अश्रु निकल पड़े। कहा, "अच्छा, यह भी खबर दूँगा। पर आशीर्वाद दो कि इसकी कभी जरूरत न पड़े।"

मेरे जानेके दिन गौहर सिर मेरा बैग उठाकर प्रस्तुत हो गया। इसकी जरूरत न थी, नवीन तो शर्मसे प्रायः अधमरा हो गया, पर उसने एक न सुनी। ट्रेनमें बैठाकर वह औरतोंकी तरह रो उठा बोला, "मेरे सिरकी कसम है श्रीकान्त चले जानेके पहले एक दिन फिर आना ताकि फिर एक बार मुलाकात हो जाय।"

आवेदनकी उपेक्षा नहीं कर सका, वचन दिया कि मिलनेके लिए फिर एक बार आऊँगा।

"कलकत्ता पहुँचकर कुशल-संवाद दोगे न?"

यह वचन भी दिया। मानो न जाने कितनी दूर चला जा रहा हूँ।

कलकत्तेके मकानमें जब पहुँचा, तब प्रायः सन्ध्या हो गई थी। चौखटपर पैर रखते ही जिनके दर्शन हुए, वह और कोई नहीं स्वयं रतन था।

"यह क्या रे, तू है?"

"हाँ, मैं ही हूँ और कलसे बैठा हूँ। एक चिट्ठी है।" समझ गया कि उसी प्रार्थनाका उत्तर है। कहा "डाकसे भेजनेपर भी तो चिट्ठी मिल जाती?"

रतनने कहा, "यह व्यवस्था किसान, मजदूर और साधारण लोगोंके लिए

है। माँकी चिट्ठी अगर एक आदमी बिना खाये-पीये और साथे पाँच-सौ मील हाथमें लिये दौड़ता हुआ न आये, तो क्यों न आयगी! आप तो सब जानते हैं, क्यों झूठ-मूठ पूछ रहे हैं।"

बादमें सुना कि रतनका यह अभियोग झूठा है। क्योंकि खुद ही उत्सुक होकर वह यह चिट्ठी अपने हाथ लाया है। मालूम हुआ कि ट्रेनकी भीड़ और आहार वगैरहकी अव्यवस्थाके कारण उसका मिज़ाज बिगड़ गया है। हँसकर कहा, "ऊपर आ। चिट्ठी पीछे पढ़ूँगा, बस, पहले तेरे खानेका इन्तज़ाम कर दूँ।"

रतनने पैरोंकी धूल लेकर प्रणाम किया और कहा, "चलिये।"

३

डकारसे चौंकाता हुआ रतन दाखिल हुआ।

"क्यों रतन, पेट भर गया?"

"जी हाँ। आप चाहे कुछ भी कहें बाबू, लेकिन हमारे कलकत्तेके बंगाली आदमियोंके अलावा और कोई रसोई बनाना नहीं जानता। उनके आगे तो इन मारवाड़ी महाराजोंको जानवर ही कहा जा सकता है।"

मुझे याद नहीं कि दोनों प्रान्तोंकी रसोईकी अच्छाई-बुराई या रसोइयोंकी कलाके बारेमें रतनसे कभी मैंने बहस की हो, पर रतनको जितना जानता हूँ उससे यही ख्याल हुआ कि भरपूर भोजनसे यह खूब सन्तुष्ट हुआ है। अगर यह बात न होती तो वह पश्चिमी रसोइयोंके बारेमें ऐसी निरपेक्ष राय न दे सकता। उसने कहा, "गाड़ीमें धक्के तो कम नहीं लगे, हाथ-पैर फैलाकर बैठे बिना—"

"तो अच्छा है रतन, चाहे कमरेमें चाहे बरामदेमें बिछौना बिछाकर सो जा, कल सब बातें होंगी।"

न जाने क्यों चिट्ठीके लिए उत्कण्ठा न थी। ऐसा लग रहा था कि उसमें जो कुछ लिखा होगा वह तो मालूम ही है।

रतनने फतुईकी जेबसे एक लिफाफा निकालकर मेरे हाथमें दे दिया। चारोंसे तोड़-मोड़कर रखा हुआ था। बोला, "बरामदेकी इस दक्षिणवाली खिड़कीके पासमें बिछौना किया हूँ। अब तो जागनेकी ताकत नहीं रही। कलकत्तेके अलावा ऐसा सुख और कहाँ है! जाता हूँ—"

"किन्तु अब जगह अच्छी है न रतन ?"

रतनने मुँह गम्भीर कर कहा, "ऐसा ही तो लगता है। गुरुदेवकी कृपासे मकानका बाहरी हिस्सा गुलजार है। भीतर दास-दासियाँ, बंकू बाबू और नई बहूने आकर बहार रोशन कर दिया है, और सबके ऊपर स्वयं माँ हैं जो मकानकी मालकिन हैं। ऐसी गृहस्थीकी बुराई कौन करेगा ? लेकिन मैं बहुत पुराना नौकर हूँ, आश्रित आदमी हूँ—रतनको इतनी जल्दी भुलाया नहीं दिया जा सकता बाबू। इसीलिए तो उस दिन स्टेशनपर आँखोंके आँसू न रोक सका। यह निवेदन किया था कि परदेशमें नौकरोंकी कमी होनेसे रतनको एक बार खबर जरूर दे दें। जानता हूँ कि आपकी सेवा करनेपर भी उन्हीं माँकी सेवा होगी। धर्मका पतन नहीं होगा।"

मैं कुछ भी नहीं समझा, सिर्फ चुपचाप ताकता रहा। वह कहने लगा, "बंकू बाबूकी अब उम्र भी हो गई, थोड़ा-बहुत पढ़-लिखकर आदमी भी बन गये हैं। शायद सोचते हैं कि दूसरेके अधीन किसलिए रहा जाय। दानपत्रकी जोरसे सब मार तो लिया ही है। मालूम है कि मोटे तौरपर उन्होंने काफी हाथ साफ किया है पर वह कितने दिनोंका है बाबू !"

बात कुछ भी साफ न हुई, पर एक धुँधली छाया आँखोंके सामने तैर गई। वह फिर कहने लगा "आपने तो खुद अपनी आँखोंसे देखा है कि महीनेमें कमसे कम दो दफा मेरी नौकरी छूट जाती है। हालत बुरी नहीं है नाराज होकर जा भी सकता हूँ, लेकिन क्यों नहीं जाता ? जा नहीं सकता। इतना जानता हूँ कि जिसकी दयासे सब कुछ हुआ है, उसके एक निश्वाससे ही आतिशबाजीकी तरह सब लोप हो जायगा वह पलक मारनेकी भी फुर्सत नहीं देगा। यह माँकी मायाबाजी नहीं है, यह तो मेरे देवताका आशीर्वाद है।"

यहाँ पाठकोंको यह स्मरण करा देना आवश्यक है कि बचपनमें रतन थोड़े दिनोंतक गाँवकी स्कूलमें शिक्षा प्राप्त कर चुका है।

कुछ रुककर कहा, "माँने मना कर दिया है, इसीलिए कभी कहता नहीं। घरमें जो कुछ था बाबाने ले लिया, गहनोंका एक पत्ता नहीं दिया। एक छोटा लड़का और लड़की, और उनकी माँको छोड़कर पेटके लिए एक दिन गाँव छोड़कर बाहर निकल पड़ा। पर पहले जन्मकी तपस्या थी, मेरी नौकरी इन माँके ही घर लग गई। सारा दुखड़ा उन्होंने सुना, लेकिन उस वक्त

कुछ नहीं कहा। एक बरसके बाद मैंने निवेदन किया, 'माँ, बच्चोंको देखनेकी इच्छा है, अगर कुछ दिनोंकी छुट्टी मिल जाती—'। हँसकर बोलीं, 'फिर आओगे न?' आनेके दिन हाथमें एक पोटली देते हुए कहा 'रतन, बहूसे लड़ाई झगड़ा मत करना भैया, जो कुछ तुम्हारा बच्च गया है उसे इससे हाथ फेर लेना।' गठरी खोलकर देखता हूँ तो पाँच-सौ रुपये हैं। पहले तो अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं हुआ। ऐसा लगा, मानो मैं जाग्रत् अवस्थामें स्वप्न देख रहा हूँ। मेरे उसी माँसे बंकू बाबू अब उल्टी-सीधी बात करते हैं, आदमी लाकर फुस-फुस करते हैं, सोचता हूँ कि अब इनके ज्यादा दिन नहीं हैं, क्योंकि अब माँ-लक्ष्मी जानेवाली हैं!"

मैंने यह आशंका नहीं की थी, चुपचाप सुनने लगा।

ऐसा लगा कि कुछ दिनोंसे क्षोभ और दुःखसे रतन घुल रहा है। बोला, "माँ अब देती हैं तो दोनों हाथोंसे उड़ा देती हैं। बंकूको भी दिया है, इसीलिए उसने यह सोच लिया है कि मधु निचोड़े हुए छत्तेकी क्या कीमत!— इस वक्त तो ज्यादासे ज्यादा उसे भगाया ही जा सकता है। इसलिए उसको वे इतनी अप्रिय हो रही हैं। मूर्ख यह नहीं जानता कि आज भी माँके एक गहना बेचनेपर ऐसे पाँच मकान तैयार हो सकते हैं।"

मैं भी यह न जानता था। हँसकर कहा, "ऐसी बात है? पर वह सब है कहाँ?"

रतन भी हँसा। बोला, "उन्हींके पास है। माँ ऐसी बेवकूफ नहीं। सिर्फ आपके चरणोंपर सर्वस्व लुटाकर वे भिखारिणी हो सकती हैं, किन्तु और किसीके भी लिए नहीं। बंकू नहीं जानता है कि आपके जिन्दा रहते माँको अभावकी कमी न होगी, और जबतक रतन जीवित है तबतक उन्हें नौकरके लिए भी सोचनेकी जरूरत नहीं। उस दिन काशीसे आपके इस तरह चले आनेकी वजहसे माँके हृदयमें कैसा तीर चुभा है, इसकी खबर क्या बंकू बाबू रखते हैं? गुरु महाराजको भी उनकी खोज-खबर कहाँसे मिल सकती है?"

"पर गुरु तो उन्होंने ही खुद किया था, इसकी खबर तो रतन, तुम्हें है?"

जीभ निकालकर रतन शर्मसे गड़ गया। उनमें इतनी विनय रहते

कभी न देखी थी। कहा, "बाबू, हम तो नौकर-चाकर हैं, ये सब बातें हमारे कानोंको नहीं सुननी चाहिए। यह झूठ है।"

रतन मकानपर मिलनेके लिए चला गया। शायद कल आठ बजेके पहले उसके शरीरमें स्फूर्ति नहीं आयेगी।

दो बड़ी खबरें मिलीं। एक तो यह कि बंकू अब बड़ा हो गया है। पटनेमें जब पहली बार मैंने उसे देखा था तो उस वक्त उसकी उम्र सोलह-सत्तरहकी थी। अब इक्कीस वर्षका युवक है। बल्कि इन पाँच-छह वर्षोंमें पढ़-लिखकर वह आदमी बन गया है। अब शैशवका वह अहेतुक स्नेह यदि आज यौवनके आत्मसम्मान-बोधमें सामंजस्य न रख पाता हो, तो इसमें विस्मयकी कौन-सी बात है!

दूसरी खबर राजलक्ष्मीकी गम्भीर वेदनाका पता न तो बंकूको और न गुरुदेवको ही आभास मिला है।

मेरे मनमें ये ही दो बातें बहुत देरतक घूमती रहीं।

बड़े यत्नसे अंकित चमड़ेकी सील-मोहरको देखकर चिट्ठी खोली। उसके हाथकी लिखावट ज्यादा देखनेका मौका नहीं मिला है, पर, यह खयाल आया कि अक्षर ऐसे तो नहीं हैं कि पढ़नेमें तकलीफ हो लेकिन फिर भी अच्छे नहीं हैं। पर यह पत्र उसने बहुत सावधानीसे लिखा है। शायद उसे डर था कि मैं खिजकर फेंक न दूँ, बल्कि शुरूसे आखिरतक सब-कुछ आसानीसे पढ़ जा सकूँ।

आचार और आचरणमें राजलक्ष्मी उस युगकी प्राणी है। प्रणय निवेदनकी अधिकता तो दूरकी बात है, बल्कि यह भी याद नहीं आता कि उसने मेरे सामने कभी कहा हो कि 'प्रेम करती हूँ।' उसने चिट्ठी लिखी है—मेरी मर्यादाके अनुकूल अनुमति देकर। तो भी, न जाने क्या है पढ़नेमें जाने क्यों डर लगने लगा। उसके बाल्य-कालकी याद आ गई। उस दिन गुरु-महाशयकी पाठशालामें उसका पढ़ना लिखना बन्द हो गया था। बादमें शायद घरपर ही थोड़ा-बहुत पढ़-लिख लिया होगा। अतएव भाषाका इन्द्रजाल शब्दोंकी झंकार, पद विन्यासकी मधुरताकी उसके पत्रमें आशा करना अन्याय है। कुछ मामूली मर्यादित बातोंमें ही मनके भाव व्यक्त करनेके

अन्यथा वह और क्या करेगी ! अनुमति देकर मामूली शुभ-कामनाकी दो लाइनें होंगी,—यही था ! पर लिफाफा खोलकर पढ़ना शुरू करते ही कुछ देरके लिए संसारका और कुछ भी याद न रहा। पत्र लम्बा नहीं है, लेकिन भाषा और भंगी जितनी सरल और सहज समझी थी, उतनी नहीं है। मेरे आवेदनका उत्तर उसने इस तरह दिया है

"काशीधाम

"प्रणामके उपरान्त सेविकाका निवेदन।

"इस बार मिलाकर कुल सौ दफा तुम्हारी चिट्ठी पढ़ी। तो भी यह समझमें नहीं आया कि तुम पागल हो गये हो या मैं। तुमने शायद यह खयाल किया है कि मैंने तुम्हें पड़ा हुआ पा लिया था। परन्तु तुम कहीं पड़े हुए नहीं थे, तुम बहुत तपस्याके बाद मिले थे, बहुत आराधनाके बाद। इसीलिए, विदा देनेके मालिक तुम नहीं। मुझे त्याग करनेका मालिकाना स्वत्वाधिकार तुम्हारे हाथोंमें नहीं है।

"तुम्हें याद नहीं, फूलोंके बदले बनसे करोंदे तोड़, उनकी माला गूँथकर, किस छलसे तुम्हें वरण किया था। हाथोंमें काँटे चुभ जानेकी वजहसे खून बहने लगता था, लाल मालाका वह रंग तुम नहीं पहचान सके थे। बालिकाकी पूजाका अर्घ्य उस दिन तुम्हारे गलेमें था। परन्तु तुम्हारे हृदयपर रक्त-रेखासे जो लेख अंकित कर देती थी, वह तुम्हारी नजरोंमें नहीं पड़ी। पर जिसकी नजरोंसे संसारका कुछ भी छिपा नहीं रह सकता, उनके पाद-पद्मोंमें मेरा वह निवेदन पहुँच गया था।

"उसके बाद आई दुर्योगकी रात। काले मेघोंने मेरे आकाशकी ज्योत्स्ना ढँक दी। किन्तु वास्तवमें वह मैं हूँ या और कोई, इस जीवनमें यथार्थ रूपमें वे सब बातें हुई थीं या सोते-सोते स्वप्न देख रही थी,—यह सोचते ही बहुधा मुझे डर लगता है कि मैं पागल हो जाऊँगी। तब तब भूलकर जिसका ध्यान लगाकर बैठती हूँ, उसका नाम नहीं लिया जाता। किसीसे कहनेकी बात नहीं है। उनकी क्षमा ही मेरे जगदीश्वरकी क्षमा है। इसमें गलती नहीं है, सन्देह नहीं। यहाँ मैं निर्भय हूँ।

"हाँ, कहा था कि इसके बाद मेरे बुरे दिनोंकी रात आई, दोनों आँखोंकी सारी रोशनीको वज्रने बुझा दिया। पर यही क्या मनुष्यका समस्त परिचय

है ! उस अल्हड़ बालिकाके मनने आचरणके बाहर उसका क्या और कुछ भी बाकी नहीं है !

"है । आपादमस्तकको बीच-बीच उसे मैंने बार-बार देखा है । अगर ऐसा न होता, विगत दिनोंका राक्षस यदि मेरे समस्त मनागत संस्कारको निःशेष ग्रास कर लेता, तो तुम फिर मुझे कैसे मिलते ? मेरे ही हाथोंमें लाकर फिर तुम्हें कौन सौंप जाता ?

"मुझसे तुम चार-पाँच वर्ष बड़े हो, तो भी तुम्हें जो अच्छा लगता है वह मुझे शोभा नहीं देता । मैं बंगाली घरकी लड़की हूँ, जीवनके सत्ताईस वर्ष पार कर चुकनेके बाद यौवनका दावा और नहीं करती । मुझे तुम गलत मत समझना,—चाहे कितनी ही अधम क्यों न होऊँ । अगर यह बात तुम्हारे मनमें क्षणमात्रके लिए कुत्सितरूपसे भी आवे, तो इससे बढ़कर शर्मकी बात मेरे लिए और कोई नहीं है । बङ्कू जिन्दा रहे, वह बड़ा हो गया है । उसकी बहू आ गई है,—तुम्हारी शादीके बाद उन लोगोंके सामने मैं किस मुँहसे निकलूँगी ? यह अपमान कैसे सहूँगी ?

"यदि तुम कभी बीमार पड़ो तो सेवा कौन करेगा—पूँटू ? और मैं तुम्हारे मकानके बाहरसे ही नौकरके मुँहसे खबर पूछकर लौट आऊँगी ? इसके बाद भी जीवित रहनेके लिए कहते हो ?

"शायद प्रश्न करोगे, तो क्या हमेशा ही ऐसा निरर्थक जीवन काटूँ ? पर प्रश्न चाहे कुछ भी हो, उसका जवाब देनेकी जिम्मेदारी मेरे ऊपर नहीं है, तुम्हारे ऊपर है । फिर भी अगर तुम बिलकुल ही कुछ न सोच सको,—दुर्भिक्ष इतना बड़ा हो गया हो तो मैं उधार दे सकती हूँ, वह लौटानी नहीं पड़ेगी,—लेकिन देखो, भाग्यको कहीं अस्वीकार मत कर देना ।

"तुम सोचते हो कि गुरुदेवने मुझे मुक्तिका मंत्र दिया है, शास्त्रोंने पथका सन्धान दिया है, सुनन्दाने धर्मकी भ्रान्ति दी है, और तुमने दिया है सिर्फ भार,—बोझा । ऐसे ही अन्धे हो तुम लोग !

"पूछती हूँ, तुम्हें तो मैंने तेरह बरसकी उमरमें पा लिया था, पर इतने पहले ये सब कहाँ थे ? तुम इतना ज्यादा सोच सकते हो और यह नहीं सोच सकते ?

"मुझे आशा थी कि उस दिन मेरे इन पापोंका अन्त हो जायगा, मैं

निष्पाप हो जाऊँगी। यह क्षोभ क्यों है, जानते हो? स्वर्गके लिए नहीं — वह मुझे नहीं चाहिए। मेरी कामना है कि मरनेके बाद फिर आकर जन्म ले सकूँ। इसके मानी समझ सकते हो?

"सोचा था कि पानीकी धारामें कीचड़ मिल गई है,—मुझे उसे निर्मल करना ही पड़ेगा। पर आज अगर उसका मूल स्रोत ही सूख जाय, तो पड़ा रह जायगा मेरा संस्कार, पूजा अर्चना, रह जायगी सुनन्दा, पड़े रहेंगे मेरे गुरुदेव।

"स्वेच्छासे मैं मरना नहीं चाहती। पर मेरे अपमान करनेका क्रूर कौशल अगर तुमने रचा हो तो इस विचारको छोड़ दो। अगर तुम फिर आगे तो मैं भी देखूँगी, पर उसे न सह सकूँगी। मुझे जानते हो, इसलिए यह बता दिया कि जो सूर्य अस्त होगा उसके पुनः उदयकी अपेक्षामें बैठे रहनेका वक्त अब मेरे पास नहीं है। इति।

राजलक्ष्मी।"

पुरस्कार मिला। सुनिश्चित कठोर अनुशासनकी चरम-लिपि भेजकर उसने एक ओरसे मुझे बिल्कुल निश्चिन्त कर दिया। इस जीवनमें उस दिशामें सोचनेके लिए अब और कुछ नहीं रहा। पर निःसंशयपूर्वक यह तो मालूम हुआ कि क्या नहीं कर सकूँगा। पर इसके बाद मुझे क्या करना होगा, इस बारेमें राजलक्ष्मी बिल्कुल चुप है। शायद उपदेशोंसे भरी हुई एक चिट्ठी और किसी दिन लिखेगी, अथवा तदबीर मुझे ही तय करेगी। लेकिन इस वक्त जो व्यवस्था हो गई है वह बहुत ही सुन्दर है। इधर बाबा महोदय संभवतः कल सुबह ही आकर हाजिर होंगे। उन्हें भरोसा दे आया हूँ कि विघ्न करनेकी जरूरत नहीं, अनुमति मिलनेमें कोई विघ्न न होगा। पर जो कुछ आ पहुँचा वह निर्विघ्न अनुमति ही तो है। रतनके हाथ उसने कंगन और मौर-मुकुट नहीं भेजा, यही बहुत है।

दूसरी ओर दयालके मकानमें विवाहका आयोजन निश्चय ही अग्रसर हो रहा होगा। पूँटूके आत्मीय स्वजनोंमेंसे कोई-कोई शायद आकर हाजिर हो रहे होंगे, तथा ग्राम-भरका अपराधी व्यक्तियोंको इतने दिनोंतक लांछना और लज्जाके बदले अब कुछ आदर मिल रहा होगा। यह जानता हूँ कि जाकर क्या कहूँगा। पर वह बात कैसे कहूँगा, यही समझमें नहीं आता। उनके निर्मम

तकाजों, लज्जाहीन युक्तियों और वकालतके बारेमें मन-ही-मन सोचकर एक ओर हृदय जितना तिक्त हो उठा दूसरी ओर व्यर्थ प्रत्यावर्तनकी निराशासे घिरे हुए परिवारवालोंके उस अभागी लड़कीको और भी ज्यादा उत्पीड़ित करनेकी बात सोचते ही हृदयको उतनी ही व्यथा पहुँची। पर उपाय क्या है! बिछौनेपर लेटा हुआ बहुत रात तक जागता रहा। पूँटू की बात भूलनेमें देर नहीं लगी, पर गंगामाटीकी याद बराबर आने लगी। मन विरक्त उस क्षुद्र गाँवकी स्मृति कभी मिट नहीं सकती। इस जीवनकी गंगा-जमुनाकी धारा एक दिन यहीं आकर मिली थी और थोड़े अरसेतक पास-पास प्रवाहित हो एक दिन यहीं फिर अलग हो गई थी। एक साथ रहनेके वे समरसताके दिन अभावसे भरे, स्नेहसे मधुर, आनन्दसे उज्ज्वल और उसकी ही तरह निःशब्द वेदनासे अत्यधिक स्तब्ध हैं। विच्छेदके दिन भी हमने प्रवंचनाकी निन्दासे एक-दूसरेको कलंक नहीं लगाया नये-मुकामके लिए वाद-विवादसे गंगामाटीके शान्त घरको हम धूमाच्छन्न करके नहीं आये। वहाँके सब लोग यही जानते हैं कि फिर एक दिन हम लौट आयेंगे, फिर हँसी-खुशी शुरू होगी और फिर आरम्भ होगी भूस्वामिनी की दीन-दुखियोंकी सेवा और सत्कार। पर वह सम्भावना तो खत्म हो गई है—प्रभातकी विकसित मल्लिका दिनके अन्तका हुक्म मानकर चुप हो गई है—यह बात वे स्वप्नमें भी नहीं सोचेंगे।

आँखोंमें नींद नहीं है, निद्राहीन रजनी प्रातःकालकी ओर जितनी आगे बढ़ने लगी, उतनी ही यह इच्छा होने लगी कि यह रात खतम ही न हो। सिर्फ एक चिन्ता मानो मुझे मोहाच्छन्न करके रखे थी।

बीती हुई कहानी घूम-फिरकर मनमें आ जाती है। वीरभूम जिलेकी वह क्षुद्र कुटिया मनपर भूतकी तरह चढ़ जाती है, हमेशा काम-काजमें फँसी हुई राजलक्ष्मीके दोनों स्निग्ध हाथ आँखोंके सामने साफ नजर आते हैं, इस जीवनमें परितृप्तिका ऐसा आस्वादन कभी किया है, पर याद नहीं आता।

अभीतक पकड़ा ही गया हूँ, पकड़ नहीं पाया हूँ। पर राजलक्ष्मीकी सबसे बड़ी कमजोरी कहाँ है, आज पकड़ ली। वह जानती है कि मैं नीरोग नहीं हूँ, किसी भी दिन बीमार पड़ सकता हूँ। तब न जाने कहाँकी एक पूँटू मुँह फेरकर बैठी है, राजलक्ष्मीका कोई कसूर ही नहीं है,—इतनी बड़ी

दुर्घटनाको वह अपने मनमें स्थान नहीं दे सकती। संसारकी सब चीजोंसे वह अपनेको वंचित कर सकती है पर वह वस्तु असम्भव है,—वह उसके लिए अप्राप्य है। मौत तुच्छ है, इसके निकट एक ओर रह गये गुरुदेव और एक ओर रह गये उसके जप-तप और व्रत-उपवास। चिट्ठीमें उसने मुझे खुलासा कर नहीं लिखा है।

सुबहके वक्त शायद सो गया था। रतनकी पुकार सुनकर जब उठा तो काफी वक्त हो गया था। उसने कहा, "न जाने कौन एक बूढ़े महाशय घोड़ा-गाड़ी करके अभी आये हैं।"

वे बाबा हैं। पर गाड़ी किराये करके! सन्देह हुआ।

रतनने कहा, "साथमें एक सत्रह अठारह सालकी लड़की है।"

वह पुँटू है। यह देशमें आदमी उसे कलकत्तेके मकानतक घसीट लाया है! सुबहका प्रकाश विरक्तिसे मलिन हो गया। कहा "उन्हें उस कमरेमें लाकर बैठाओ रतन, मैं मुँह हाथ धोकर आता हूँ।" यह कहकर मैं नीचेके स्नान-घरमें चला गया।

घंटे-भर बाद लौटते ही बाबाने मेरी सादर अभ्यर्थना की, मानो मैं ही उनका अतिथि हूँ, 'आओ भैया आओ। तबीयत अच्छी है न?"

मैंने प्रणाम किया। बाबाने पुकार लगाई 'पुँटू, कहाँ गई?"

पुँटू खिड़कीके किनारे खड़ी होकर रास्ता देख रही थी, उसने पास आकर मुझे नमस्कार किया।

बाबाने कहा "इसकी बुआ शादीके पहले एक बार देखना चाहती थीं। फूफा तो हाकिम हैं पाँच सौ रुपया महीना पाते हैं। डायमण्ड हारबरमें तबादला हुआ है—घर-गृहस्थी छोड़कर बाहर आनेकी फुर्सत बुआको नहीं है। इसलिए साथ लेता आया। सोचा कि दूसरेके हाथोंमें सौंपनेके पहले उन्हें एक बार दिखा लाऊँ। इसकी बड़ी-माँने आशीर्वाद देकर कहा, "पुँटू, ऐसा ही भाग्य तेरा भी हो।"

मेरे कुछ कहनेके पहले ही वृद्ध बोले, "मैं इतनी जल्दी नहीं छोड़ूँगा भैया। हाकिम ही चाहे और कुछ हों है तो रिश्तेदार,—वहाँ रहकर काम पूरा करना होगा—तब उन्हें छुट्टी मिलेगी। जानते तो हो भैया, कि शुभ कार्यमें बहुत विघ्न होते हैं,—शास्त्रमें कहा ही है, 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि।' ऐसे एक आदमीके

ले" जानेपर किसीकी चूँतक करनेकी मजाल नहीं होगी। हमारे गाँवके लोगोंका तो विश्वास है नहीं,—वे सब-कुछ कर सकते हैं। पर ये तो हाकिम हैं, उनकी तो शक्ति ही न्यारी है।"

पूँटूके मुख्य है। समाचार मनान्तर नहीं है,—मतलबका है।

नया हुक्का खरीदकर रतन उसपर चिलम सजाकर दे गया। थोड़ी देरतक गौरसे देखनेके बाद बाबाने कहा, "ऐसा लगता है कि इस आदमीको कहीं देखा है।"

रतनने फौरन ही कहा, "जी हाँ, देखा क्यों नहीं है। देवके मकानमें जब बाबू बीमार थे—"

"ओ, तभी तो कहा कि पहचाना हुआ चेहरा है।"

"जी हाँ।" कहकर रतन चला गया।

बाबाका मुँह अत्यन्त गम्भीर हो गया। धूर्त आदमी ठहरे, शायद उन्हें सारी बात याद आ गई। चुपचाप चिलमके दम लगाते हुए बोले, "आनेके लिए दिन देखकर आया था। बहुत अच्छा दिन है। मेरी इच्छा है कि आशीर्वादका काम ऐसे ही खतम कर डालूँ। मूलन बाजारमें तो सभी चीजें मिलती हैं। नौकरको एक बार भेज नहीं सकते? क्या कहते हो?"

जब कुछ भी कहनेको न मिला तो किसी तरह सिर हिला दिया, "नहीं।"

"नहीं? नहीं क्यों? बारह बजेतक दिन बहुत अच्छा है।—पंचांग है?"

मैंने कहा, "पंचांगकी जरूरत नहीं। मैं विवाह नहीं कर सकता।"

बाबाने हुक्केको दीवारसे टिकाकर रख दिया। चेहरा देखकर मैं ताड़ गया कि वह युद्धके लिए तैयार हो रहे हैं। गलेको बहुत शान्त और गम्भीर बनाकर कहा, "सारा आयोजन एक तरहसे पूरा हो गया है। लड़कीके ब्याहकी बात है, हँसी मजाकका मामला तो है नहीं।—वचन दे जानेपर अब ना करनेसे कैसे काम चलेगा?"

पूँटू पीठ किये खिड़कीके बाहर देख रही है और दरवाजेकी आड़में रतन कान लगाये खड़ा है यह अच्छी तरह मालूम हो गया।

मैंने कहा, "वचन देकर तो नहीं आया था, यह आप भी जानते हैं और मैं भी। कहा था कि एक व्यक्तिकी अनुमति मिल जानेपर राजी हो सकता हूँ।"

"अनुमति नहीं मिली ?"

"नहीं।"

बाबा एक कश टानकर बोले, "पूँटूके पिता कहते हैं कि सब मिलाकर वह एक हजार रुपये देंगे। ज्यादा जोर लगानेपर और भी सौ-दो-सौ दे सकते हैं क्या करते हो ?"

रतनने कमरेमें घुसकर कहा, "तमाकू क्या एक बार और बदल दूँ ?"

"बदल दो। तुम्हारा नाम क्या है जी ?"

"रतन।"

"रतन ! बड़ा सुन्दर नाम है, कहाँ रहते हो ?"

"काशीमें।"

"काशी ! देवी आजकल शायद काशीमें रहती है ? वहाँ क्या करती है।"

रतनने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "उस समाचारसे आपको मतलब ?"

बाबा जरा हँसकर बोले, "नाराज क्यों होते हो बापू, क्रोध करनेकी तो कोई बात नहीं। गाँवकी लड़की है न, इसीलिए खबर जाननेकी इच्छा होती है। शायद उसके पास भी कभी जा पड़ना पड़े।—खैर, वह अच्छी तरह तो है ?"

रतन बिना कोई जवाब दिये ही चला गया, और कोई दो मिनट बाद ही चिलमको फूँकता हुआ आ गया और हुक्का हाथमें थमाकर जाना चाह रहा था कि बाबा खूब जोरसे कई दम लगाकर ही उठ खड़े हुए। बोले, "ठहरो तो भई, जरा पाखाना दिखा दो। सुबह ही निकल पड़ा हूँ न। कहते-कहते वे रतनके आगे ही बहुत तेजीके साथ कमरेसे बाहर निकल गये।"

पूँटूने मुँह फिराकर देखा और कहा, "बाबाकी बातोंपर आप एतबार मत कीजिये। सिर्फ उनके पास हजार रुपये कहाँ हैं जो देंगे ? किसी तरह दूसरोंके आगे मँगनी माँगकर दीदीकी शादी की थी,—अब वे लोग दीदीको नहीं बुलाते। कहते हैं कि हम लड़केकी दूसरी शादी करेंगे।"

इस लड़कीने इतनी बातें मुझसे पहले नहीं कही थीं। कुछ चकित होकर पूछा, "तुम्हारे पिताजी पाँच हजार रुपये नहीं दे सकते ?"

पूँटूने सिर हिलाकर कहा, "कभी नहीं। पिताजीको रेलमें सिर्फ चालीस रुपये मिलते हैं। स्कूलकी फीसकी वजहसे ही मेरे छोटे भाईकी पढ़ाई बन्द हो गई। वह कितना रोता है !" कहते-कहते उसकी दोनों आँखें डबडबा आईं।

कर अनेक कष्टोंसे संचित किया हुआ धन दे दोगे ? छुटपनमें भूल कर दिया तो क्या उसका यह मतलब है कि सारा कर्ज भरना ही पड़ेगा ? न जाने कहाँकी इस अभागीने बिना माँगे ही ट्रेनमें पेड़े और रही खिलाकर मुझे तो अच्छा फन्देमें फँसा ! एक फन्दे को काटते हुए एक दूसरे फन्देमें फँस गया ! बचनेका उपाय सोचते ही दिमाग गर्म हो गया और उस निरीह अभागीके प्रति क्रोध और विरक्तिकी सीमा न रही। और वह शैतान बाबा ! मनाने लगा कि अब वह घर न पहुँच सके, रास्तेमें ही सर्दी-गर्मीसे मर जाय । पर यह आशा भित्तिहीन है। अच्छी तरह जानता हूँ कि वह आदमी किसी तरह भी नहीं मरेगा और जब उसे मेरे मकानका पता एक बार लग गया है तो फिर आयेगा, तथा चाहे जैसे भी हो, रुपये वसूल करेगा । हो सकता है कि इस बार उन्हीं हाकिम पुरुष महाशयको भी साथ लावे । एक ही उपाय है—यः पलायति स जीवति । टिकट खरीदने गया पर जहाजमें स्थानाभाव,—सब टिकट पहलेसे ही बिक गये हैं। अतः दूसरी मेलका इन्तजार करना होगा और उसमें अभी छह-सात दिनकी देर है।

एक उपाय और है, कि मकान बदल दिया जाय, बाबाको खोजनेपर भी न मिले। पर इतनी अच्छी जगह इतनी जल्दी कहाँ मिलेगी ? किन्तु शिकारीके हाथों प्राण बचानेके सम्बन्धमें हालत ऐसी नाजुक हो गई है कि अच्छे-बुरेका प्रश्न ही गौण है,—यथारम्भं तथा गृहम्।

डर है कि मेरा गुप्त उद्वेग कहीं रतनकी नजरोंमें न आ जाय। पर मुश्किल तो यह है कि वह यहाँसे टलना ही नहीं चाहता । काशीकी अपेक्षा उसे कलकत्ता ज्यादा पसन्द आ गया है। पूछा, "चिट्ठीका जवाब लेकर क्या तुम कल ही जाना चाहते हो रतन ?"

रतनने फौरन ही जवाब दिया, "जी नहीं। आज दोपहरको मैंने माँको एक पोस्टकार्ड डाल दिया है कि कलकत्तेमें मुझे चार-पाँच दिनकी देर होगी। सब सोसायटी (=अजायबघर) और जीवित सोसायटी (=चिड़ियाखाना) बिना देखे नहीं जाऊँगा। अब फिर कब आना हो, इसका तो कोई ठिकाना नहीं।'

मैंने कहा, "पर माँ तो चिन्तित हो सकती हैं।

"जी नहीं। लिख दिया है कि गाड़ीमें लगे हुए धक्कोंकी थकान अभीतक दूर नहीं हुई है।"

"पर चिट्ठीका जवाब—"

"जी, दीजिये न। कल ही रजिस्ट्रीसे भेज दूँगा। उस मकानमें मौंकी चिट्ठी खोलनेका साहस यम भी नहीं करेगा।"

चुपचाप बैठा रहा। नाई-भैरोके सामने एक भी तरकीब नहीं चली। सब प्रस्तावोंको रद कर दिया।

जाते वक्त बाबा रुपयोंकी बातका प्रचार कर गये थे। परन्तु कोई इस बातका भ्रम न कर ले कि उन्होंने हृदयकी उदारता या अधिक श्रद्धाके कारण पेश किया हो। वे तो ऐसा करके गवाह बना गये हैं।

रतनने ठीक इसी बातका अन्दाज लगाया। कहा, "बाबू, अगर आप नाराज न हों तो एक बात कहूँ।"

"क्या बात रतन?"

रतनने कुछ संकोचके साथ कहा, "ढाई हजार रुपये तो कम रकम नहीं है बाबू, वे कौन होते हैं जिनकी शादीके लिए आपने इतना रुपया ख्वामख्वाह देनेको कहा है? इसके अलावा वह बूढ़ा बाबा हो या और कोई, लेकिन अच्छा आदमी नहीं है। उसे देने कहना अच्छा नहीं हुआ बाबू।"

उसका मन्तव्य सुनकर जैसे अनिर्वचनीय आनन्द मिला वैसे ही मनको जोर भी मिला और यही मैं चाहता था। तथापि, अपनी भाषामें किंचित् सन्देहका आभास देकर बोला, "कहना ठीक नहीं हुआ—क्यों रतन?"

रतन बोला, "हाँ बाबू, निश्चय ठीक नहीं हुआ। रुपये भी तो कम नहीं हैं, और फिर किसलिए,—कहिये तो?"

'ठीक तो है।" मैंने कहा, "तो नहीं देंगे।"

आपसमें थोड़ी देरतक देखनेके बाद रतनने कहा, "पर छोड़ेगा क्यों?"

मैंने कहा, "नहीं छोड़ेगा तो क्या करेगा? लिखकर तो दिया ही नहीं है और फिर, यही कौन जानता है कि उस वक्त मैं यहाँ रहूँगा या कहाँ भाग जाऊँगा?"

रतन पलभर चुप रहकर हँसा। बोला, "बाबू, आप बूढ़ेको पहचान नहीं सके। उस आदमीको शर्म और मान अपमान छू तक नहीं गया है। रो-धोकर, भीख माँगकर या डरा-धमकाकर वह रुपये किसी-न-किसी तरह लेगा ही। अगर यहाँ आपसे मुलाकात न होगी तो बहूजीको साथ लेकर वह काशी अवश्य

और मेरा रुपया वसूल करके छोड़ेगा। माँको बहुत शर्म आवेगी बाबू, यह तरीका ठीक नहीं है।"

यह सुनकर निस्तब्ध हो बैठा रहा। रतन मुझसे बहुत ज्यादा बुद्धिमान् है। सर्वहीन आकस्मिक कन्याका इतना जुर्माना मुझे देना ही पड़ेगा, कोई निस्तार नहीं।

रतनने गाँवके बाबाको पहचाननेमें गलती नहीं की, यह तब समझमें आया जब कि चौथे दिन वे फिर लौटकर आये। आशा थी कि इस बार हाकिम हुक्म भी उनके साथ अवश्य आवेंगे,—पर हाजिर हुए वे अकेले ही। बोले, "बेटा इस गाँवोंमें धन्य धन्य हो रहा है। सब कहते हैं कि कलियुगमें ऐसा कभी नहीं सुना। गरीब ब्राह्मणकी कन्याका ऐसा उद्धार कभी किसीने नहीं देखा। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम चिरंजीवी होओ।"

पूछा "शादी कब है?"

"इसी महीनेकी पच्चीस तारीख ठीक हुई है, बीचमें दस दिन बाकी हैं। कल 'देखना' पक्का हो जायगा आशीर्वाद,—करीब तीन बजेके बाद मुहूर्त नहीं है इसके भीतर ही सब शुभ कार्य पूरे कर लेने होंगे। पर बिना तुम्हारे पैसे सब बन्द रहेगा कुछ भी नहीं हो सकेगा। यह लो अपनी पूँटूकी चिट्ठी, उसने अपने हाथसे लिखकर भेजी है। पर यह भी कहे देता हूँ बेटा कि जिस रकमको तुमने अपनी इच्छासे दे दिया, उसका जोड़ नहीं है।" यह कहकर उन्होंने एक पीले रंगका मुड़ा हुआ कागजका टुकड़ा मेरे हाथोंमें दे दिया।

कुतूहलवश चिट्ठी पढ़नेकी कोशिश की। बाबाने अचानक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा "कालिदास रुपयेवाला है तो क्या हुआ, बिल्कुल नीच है—चमार। उसके लिए लोक-लाज शर्म मानकी कोई चीज ही नहीं। नकद ही रुपया पैसा सब अदा चुकाना होगा,—इसके बगैर अपने दुआरसे चलवायेगा। यह किसीका विश्वास नहीं करता यहाँतक कि मेरा भी नहीं।"

इस आदमीमें बड़ी लालच है। बाबातकका विश्वास नहीं करता!—चाण्डाल!

पूँटूने अपने हाथसे पत्र लिखा है। एक-दो पेज नहीं, बल्कि ठसाठस भरे हुए चार पेज। चारों पेजोंमें कृतज्ञताके साथ विनती है। ट्रेनमें रोमा दीदीने कहा था कि आजकलके नाटक-नॉवेल भी हार मान लें। बेशक आजकलके

ही नहीं, लखनऊके नाटक-ऑफिस हार मान लेंगे,—यह अस्वीकार नहीं करूँगा। इस बातका विश्वास हो गया कि इस लिखनेके प्रभावसे ही नम्बरदारजीका पौत्र चौदह गिन्नी पूरी लेकर सातवें दिन ही आकर हाजिर हो गया था।

अतएव, दूसरे दिन सुबह मैं भी चल दिया और चाचाने इसकी जाँच खूब अच्छी भाँतिसे कर ली कि मैंने रुपये सचमुच ही अपने साथ ले लिये हैं, कोई प्रतारणा तो नहीं कर रहा हूँ। बोले—

"रुपया परखना देखकर, कपड़ा लेना ठोककर। अरे भाई, हम देवता तो हैं नहीं, आदमी हैं,—भूल होते क्या देर लगती है!"

ठीक तो है! दान कर सकनेसे ही काफी बड़ा गया है। उसके हाथों चिट्ठीका जवाब भेज दिया है। लिख दिया है—तथास्तु। क्या इस बातसे न कह सका कि कोई ठीक नहीं है। इस त्रुटिके लिए अपने गुरुसे क्षमा करनेकी भी प्रार्थना कर दी है।

यथासमय गाँव पहुँचा, मकानके सब आदमियोंकी दुश्चिन्ता दूर हुई। जो आदर और सम्मान मिला, उसे बतानेके लिए कोषमें शब्द नहीं हैं।

सम्बन्ध पक्का करने और आशीर्वाद देनेके उपलक्ष्यमें कालिदास बाबूसे परिचय हुआ। वह जैसे सुने जिलाके हैं वैसे ही धनी भी। सबको वह स्मरण करानेके अलावा कि वे बहुत रुपयेवाले हैं, ऐसा नहीं मालूम पड़ा कि संसारमें और कोई दूसरा कसूर उनका है। सब धन खुद उन्हींका कमाया हुआ है। वह घमंडसे कहा, "जनाब, किस्मतको मैं नहीं मानता, जो कुछ कमाया वह सब अपने बाहुबलसे। देवी-देवताओंके अनुग्रहकी भिक्षा भी मैं नहीं माँगता। मैं कहता हूँ कि देवताकी दुहाई कापुरुष देते हैं।"

बड़े आदमी और छोटे-मोटे ताल्लुकेदार होनेके कारण उनके यहाँ गाँवके प्रायः सब आदमी उपस्थित थे और शायद अधिकांशके वे महाजन थे और बहुत बड़े महाजन—अतएव सभीने ही एक स्वरसे उनकी बातें मान लीं। तर्कपंचानन महाशयने एक संस्कृतका श्लोक सुनाया और आस-पासके उनके सम्बन्धमें दो-एक पुरानी कहानियोंका भी सूत्रपात हुआ।

उन्होंने एक अपरिचित और साधारण व्यक्ति समझकर मेरी ओर असम्मान पूर्ण दृष्टिसे देखा। उस वक्त रुपयोंके दुःखसे मेरा हृदय जल रहा था। यह दृष्टि मुझे सहन नहीं हुई। मैं अचानक बोल उठा, "यह तो नहीं जानता कि किस

परिमाणमें आपमें भावुकता है, पर यह मैं स्वीकार करता हूँ कि रुपये कमानेका अलौकिक स्वभाव है, आपका भावुकता प्रबल है।"

"इसके मानी ?"

मैंने कहा, "मानी कुछ नहीं। न तो वरको पहचानता हूँ और न कन्याको, फिर भी रुपये मेरे खर्च हो गये हैं और आपके सन्दूकमें पहुँच गये हैं। इसे तकदीर नहीं कहते तो और क्या कहते हैं ? आपने अभी कहा कि आप देवी-देवताओंका अनुग्रह नहीं लेते, लेकिन आपके लड़केके हाथकी अँगूठीसे लेकर बहूके गलेका हारतक मेरे अनुग्रहके दानसे बनेगा। हो सकता है कि बहू-भातकी दावत-तकका इन्तजाम मुझे ही करना पड़े।"

कमरेमें वज्रपात होनेपर भी शायद सब लोग इतने व्याकुल और विचलित न होते। आचार्य न जाने क्या कहनेकी कोशिश की, पर कुछ भी सुस्पष्ट या सुव्यक्त न हो सका। अन्तमें कालिदास बाबूने भीषण मूर्ति धारण कर कहा, "आप रुपये दे रहे हैं, यह कैसे मालूम हो ? और दे ही क्यों रहे हैं ?"

कहा, "क्यों दे रहा हूँ यह आप नहीं समझ सकते, आपको समझाना भी नहीं चाहता। पर सारा गाँव सुन चुका है कि मैं रुपये दे रहा हूँ, सिर्फ आपने ही नहीं सुना ! लड़कीकी माँने आपके सारे घरवालोंके हाथ-पैर जोड़े, पर आप अपने बी० ए० पास लड़केका मूल्य ढाई हजारसे एक पैसा भी कम करनेको राजी नहीं हुए। लड़कीका बाप चालीस रुपये महीनेकी नौकरी करता है, चालीस पैसे देनेकी भी उसमें शक्ति नहीं,—तब आपने यह नहीं सोचा कि आपके लड़केको खरीदनेके लिए अचानक उसके पास इतना रुपया कहाँसे आ गया ! कुछ भी हो, लड़के बेचनेके रुपये बहुत लोग लेते हैं, आप भी लें तो इसमें बुराई नहीं। पर इसके बाद चौधरियोंको अपने मकानमें बुलाकर रुपयोंका घमंड और न कीजियेगा। और यह भी याद रखियेगा कि आपने एक बाहरके आदमीके भिक्षा-दानसे लड़केकी शादी की है।"

उद्वेग और डरसे उनका मुँह काला हो गया। शायद उन्होंने यह सोचा कि अब कुछ भयंकर घटना होगी और कालिदास बाबू फाटक बन्द करवाकर लाठि पीठे पीटे बिना किसीको भी घरसे वापस न जाने देंगे। पर, थोड़ी देरतक चुप बैठे रहनेके बाद उन्होंने मुँह ऊपर उठाकर, "मैं रुपये नहीं लूँगा।"

मैंने कहा, "इसके मानी यह कि आप लड़केकी शादी यहाँ नहीं करेंगे।"

कालिदास बाबूने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, यह नहीं। मैंने वचन दिया है कि व्याह करूँगा,—इसमें ज़रा भी फ़र्क न होगा। कालिदास मुखर्जी कही हुई बातके खिलाफ़ काम नहीं करता। आपका नाम क्या है?"

बाबाने म्लान कण्ठसे मेरा परिचय दिया। कालिदास बाबूने पहचानकर कहा, "ओः—ठीक है। इनके बापके साथ एक बार मेरा बहुत ज़बरदस्त फ़ौजदारी मामला चला था।"

बाबाने कहा, "जी हाँ, आप कुछ भी नहीं भूलते। ये उन्हींके लड़के हैं और रिश्तेमें मेरे नाती होते हैं।"

कालिदास बाबूने प्रसन्न कण्ठसे कहा, "ठीक है। मेरा बड़ा लड़का अगर ज़िन्दा रहता तो इतना ही बड़ा होता। बुधवारकी शादीमें आना, बेटा। हमारी ओरसे उस दिन तुम्हारा निमन्त्रण रहा।"

[illegible] उपस्थित था। उसने एक बार कृतज्ञ नेत्रोंसे मेरी ओर देखा और फौरन ही मुँह नीचा कर लिया।

मैंने उठकर प्रणाम किया। कहा, "चाहे कहीं भी रहूँ, लेकिन कमसे कम बहू भातके दिन आकर नववधूके हाथका अन्न खा जाऊँगा। पर मैंने बहुत-सी अप्रिय बातें कही हैं, आप मुझे क्षमा करेंगे।"

कालिदास बाबू बोले, "यह सच है कि अप्रिय बातें कही हैं, पर मैंने क्षमा भी कर दिया है। अभी जानेका काम नहीं श्रीमन्त। शुभ कार्यके उपलक्ष्यमें मैंने थोड़ा-सा खानेका भी आयोजन किया है। तुम्हें खाकर जाना होगा।"

"जैसा कहेंगे वही होगा", कहकर फिर बैठ गया।

उस दिन पात्रको आशीर्वाद देनेसे लेकर उपस्थित अभ्यागतोंके खाने-पीने तकके सारे काम निर्विघ्न सुसम्पन्न हो गये। इस अध्यायके प्रारम्भमें वधुपरेशके बारेमें जिस नियमका उल्लेख किया था, उसके व्यतिक्रमका एक उदाहरण ढूँढ़ना बेकार है। संसारमें सिर्फ यही एक उदाहरण अपनी आँखोंसे देखा है। कारण, निःसम्बल, अपरिचित, असमर्थ लड़कीके बापका कान ऐंठते ही जहाँ रुपये वसूल होते हैं, वहाँ पैगम्बर बनकर हाथ जोड़नेपर बापके मालसे निस्तार नहीं मिलता। निष्ठुर, निर्दय इत्यादि गाली-गलौज करके समाज और तकदीरको धिक्कारनेपर किंचित् क्षोभ मिट सकता है, पर प्रतिकार नहीं होता क्योंकि दूसरेके बापके हाथमें प्रतिकार नहीं है, वह तो लड़कीके बापके हाथमें ही है।

५

गौहरकी खोजमें जानेपर नवीनसे मुलाकात हुई। वह मुझे देखकर खुश हुआ। लेकिन उसका मिजाज बहुत रूखा था। बोला, "जाकर वैष्णवियोंके आश्रममें देखिये, कम्बख्त तो घर ही नहीं आये हैं।"

"यह क्या मामला है नवीन? यह वैष्णवी कहाँसे आ गई?"

"एक वैष्णवी नहीं, पूराका पूरा एक दल आ जुटा है।"

"वे कहाँ रहती हैं?"

"वहीं मुरारीपुरके अखाड़ेमें।" कहकर नवीनने एक निश्वास छोड़ा, फिर कहा, "राम बाबू, अब न तो वे राम हैं और न वह अयोध्या। बूढ़े मधुरदास बाबाजीके मरते ही उनकी जगह एक छोकरा वैरागी आ गया है, उसके कोई चार गण्डा सेवा-दासी हैं। द्वारिकादास वैरागीसे हमारे बाबूकी खूब मिलता है,—वहीं तो पड़े रहते हैं।"

चकित होकर पूछा, "पर तुम्हारे बाबू तो मुसलमान हैं। वैष्णव-वैरागी अपने आश्रममें उन्हें रहने कैसे देंगे?"

नवीनने नाराज होकर कहा, "इन सब बाउल संन्यासियोंको क्या धर्माधर्म का ज्ञान है? ये जाति-जन्म कुछ भी नहीं मानते। जो भी कोई उन्हें मिलता है, वे उसे ही अपने दलमें खींच लेते हैं, सोच-विचार कुछ नहीं करते।"

पूछा, "पर उस बार जब मैं तुम्हारे यहाँ दस-पाँच दिन था, तब तो गौहरने उनके बारेमें कुछ नहीं कहा?"

नवीन बोला "कहते तो कमबख्तके गुण-अवगुण जाहिर नहीं हो जाते? सिर्फ इन कई दिनों ही बाबू अखाड़ेके पास नहीं गये। पर जैसे ही आप गये वैसे ही कापी और कलम लिये बाबू अखाड़ेमें जा धमके।"

प्रश्न करनेपर मालूम हुआ कि द्वारिका बाउल गाना गाने और दोहे बनानेमें सिद्धहस्त है। गौहर इस प्रलोभनमें फँस गया। उसकी कविता सुनाता है, उससे अपनी गलतियोंका संशोधन करा लेता है और कमलकली एक युवती वैष्णवी है—उसी आश्रममें रहती है। वह देखनेमें अच्छी है, गाना अच्छा गाती है। उसकी बातें सुनकर लोग मुग्ध हो जाते हैं। कभी-कभी वैष्णवोंकी सेवाके लिए गौहर रुपये-पैसे भी देता है। अखाड़ेकी पुरानी दीवार जीर्ण

होकर गिर गई थी, गौहरने अपने खर्चेसे उसकी मरम्मत करा दी है। पर काम उसने उस सम्प्रदायके लोगोंके अगोचर चुपचाप ही किया है।"

मुझे याद आया कि बचपनमें इस अखाड़ेके बारेमें बातें सुनी थीं। पुराने जमानेमें महाप्रभुके एक भक्त शिष्यने इस अखाड़ेकी प्रतिष्ठा की थी। तबसे शिष्य-परम्पराके अनुसार वैष्णव इसमें वास करते आ रहे हैं। अत्यन्त कुतूहल पैदा हुआ। कहा, "नवीन, मुझे एक बार अखाड़ा दिखा सकोगे?"

नवीनने सिर हिलाकर इनकार किया। बोला, "मुझे बहुत काम है और आप तो इसी देशके आदमी हैं, खुद ही न खोज सकेंगे? आध कोससे ज्यादा दूर नहीं, इस सामनेके रास्तेसे उत्तरकी ओर सीधे जानेपर ही आपको दिखाई दे जायगा, किसीसे पूछना नहीं पड़ेगा। सामनेवाले तालाबके नीचे वृन्दावन-लीला हो रही होगी। दूरसे ही कानोंमें आवाज पहुँच जायगी,—ढूँढ़ना नहीं पड़ेगा।"

मेरे जानेका प्रस्ताव नवीनने शुरूसे ही पसन्द नहीं किया। मैंने पूछा, "वहाँ क्या होता है,—कीर्तन?"

नवीनने कहा, "हाँ, दिन-रात मँजरी और करतालको चैन नहीं मिलती।"

मैंने हँसकर कहा, "यह तो अच्छा ही है नवीन। जाऊँ, गौहरको पकड़ लाऊँ।"

इस बार नवीन भी हँसा, बोला, "हाँ, जाइए। पर देखियेगा कि वहाँ कमललताका कीर्तन सुनकर कहीं आप खुद ही न अटक जायँ।"

"देखूँ, क्या होता है।" कहकर हँसता हुआ तीसरे पहर कमललता वैष्णवीके अखाड़ेमें जानेके लिए चल दिया।

अखाड़ेका पता जब चला तब शायद शाम हो चुकी थी। दूरसे कीर्तन या मँजरी करतालकी ध्वनि तो सुनाई नहीं दी, पर पुरातन बकुलका वृक्ष फौरन ही नजर आ गया, जिसके नीचे टूटी हुई वेदी है। पर एक भी व्यक्ति दिखाई नहीं दिया। एक क्षीण पथकी रेखा टेढ़ी-मेढ़ी होकर परकोटेके किनारे किनारे नदीकी ओर चली गई है। अनुमान किया कि उधर शायद किसीसे कुछ खबर मिले, अतएव उधर ही पैर बढ़ाये। गलती नहीं की। शीर्ण-संकीर्ण बेंतवनसे ढकी हुई नदीके किनारे एक परिष्कृत और गोबरसे पुती हुई कुछ उच्च भूमिपर गौहर और दूसरे एक व्यक्ति बैठे हैं।—अन्दाज लगाया कि ये ही बैरागी द्वारिकादास हैं,—अखाड़ेके वर्तमान अधिकारी। नदीका किनारा होनेकी वजहसे

वहाँ तब तक सन्ध्याका अन्धकार घना नहीं हुआ था, बाबाजीको बहुत अच्छी तरहसे देख सका। देखनेमें वह आदमी भद्र और ऊँची जातिका ही जान पड़ा। वर्ण श्याम, दुबला-पतला होनेके कारण कुछ लम्बा मालूम होता है, साधुके साज बगलेकी तरह सामनेकी ओर झुके हुए हैं, मूँछ-दाढ़ी ज्यादा नहीं है,—थोड़ी है। आँखोंमें और मुँहपर एक स्वाभाविक हँसीका भाव है। उम्रका ठीक अन्दाज नहीं लगा सका, तो भी पैंतीस-छत्तीससे ज्यादा नहीं जान पड़ी। दोनोंमें किसीने भी मेरे आगमन और उपस्थितिपर लक्ष्य नहीं किया दोनों ही नदीके उस पार पश्चिम दिगन्तमें आँखें गड़ाये स्तब्ध बने थे। वहाँ नाना रंग और नाना प्रकारके मेघोंके टुकड़ोंके बीच तृतीयाका क्षीण पांडुरंग चन्द्रमा चमक रहा है, मानो उसके कपालके बीचमें अत्युज्ज्वल सान्ध्य तारा उदित हो रहा है। बहुत नीचे दिखाई देते हैं दूर ग्रामोंके नीचे पेड़-पौधे,—मानो इनका कहीं अन्त नहीं, सीमा नहीं। काले, सफेद, पीले—नाना रंगोंके टूटे-फूटे बादलोंपर उस वक्त भी अस्तंगत सूर्यकी शेष दीप्ति खेल रही थी,—ठीक वैसे ही जैसे कि किसी दुष्ट लड़केके हाथमें रंगकी तूलिका पड़ जानेसे तस्वीरका पूरा भाव हो रहा हो। यह आनन्द क्षणभर ही रहा,—क्योंकि इतनेमें ही चित्रकारने आकर कान मल दिये और हाथसे तूलिका छीन ली।

उस खरस्रोता नदीका थोड़ा-सा हिस्सा शायद गाँववालोंने साफ कर लिया है। सामनेके उस स्वच्छ काले और गहरे पानीपर छोटी-छोटी रेखाओंमें चन्द्रमा और सान्ध्य तारेका प्रकाश पास-पास ही पड़कर झिलमिला रहा है,—मानो सुनार कसौटीपर सोना घिसकर दाम आँक रहा हो। पास ही कहीं वनमें सैकड़ों वन-मल्लिकाएँ खिली हैं और मानो उनकी गन्धसे सारी वायु भारी हो उठी है। निकटके ही किसी पेड़के असंख्य चिड़ियोंके घोंसलोंसे उनके बच्चोंकी एक-सी ची-ची विचित्र मधुरतासे कानोंमें अविराम आ रही है। यह सब ठीक है, और सहज-चित्त जो दो आदमी जड़-भरतकी तरह बैठे हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं, वे भी कवि हैं। पर धर्मके वश इस जंगलमें मैं यह सब देखने नहीं आया हूँ। नवीनने कहा था कि वैष्णवियोंका एक दल यहाँ है और उनमें कमललता वैष्णवी सबसे श्रेष्ठ है। वे कहाँ हैं?

पुकारा, "गौहर!"

ध्यान भंग कर गौहर हतबुद्धिकी तरह मेरी ओर ताकता रह गया।

बाबाजीने उसे बता दिखाकर कहा, "गुसाईं, ये ही तुम्हारे श्रीकान्त हैं न?"

गौहरने तेजीसे उठकर मुझे बड़े जोरसे बाहुपाशमें आबद्ध कर लिया, इस तरह कि जैसे उसका वह आवेग रुकना ही नहीं चाहता हो। किसी तरह मैं अपनेको मुक्त कर बैठ गया। बोला, "गुसाईंजीने मुझे एकाएक कैसे पहचान लिया?"

बाबाजीने हाथ हिलाया, "यह नहीं होगा गुसाईं, इसमेंसे आदर-बाचक 'जी' बाद देना होगा। तब ही तो रस आयेगा।"

मैंने कहा, "अच्छा, बाद दे दिया। लेकिन एकाएक मुझे कैसे पहचाना?"

बाबाजीने कहा, "एकाएक कैसे पहचानूँगा? तुम तो वृन्दावनके हमारे पहचाने हुए हो गुसाईं, और तुम्हारी दोनों आँखें तो रसकी समुद्र हैं जो देखते ही आँखोंमें भर जाती हैं। जिस दिन कमललता आई थी, उसकी दोनों आँखें भी ऐसी ही थीं,—उसे देखते ही पहचान गया और बोल उठा, 'कमललता, कमललता, इतने दिनों कहाँ थी?' कमल आकर जो अपनी हो गई तो उसका आदि-अन्त, विरह-विच्छेद नहीं रहा। यही तो साधना है गुसाईं, इसीको तो कहता हूँ रसकी दीक्षा।"

मैंने कहा, "कमललता देखने ही तो आया हूँ गुसाईं, वह कहाँ है?"

बाबाजी बहुत खुश हुए। बोले, "उसे देखोगे? पर गुसाईं तुम उससे अपरिचित नहीं हो, वृन्दावनमें उसे अनेक बार देखा है। शायद भूल गये हो, पर देखते ही पहचान जाओगे कि यह कमललता है। गुसाईं, उसे एक बार बुलाये न।" कहकर बाबाजीने गौहरको पुकारनेका इशारा किया। इनके निकट सब 'गुसाईं' हैं। बोले, "कहो कि श्रीकान्त तुम्हें देखने आया है।"

गौहरके चले जानेके बाद पूछा, "गुसाईं, मेरे बारेमें सारी बातें शायद गौहरने तुम्हें बताई हैं?"

बाबाजीने सिर हिलाकर कहा, "हाँ, सब बताया है। जब उससे पूछा कि 'गुसाईं, तुम इस सात दिन क्यों नहीं आये?' तो उसने कहा कि श्रीकान्त आये थे।' यह भी उसने कहा कि 'तुम फिर जल्दी ही आओगे।' यह भी मालूम हुआ कि तुम बर्मा जानेवाले हो।"

सुनकर रूस्तोरको साँस छोड़कर मन-ही-मन मैंने कहा, रक्षा हुई। बर

कि वास्तवमें किसी अलौकिक आध्यात्मिक शक्ति-बलके कारण तो ये मुझे देखते ही नहीं पहचान गये हैं। कुछ भी हो, यह मानना ही पड़ेगा कि मेरे बारेमें इस क्षेत्रमें उनका अन्दाज गलत नहीं है।

बाबाजी अच्छे ही जान पड़े। कमसे कम असाधु प्रकृतिके नहीं मालूम हुए। बहुत सरल। पर बाबाजीने सरलतासे स्वीकार कर लिया कि न जाने क्यों गौहरने मेरी सब बातें,—अर्थात् जितना वह जानता है इन लोगोंसे कह दी हैं। कविता और वैष्णव-रस-चर्चामें वे कुछ-कुछ जानकार-से,—कुछ विद्याप्राप्त-से मालूम हुए।

थोड़ी देर बाद ही गौहर-गुसाईंके साथ कमललता आकर हाजिर हुई। उम्र तीससे ज्यादा नहीं होगी,—श्यामवर्ण, इकहरा बदन, हाथमें कुछ चूड़ियाँ हैं पीतलकी,—सोनेकी भी हो सकती हैं। बाल छोटे-छोटे नहीं हैं, गिरह देकर पीठपर झूल रहे हैं। गलेमें तुलसीकी माला और हाथकी थैलीके भीतर भी तुलसीकी जपमाला है। छापे-तिलकका बहुत ज्यादा आडम्बर नहीं है अथवा सुबहके वक्त तो था, पर इस वक्त कुछ मिट गया है। उसके मुखकी ओर देखकर मैं अत्यन्त आश्चर्यान्वित हो गया। सविस्मय यह खयाल होने लगा कि इन आँखोंका और चेहरेका भाव तो जैसे परिचित है, और चलनेका ढंग भी जैसे पहले कहीं देखा है।

वैष्णवीने बात शुरू की। फौरन ही समझ गया कि वह भीखके स्तरकी प्राणी नहीं है। उसने किसी तरहकी भूमिका नहीं बाँधी। मेरी ओर सीधे देखकर कहा "कहो गुसाईं, पहचान सकते हो?"

मैंने कहा, "नहीं। लेकिन ऐसा लगता है कि जैसे कहीं देखा है।"

वैष्णवीने कहा, "वृन्दावनमें देखा था। बड़े गुसाईंजीसे नहीं सुना?"

मैंने कहा, "सो सुना है। पर मैं तो जन्म-भर कभी वृन्दावन नहीं गया।"

वैष्णवीने कहा "गये कैसे नहीं! बहुत पुरानी बात है, इसलिए अचानक याद नहीं आ रही है। वहाँ गायें चराते वक्त लौटकर आते, वन-फूलोंकी माला गूँथकर हमारे गलेमें पहनाते—सब भूल गये!" यह कहकर वह होंठोंको दबाकर धीरे-धीरे हँसने लगी।

मैंने यह तो समझा कि मजाक कर रही है। पर यह ठीक नहीं कर सका कि प्रिय या कटु। गुसाईंजीने, बोली, "रात हो रही है, अब बगीचेमें क्यों बैठे

हो ! भीतर चलो ।"

मैंने कहा, "जंगलके रास्ते हमें बहुत दूर जाना होगा । कल फिर आयेंगे ।"

वैष्णवीने पूछा, "यहाँका पता किसने बताया ? नवीनने ?"

"हाँ उसीने ।"

"कमललताकी बात नहीं बताई ?"

"हाँ, बताई थी ।"

इस बारेमें तुम्हें सावधान नहीं किया कि वैष्णवीका साथ छोड़कर अचानक बाहर नहीं आया जा सकता ?"

हँसते हुए बोला, "हाँ, यह भी कहा है ।"

वैष्णवी हँस पड़ी । बोली, "नवीन होशियार आदमी है । उसकी बातें न मानकर अच्छा नहीं किया ।"

"क्यों भला ?"

वैष्णवीने इसका जवाब नहीं दिया । गौहरको दिखाते हुए कहा, "गुसाईंने कहा था कि नौकरी करनेके लिए विदेश जा रहे हो । पर तुम्हारे तो कोई नहीं है, फिर नौकरी क्यों करोगे ?"

"तब क्या करूँ ?"

"हम जो करती हैं । गोविन्दजीका प्रसाद तो कोई छीन नहीं सकता ?"

"यह जानता हूँ । पर वैरागीगीरी मेरे लिए नई नहीं है ।"

वैष्णवीने हँसकर कहा, "समझती हूँ । शायद प्रकृति सहन नहीं करती ?"

"नहीं, ज्यादा दिन सहन नहीं करती ।"

वैष्णवी होंठ दबाकर हँसी । बोली, "तुम्हारा काम अच्छा है । भीतर आओ उन लोगोंसे तुम्हारा परिचय करा दूँ । यहाँ कमलोंका वन है ।"

'सुना है, पर अँधेरेमें लौटेंगे कैसे ?"

वैष्णवी फिर हँसी, बोली, "अँधेरेमें हम लौटने ही क्यों देंगी ? अंधकार दूर हो जाय ही । तब जाना । आओ ।"

"चलो ।"

वैष्णवीने कहा, "गौर ! गौर !"*

"गौर गौर" कहते हुए मैंने भी अनुसरण किया ।

---

* 'गौर' का मतलब यहाँ गौरांग-महाप्रभु या वैष्णवोंसे है ।

६

हालाँ कि धर्माचरणमें मेरी रुचि और विश्वास नहीं है, किन्तु जिनका विश्वास है उनको बाधा नहीं पहुँचाता। मनमें निश्चय रूपसे जानता हूँ कि मैं इस दुस्तर विषयका ओर-छोर कभी न खोज पाऊँगा। तथापि, धार्मिकोंकी मैं भक्ति करता हूँ। विख्यात स्वामीजी और सुख्यात बापूजी,—किसीको भी अश्रद्धा नहीं करता, दोनोंकी ही वाणी मेरे कानोंमें समान मधुकी वर्षा करती है।

विशेषज्ञोंके मुँहसे सुना है कि बंगालकी आध्यात्मिक साधनाका निगूढ़ रहस्य वैष्णव सम्प्रदायमें ही गुप्त है, और यही बंगालकी वाञ्छित अपनी चीज है। इसके पहले संन्यासी और साधुओंकी थोड़ी-बहुत संगत की है। एक-आधका विवरण जाहिर करनेकी इच्छा नहीं है। पर इस दफा अगर दैवात् वाञ्छित चीज नसीब होती हो तो संकल्प किया कि इस मौकेको व्यर्थ नहीं जाने दूँगा। पुँटूके बहू-भातके निमन्त्रणमें मुझे जाना ही होगा। कमसे कम कमललताके निर्मल मेलके बहाने ये कई दिन अगर इन वैष्णवी-अखाड़ेके आस-पास कहीं काटने पड़े तो और चाहे जो हो, जीवनके संचयमें विशेष नुकसान न होगा।

अन्दर जाकर देखा कि कमललताका कहना झूठ नहीं था। यहाँ कमलोंका ही वन है, पर छिन्न-विच्छिन्न। मत्त हाथियोंसे साक्षात् तो नहीं हुआ पर उनके बहुत-से पदचिह्न विद्यमान थे। नाना उम्र और तरह-तरहके चेहरोंकी वैष्णवियाँ नाना कामोंमें लगी हुई हैं: कोई लड्डू बना रही है, कोई मैदा गूँथ रही है, कोई फल-मूल सजा रही हैं,—यह सब ठाकुरजीके रातके भोगकी तैयारियाँ हैं। एक अपेक्षाकृत छोटी उम्रकी वैष्णवी ध्यानमग्न हो फूलोंकी माला गूँथ रही है, और एक उसीके निकट बैठी हुई नाना रंगके रंगे हुए छोटे-छोटे कपड़ोंके टुकड़े सावधानीसे कुंचित करके तहसे रख रही है। सम्भवतः श्रीगोविन्द जी कल स्नानके बाद उन्हें पहनेंगे। कोई भी खाली नहीं है। उनका काममें आग्रह और एकाग्रता देखकर आश्चर्य होता है। सबने मेरी ओर ताका पर निमेष-मात्रके लिए। कुतूहलका अवसर नहीं है। उनके होंठ हिल रहे हैं, शायद मन-ही-मन जप हो रहा है। इधर समय खतम हो गया है। एक-एक करके दिये जलने शुरू हो गये हैं। कमललताने कहा, "चलो, भगवान्‌को नमस्कार कर आवें। किन्तु, अच्छा, यह तो बताओ कि तुम्हें क्या कहकर पुकारूँ? 'नये गुसाईं' कहकर पुकारूँ तो कैसा?"

मैंने कहा, "क्यों नहीं पुकारतीं ? तुम्हारे यहाँ जब गौहरतक 'गौहर गुसाईं' हो गया है, तब मैं तो कमसे कम ब्राह्मणका लड़का हूँ। पर मेरे नामने क्या बुराई की है ? उसीके साथ 'गुसाईं' जोड़ दो न।"

कमललताने होंठ दबाकर हँसते हुए कहा, "यह नहीं होगा ठाकुर, नहीं होगा। वह नाम मैं नहीं ले सकती,—अपराध होता है। भागो!"

"मानता हूँ, पर अपराध किसका ?"

"किसका —यह सुनकर तुम क्या करोगे तुम तो लूप हो!"

जो वैष्णवी माला गूँथ रही थी वह हँस पड़ी और उसने मुँह नीचा कर लिया। ठाकुरजीके कमरेमें काले पत्थर और पीतलकी राधा-कृष्णकी युगल मूर्तियाँ हैं। एक नहीं, बहुत-सी। यहाँ भी पाँच-छह वैष्णवियाँ काममें लगी हुई हैं। आरतीका वक्त हो रहा है, साँस लेनेकी भी फुरसत नहीं है।

भक्तिपूर्वक यथारीति प्रणाम कर बाहर आ गया। ठाकुरजीके कमरेके अलावा और सब कमरे मिट्टीके हैं, पर साफ-सफाईकी सीमा नहीं है। बिना आसनके कहीं भी बैठते संकोच नहीं होता, तथापि कमललताने सामनेके बरामदे में एक ओर आसन बिछा दिया। कहा, "बैठो, तुम्हारे रहनेका कमरा-वमरा ठीक कर आऊँ।"

"मुझे क्या आज यहीं रहना पड़ेगा ?"

"क्यों, डर क्या है ? मेरे रहते तुम्हें तकलीफ नहीं होगी।"

मैंने कहा, "तकलीफके लिए नहीं कहता पर गौहर जो नाराज होगा।"

वैष्णवीने कहा, "यह भार मेरे ऊपर है। मेरे रहनेपर तुम्हारा मित्र जरा भी नाराज न होगा।" कहकर वह हँसती हुई चली गई।

मैं अकेला बैठा हुआ अन्यान्य वैष्णवियोंका काम देखने लगा। सचमुच ही उनके पास नष्ट करनेको वक्त भी बचा नहीं है। मेरी ओर किसीने घूमकर भी नहीं देखा। करीब दस मिनट बाद जब कमललता लौटकर आई तब काम खतम कर सब उठ गई थीं। पूछा, "तुम इस मठकी अधिकारिणी हो क्या ?"

कमललताने जीभ काटकर कहा, "हम सब गोविन्दजीकी दासी हैं,—कोई छोटा-बड़ा नहीं है। एक-एकपर एक-एकका भार है। मेरे ऊपर प्रभुने यह भार दिया है।" कहकर उसने मन्दिरके उद्देश्यसे हाथ जोड़कर सिरसे लगा लिये। कहा, "अब कभी ऐसी बात जबानपर मत लाना।"

मैंने कहा, "ऐसा ही होगा। अच्छा, बड़े गुसाईं और गौहर गुसाईं क्यों नहीं दिखाई दे रहे हैं।"

वैष्णवीने कहा, "वे अभी आते ही होंगे। नदीमें स्नान करने गये हैं।"

"इतनी रातको! और इस नदीमें!"

वैष्णवीने कहा "हाँ।"

"गौहर भी!"

"हाँ, गौहर गुसाईं भी।"

"पर मुझे ही क्यों नहीं स्नान कराया!"

वैष्णवीने हँसकर कहा, "हम किसीको स्नान नहीं कराती। वे अपने आप करते हैं। भगवान्‌की दया होनेपर एक दिन तुम भी करोगे और उस दिन मना करनेपर भी नहीं मानोगे।"

मैंने कहा, "गौहर भाग्यवान् है। पर मेरे पास तो रुपया नहीं है। मैं गरीब आदमी हूँ इस कारण शायद मेरे प्रति परमात्माकी दया न हो।"

वैष्णवी शायद इशारा समझ गई और नाराज होकर कुछ कहनेवाली ही थी पर कहा नहीं। फिर बोली, "गौहर गुसाईं कुछ भी हों, पर तुम भी गरीब नहीं हो। जो आदमी ढेर रुपया देकर दूसरेकी लड़कीका उद्धार करता है भगवान् उसे गरीब नहीं मानते। तुम्हारे ऊपर भी दया होना आश्चर्य नहीं है।"

मैंने कहा, "यह तो बड़ डरकी बात है। तो भी किस्मतमें जो लिखा है वह होगा ही, टाला नहीं जा सकता,—पर पूछता हूँ कि कन्याके उद्धारकी खबर तुम्हें कहाँसे मिली!"

वैष्णवीने कहा, "हमें चार जगहसे भीख माँगनी पड़ती है, इसलिए हमें सब खबरें मिल जाती हैं।"

"पर यह खबर शायद अभीतक नहीं मिली है कि मुझे रुपये देकर लड़कीका उद्धार नहीं करना पड़ा है!"

वैष्णवी कुछ विस्मित हुई। बोली, "नहीं, यह खबर नहीं मिली। पर हुआ क्या शादी टूट गई!"

"शादी नहीं टूटी, लेकिन कालिदास बाबू टूट गये हैं,—खुद दूल्हाके बाप ही। लड़कीको देखकर दूल्हेकी मिठाईके थालसे भिड़े हुए हलवेको हाथ पसारकर लेनेमें उन्हें शर्म आई। इससे मैं भी बच गया।" कहकर मैं

सारा मामला इशारेमें बता दिया। वैष्णवीने सविस्मय कहा, "कहते क्या हो जी, यह तो बिलकुल अनहोनी बात हुई!"

"ईश्वरकी दया। सिर्फ गौहर गुसाईं ही क्या अँधेरेमें गम्भी नदीके पानीमें गोते लगायेगा, संसारमें और कहीं भी कुछ अनहोनी बात नहीं होगी? उनकी दीक्षा ही फिर किस तरह जाहिर होगी, बोलो?" कहकर जैसे ही मैंने वैष्णवीका मुँह देखा वैसे ही समझ गया कि यह ठीक नहीं हुआ,—सीमा लाँघ गया हूँ। वैष्णवीने किन्तु प्रतिवाद नहीं किया, मन्दिरकी ओर हाथ उठाकर उसने सिर्फ निःशब्द नमस्कार कर लिया। मानो अपराधको क्षमा करनेकी भिक्षा माँगी।

एक वैष्णवी एक बड़े थालमें मैदाकी पूरियाँ लिये हुए सामनेसे ठाकुरजीके कमरेकी ओर निकल गई। उसे देखकर कहा, "आज तुम्हारे यहाँ समारोह है। शायद कोई खास त्योहार है,—नहीं?"

वैष्णवीने कहा, "नहीं, आज कोई त्योहार नहीं है। यह हमारे यहाँका रोजका किस्सा है। ठाकुरजीकी दयासे कभी कमी नहीं रहती।"

"खुशीकी बात है। पर आयोजन शायद रातका ही ज्यादा होता है?"

वैष्णवी बोली, "सो भी नहीं। सेवामें सुबह-शामका कोई सवाल ही नहीं है। यदि दया करके दो दिन रह जाओ तो खुद ही सब देख लोगे। हम सब दासीकी दासी हैं, उनकी सेवा करनेके अलावा संसारमें हमारा और कोई काम तो है ही नहीं।" कहकर उसने मन्दिरकी ओर हाथ जोड़कर फिर एक बार नमस्कार किया।

पूछा, "दिनभर तुम लोगोंको क्या-क्या करना होता है?"

वैष्णवीने कहा, "आकर तो देखो, यही।"

"आकर देखा मसाला कूटना, रसोईके लिए तरकारी बनाना, दूध दुहना, माला गूँथना, कपड़ा रँगना—ऐसे ही और बहुत-से काम। तुम सब दिनभर क्या सिर्फ यही किया करती हो?"

वैष्णवीने कहा, "हाँ, दिनभर सिर्फ यही करती हैं।"

"पर यह सब तो केवल घर-गृहस्थीके काम हैं, सभी औरतें करती हैं। तुम भजन-साधन कब करती हो?"

वैष्णवी बोली, "यही हमारे भजन-साधना है।"

"यह रसोई बनाना, पानी भरना, कूटना-पछोरना, माला गूँथना, कपड़े रँगना,—इसीको 'साधना' कहते हैं?"

वैष्णवीने कहा, "हाँ, इसीको साधना कहते हैं। दास-दासियोंकी इससे बढ़कर साधना हमें और कहाँ मिलेगी गुसाईं?" कहते-कहते उसकी दोनों सजल आँखें मानो अनिर्वचनीय मधुरतासे परिपूर्ण हो उठीं। एकाएक मुझे खयाल हुआ कि इस अपरिचिता वैष्णवीका मुँह जितना सुन्दर है, उतना सुन्दर मुँह मैंने संसारमें कभी नहीं देखा। कहा, "कमललता, तुम्हारा मकान कहाँ है?"

वैष्णवीने आँचलसे आँखें पोंछकर हँसते हुए कहा, "पेड़की छाया।

"पर पेड़की छाया तो हमेशा न थी?"

वैष्णवीने कहा, "तब था ईंट और काठके बने हुए किसी मकानका एक छोटा-सा कमरा। पर कहानी सुनानेका वक्त तो अब नहीं है गुसाईं। मेरे साथ आओ, तुम्हारा नया कमरा दिखा दूँ।"

कमरा बढ़िया है। उसने बाँसकी खूँटीपर टँगा हुआ एक साफ रेशमी कपड़ा दिखाते हुए कहा, "यह पहनकर ठाकुरजीके कमरेमें आना। देखो, देर न करना।" कहकर वह तेजीसे चली गई।

एक ओर एक छोटे-से तख्तपर बिछौना बिछा है। निकट ही एक चौकीपर कुछ किताबें और एक थालीमें बकुल-फूल रखे हैं। कभी-कभी कोई प्रदीप जलाकर शायद धूप जला गया है, कमरा अब भी उसकी गन्ध और धुएँसे भरा हुआ था,—बहुत अच्छा लगा। दिनभरकी क्लान्ति तो थी ही —ठाकुर देवताओंसे हमेशा दूर-दूर रहता आया हूँ; उधर आकर्षण नहीं था,—बस कपड़े उतारकर झटसे बिछौनेपर लेट गया। यह किसका कमरा है, एक रातके लिए वैष्णवी न जाने किसकी शय्या मुझे उधार दे गई है,—अथवा शायद यह उसीकी है,—इन सब विचारोंसे मेरा मन स्वभावतः ही बहुत संकोच अनुभव करता है। पर आज कुछ भी खयाल न हुआ, मानो न जाने कबसे परिचित अपने ही आदमियोंके पास आ पहुँचा हूँ। शायद कुछ तन्द्रा आ गई थी कि इतनेमें ही जैसे किसीने दरवाजेके बाहरसे आवाज दी, "नये गुसाईं, मन्दिर नहीं आओगे? वे तुम्हें बुला जो रहे हैं।"

झटपट उठ बैठा। मंजीरेके साथ-साथ कीर्तनके गानेकी आवाज भी कानोंम

पहुँची। बहुत-से आदमियोंका समवेत कोलाहल ही नहीं था, गला बहुत भी जितनी मधुर थी उतनी ही स्पष्ट थी। स्त्रीका कण्ठ था,—बिना आँखोंसे देखे ही निस्सन्देह अनुमान किया कि कमललता है। नवीनका विश्वास है कि इस मीठे स्वरने ही उसके मालिकको पागल किया है। सोचा कि यह असम्भव नहीं है और बहुत असंगत भी नहीं है।

मन्दिरमें घुसकर एक ओर चुपचाप बैठ गया, किसीने फिरकर नहीं देखा। सबकी दृष्टि राधाकृष्णकी युगल-मूर्तिपर लगी थी। बीचमें खड़ी हुई कमललता कीर्तन कर रही है—

मदनगोपाल जय जय यशोदाके लालकी,
यशोदाके लाल जय जय, जय नंदलालकी।
नंदलाल जय जय गिरिधारीलालकी
गिरिधारीलाल जय जय गोविन्द-गोपालकी॥

इन थोड़ेसे सरल और साधारण शब्दोंके आलोड़नसे भक्तोंका गम्भीर वक्ष स्पन्द मथित होकर कौन-सा अमृत तरंगित हो उठता है, यह मेरे लिए उपलब्ध करना कठिन है। पर देखा कि उपस्थित व्यक्तियोंमेंसे किसीकी भी आँखें शुष्क नहीं हैं। गायिकाकी दोनों आँखोंको प्लावित कर झर झर अश्रु झर रहे हैं और शब्दोंके गुरुभारसे बीच-बीचमें उसका कण्ठ-स्वर जैसे टूट जाता है। मैं इन सब रसोंका रसिक नहीं हूँ, लेकिन मेरे मनके भीतर भी एकाएक न जाने कैसा होने लगा। द्वारिकादास बाबाजी भीतकी दीवारका सहारा लिये बैठे थे। यह पता नहीं चला कि वे सचेत हैं या अचेत। और फिर थोड़ी देर पहलेकी स्निग्ध हास्य-परिहास-चंचल कमललता ही नहीं, बल्कि साधारण गृह-कर्ममें निपुण जो सब वैष्णवियाँ अत्यन्त साधारण, तुच्छ और कुरूप लगी थीं वे भी मानो इस धूपके धुएँसे आच्छन्न घरके मन्द-म्लान दीपके प्रकाशमें अनन्तके लिए मेरी नजरोंमें अत्यन्त सुन्दर हो उठीं। मुझे भी मानो ऐसा लगा कि पत्थरकी यह निकरनी मूर्ति यथार्थमें आँखें मलकर देख रही है और कान लगाकर कीर्तनका समस्त माधुर्य उपभोग कर रही है।

आँखोंकी इस विह्वल-मुग्धतासे मैं बहुत डरता हूँ, व्यस्त होकर बाहर चला आया,—किसीने लक्ष्य भी नहीं किया। देखता हूँ कि आँगनके एक कोनेमें गौहर बैठा है और वहींसे प्रकाशकी एक रेखा आकर उसके चेहरेपर पड़ी

है। मेरे पैरोंकी आघातसे उसका ध्यान भंग नहीं हुआ, पर उस एकांत तन्मय रिक्त मूर्तिकी तरह मैं भी न हिल सका, वहीं स्तब्ध हो खड़ा रहा। ऐसा लगा कि सिर्फ मुझको ही अकेला छोड़कर इस जगतके सब व्यक्ति और किसी दूसरे लोकमें चले गये हैं—वहाँका पथ मैं नहीं पहचानता। कमरेमें जा, रोशनी बुझाकर लेट गया। यह अच्छी तरहसे जानता हूँ कि ज्ञान, विद्या और बुद्धिमें मैं इन सबसे बड़ा हूँ, तथापि न जाने किसकी व्यथासे अन्दर ही अन्दर मन रोने लगा और वैसे ही अनजान कारणसे आँखोंके कोनोंसे पानीकी बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं।

पता नहीं कि कितनी देरसे सो रहा था। कानमें भनक पड़ी, "अरे नये गुसाईं!"

जागकर उठ बैठा, "कौन?"

"मैं हूँ तुम्हारी ग्रामकी बन्धु,—इतना सोते हो?"

देखा कमरेमें चौखटके पास कमललता वैष्णवी खड़ी थी। बोला, "जागनेसे क्या फायदा होता? सोनेमें कमसे कम कुछ सुखभोग तो हुआ।"

"यह मालूम है। पर ठाकुरका प्रसाद नहीं लोगे?"

"लूँगा।"

"तो फिर, सो क्यों रहे हो?"

"जानता हूँ कि कोई दिक्कत नहीं होगी प्रसाद तो मिलेगा ही। मेरी ग्रामकी बन्धु रातको भी परित्याग नहीं करेगी।"

वैष्णवीने सहास्य कहा "यह अधिकार वैष्णवोंको है, तुम लोगोंको नहीं।"

"आशा मिलनेपर वैष्णव होते क्या देर लगती है? तुमने गौहरको गुसाईं बना डाला तो मैं ही क्या इतनी अवहेलनाका पात्र हूँ? आज्ञा होनेपर वैष्णवोंका दासानुदास होनेको भी राजी हूँ।"

कमललताका कण्ठस्वर कुछ गम्भीर हुआ। कहा, "वैष्णवोंकी हँसी नहीं उड़ानी चाहिए, गुसाईं, अपराध होता है। गौहर गुसाईंको भी तुमने गलत समझा है। उनके अपने आदमी उन्हें काफिर कहते हैं, पर नहीं जानते कि वे पक्के मुसलमान हैं, पिता-पितामहके धर्मविश्वासको उन्होंने नहीं त्यागा है।"

"पर उनका भाव देखनेपर तो यह मालूम नहीं होता।"

वैष्णवीने कहा, "यही तो आश्चर्य है। पर अब देरी मत करो, आओ।"

फिर कुछ सोचकर कहा, "यह प्रसाद तो तुम्हें यहीं दे जाऊँ—क्या कहते हो ?"

"आपत्ति नहीं। पर गौहर कहाँ है ? वह हो तो दोनोंको एक साथ ही दो न।"

"उनके साथ बैठकर खाओगे ?"

"हमेशा ही तो खाता हूँ। बचपनमें उसकी माँने मुझको बहुत खिलाया है। और उस वक्त तुम्हारे प्रसादकी अपेक्षा वह कम मीठा नहीं होता था। इसके अलावा गौहर भक्त है, गौहर कवि है—कविकी जातिकी खोज नहीं की जाती।"

उस अन्धकारमें भी ऐसा लगा कि वैष्णवीने एक साँसको दबा लिया। फिर कहा, "गौहर गुसाईं नहीं हैं। वह कब चले गये हमें पता नहीं।"

मैंने कहा, "मैंने देखा था कि गौहर आँगनमें बैठा है। उसे क्या तुम भीतर नहीं आने देतीं ?"

वैष्णवीने कहा, "नहीं।"

"गौहरको आज मैंने देखा था। कमललता, मेरे अन्दाजसे तुम नाराज हो गई, किन्तु तुम भी अपने देवताके साथ कम हँसी नहीं कर रही हो। यह बात नहीं कि अपराध सिर्फ एक तरफसे ही होता हो।"

वैष्णवीने इस प्रश्नका कोई जवाब नहीं दिया। वह चुपचाप बाहर चली गई। थोड़ी देर बाद ही उसने एक दूसरी वैष्णवीके हाथमें रोशनी और आसन तथा कुछ प्रसादका पात्र लेकर प्रवेश किया। कहा, "नये गुसाईं, अतिथि सेवामें त्रुटि हो सकती है, पर यहाँका सब-कुछ ठाकुरजीका प्रसाद है।"

मैंने हँसकर कहा, "ओ तम्बाकी वस्तु, यह कोई डरकी बात नहीं, वैष्णव न होते हुए भी तुम्हारे नये गुसाईंमें रस-बोध है, अतिथिकी त्रुटिके लिए वह रस-भंग नहीं करेगा। जो है रख दो—लौटकर देखोगी कि प्रसादका एक कण भी बाकी नहीं है।"

"ठाकुरजीका प्रसाद ऐसे ही तो खाया जाता है," यह कह और सिर नीचा कर कमललताने सारी खाद्यसामग्री एक-एक कर सिलसिलेवार सजा दी।

दूसरे दिन बहुत सवेरे ही नींद टूट गई। भारी मंजीरेकी आवाजके साथ मंगल-आरती शुरू हो गई है। प्रभातीके सुरमें कीर्तनका पद कानमें पड़ा—

बिना खाये ही सूख-सूख मर जाती, तो भी नहीं जाती।"

"कमललता, तुम्हारा देश कहाँ है?"

"कह ही तो रहा था गुसाईं मेरा घर पेड़के नीचे है, मेरा देश गली गलीमें है।"

"तो पेड़के नीचे और गली गलीमें न रहकर मठमें किसलिए रहती हो?"

"बहुत दिनोंतक गली-गलीमें ही थी गुसाईं, अगर कोई संगी मिल जाय तो फिर एक बार गलीको सड़क बना लूँ।'

मैंने कहा, "इस बातपर तो विश्वास नहीं होता। तुम्हें संगी-साथीकी क्या कमी है कमललता! जिससे कहोगी वही राजी हो जायगा।"

"वैष्णवीने हँसते हुए कहा, "तुमसे कहती हूँ नये गुसाईं,—राजी होगे?"

मैं भी हँसा। कहा, "हाँ, राजी हूँ। नाबालिग उम्रमें जो यात्राके दलसे नहीं डरा, बालिग अवस्थामें उसे वैष्णवीका क्या डर!'

"यात्राके दलमें भी रहे थे?"

"हाँ।"

"तो गाना भी गा सकते हो?"

"नहीं। मालिकने इतनी दूर आगे बढ़ने ही नहीं दिया; इसके पहले ही जवाब दे दिया। यह नहीं कहा जा सकता कि तुम मालिक होतीं तो क्या करतीं!"

वैष्णवी हँसने लगी। बोली, "मैं भी जवाब दे देती। इस लड़की, पर इसमेंसे एकके भी जानेपर काम चल जायगा। इस देशमें चाहे जैसे भी भगवान्‌का नाम लेनेपर भिक्षाका अभाव नहीं होता। चलो न गुसाईं, निकल पड़ें। कह रहे थे कि वृन्दावनधाम कभी नहीं देखा है चलो तुम्हें दिखला लाऊँ। बहुत दिन घरमें बैठे-बैठे काटे, रास्तेका नशा जैसे फिर अपनी ओर खींचना चाहता है। सच, चलोगे नये गुसाईं?"

अचानक उसके मुँहकी ओर देखकर बहुत विस्मय हुआ। कहा, "हमारा परिचय हुए तो अभी चौबीस घण्टे भी नहीं हुए, मुझपर इतना विश्वास कैसे हो गया?" वैष्णवीने कहा, "ये चौबीस घंटे सिर्फ एक पक्षके लिए ही तो नहीं हैं गुसाईं दोनों पक्षोंके लिए हैं। मेरा विश्वास है कि रास्तेमें प्रवासमें भी तुमपर मेरा अविश्वास न होगा। कल पंचमी है, जानेका बड़ा अच्छा दिन

दिन है,—चला। और रास्तेके किनारे रेलका पथ तो है ही,—अच्छा नहीं लगे तो छोड़ आना। मैं मना नहीं करूँगी।"

एक वैष्णवीने आकर खबर दी, 'ठाकुरजीका प्रसाद कमरेमें रख दिया गया है।' कमललताने कहा, "चलो तुम्हारे कमरेमें चलकर बैठें।"

"मेरे कमरेमें! अच्छी बात है।"

और एक बार उसके मुँहकी तरफ देखा। इस बार लेशमात्र भी सन्देह न रहा कि वह हँसी नहीं कर रही है। यह भी निश्चित है कि मैं उपलक्ष्य मात्र हूँ, पर चाहे जिस कारणसे हो, उसकी ऐसी हालत मालूम हुई कि वह चाहे जिस कारणसे हो, यदि यहाँके बन्धन तोड़कर भाग सके तो मानो उसकी जानमें जान आ जाय —उस एक क्षणका भी विलंब सहन नहीं हो रहा है।

कमरेमें आकर खाने बैठा। बहुत बढ़िया प्रसाद है। मांगनेका पर्याप्त अच्छी तरह जम जाता, पर एक बहुत जरूरी कामसे कोई कमललताको बुला ले गया। अतः अकेले ही मुँह बन्द किये हुए सेवा समाप्त करनी पड़ी। बाहर निकलनेपर कोई भी नजर नहीं आया, द्वारिकादास बाबाजी भी न जाने कहाँ चले गये। दो-तीन पुरानी वैष्णवियाँ घूम फिर रही हैं,—कल शामको ठाकुरजीके कमरेके पूर्वमें शायद ये ही अप्सरा जैसी लगी थीं, किन्तु आज दिनकी तेज रोशनीमें इनका वह अप्राकृत सौन्दर्य बोध उठना मञ्जूर नहीं रहा। मन न जाने कैसा हो गया, सीधा आश्रमके बाहर चला आया। वही शैवालाच्छन्न क्षीणकाया मन्दस्रोता कुटिलचिता नदी और वही वृक्ष-गुल्म-कंटकाकीर्ण तटभूमि, वही मस्तकतुल्य सूखे पेड़ोंका पुंज और सुविस्तृत वेणुवन।

बहुत दिनोंके अनभ्यासके कारण शरीर सनसनाने लगा, कहीं दूसरी जगह जानेकी सोच ही रहा था कि एक आदमी जो कहीं छिपा बैठा था, अब उठा और नजदीक आकर खड़ा हो गया। पहले तो आश्चर्य हुआ कि इस जगह भी आदमी हो सकता है। उसकी उम्र मेरे बराबर ही होगी, और दस वर्ष ज्यादा होना भी असम्भव नहीं है। दुबला, दुर्बल-स्वास्थ्य, शरीरका रंग बहुत ज्यादा काला नहीं है, पर मुँहका नीचेका हिस्सा जैसे बहुत ही छोटा है। आँखोंकी दोनों भौंहें भी ऐसी ही असाधारणरूपसे विस्तीर्ण हैं। वस्तुतः, इतनी बड़ी, घनी और मोटी भौंहें भी मनुष्यकी होती हैं, यह ख्याल मुझे इसके पहले न था। देखते ही ख्याल हुआ कि प्रकृतिने मस्तकमें [illegible]

शनैः शनैः आरती और कीर्तन समाप्त हो गया। कमललता वही वैष्णवी आकर बड़े यत्नसे प्रसाद रख गई, पर जिसकी राह देख रहा था उसके दर्शन नहीं मिले। बाहर लोगोंकी बातचीत और आने-जानेकी आवाज भी क्रमशः शान्त हो गई। यह सोचकर कि अब उसके आनेकी सम्भावना नहीं है, भोजन किया और हाथ-मुँह धोकर दीप बुझा सो गया।

शायद उस वक्त बहुत रात थी, कानोंमें भनक पड़ी, "नये गुसाईं!"

जागकर उठ बैठा। अन्धकारमें खड़ी कमललता धीरे-धीरे बोली, "आई नहीं, इसलिए शायद मन ही मन बहुत गुस्से हो रहे हैं—क्यों नये गुसाईं?"

कहा, "हाँ, गुस्से हुआ हूँ।"

क्षणभरके लिए वैष्णवी चुप रही, फिर बोली, "जंगलमें वह आदमी तुमसे क्या कह रहा था?"

"तुमने देखा था क्या?"

"हाँ।"

"कह रहा था कि वह तुम्हारा पति है—अर्थात्, तुम्हारे सामाजिक आचारोंके मुताबिक तुम्हारी उसकी कण्ठी-बदली हुई है।"

"तुमने विश्वास किया?"

"नहीं, नहीं किया।"

क्षणभरके लिए फिर मौन रहकर वैष्णवीने कहा, "उसने मेरे स्वभाव और चरित्रके बारेमें कुछ इशारा नहीं किया?"

"किया था।"

"और मेरी जातिका?"

"हाँ, उसका भी।"

वैष्णवीने कुछ ठहरकर कहा, "सुनोगे मेरे बचपनका इतिहास? शायद तुम्हें घृणा हो जाय।"

"तो रहने दो, मैं नहीं सुनना चाहता।"

"क्यों?"

"उससे क्या फायदा कमललता? तुम मुझे बहुत भली लगी हो। यहाँसे एक दफा जाऊँगा और शायद फिर कभी हम दोनोंकी मुलाकात ही न हो। तब

तो इस भले जंगलको निरर्थक ही नष्ट करनेसे क्या फायदा होगा, बताओ ?”

इस बार वैष्णवी बहुत देरतक मौन रही। पर समझमें न आया कि अन्धकारमें चुपचाप खड़ी वह क्या कर रही है। पूछा, “क्या सोच रही हो ?”

“सोच रही हूँ कि अब तुम्हें नहीं जाने दूँगी।”

“तो फिर कब जाने दोगी ?”

“जाने कभी न दूँगी। पर अब बहुत रात हो गई, सो जाओ। मसहरी अच्छी तरहसे लगी हुई है न ?”

“क्या पता, शायद लगी है।”

वैष्णवीने हँसकर कहा, “शायद लगी है ? वाह, खूब हो !” यह कह उसने करीब आकर अन्धकारमें ही हाथ बढ़ाकर बिछौनेके चारों कोनोंकी परीक्षा कर ली और कहा, “सोओ गुसाईं, मैं जाती हूँ।” यह कहकर वह दबे पैरों बाहर निकल गई और बाहरसे बहुत ही सावधानीके साथ दरवाजा भी बन्द कर गई।

७

वैष्णवीने आज मुझसे बार-बार शपथ करा ली कि उसका पूर्व-विवरण सुनकर मैं घृणा नहीं करूँगा।

“सुनना मैं चाहता नहीं, पर अगर सुनूँ तो घृणा न करूँगा।”

वैष्णवीने सवाल किया, “पर क्यों नहीं करोगे ? सुनकर औरत-मर्द सब ही तो घृणा करते हैं।”

“मैं नहीं जानता कि तुम क्या कहोगी, तो भी अन्दाज लगा सकता हूँ। यह जानता हूँ कि उसे सुनकर औरतें ही औरतोंसे सबसे ज्यादा घृणा करती हैं और इसका कारण भी जानता हूँ, पर तुम्हें वह नहीं बताना चाहता। पुरुष भी करते हैं, किन्तु बहुत बार वह छल होता है और बहुत बार आत्मवञ्चना। तुम जो कुछ कहोगी उससे भी बहुत ज्यादा भद्दी बातें मैंने खुद तुम लोगोंके मुँहसे सुनी हैं और अपनी आँखों भी देखी हैं। पर तो भी मुझे घृणा नहीं होती।”

“क्यों नहीं होती ?”

“शायद यह मेरा स्वभाव है। पर कह ही तो चुका हूँ कि इसकी जरूरत नहीं। सुननेके लिए मैं जरा भी उत्सुक नहीं।—इसके अलावा कौन

करोंका है, यह सब कहानी मुझसे नहीं भी कही तो क्या हर्ज है ?"

वैष्णवी काफी देरतक चुप हो कुछ सोचती रही। इसके बाद अचानक पूछ बैठी, "अच्छा गुसाईं, तुम पूर्वजन्म और अगले जन्मपर विश्वास करते हो ?"

"नहीं।"

"नहीं क्यों ? क्या तुम सोचते हो कि ये सब बातें सचमुच नहीं हैं ?"

"मेरे सोचनेके लिए दूसरी बहुत बातें हैं, शायद यह सब सोचनेके लिए मुझे समय ही नहीं मिलता।"

वैष्णवी फिर क्षणभर मौन रहकर बोली, "एक घटना तुम्हें बताऊँगी विश्वास करोगे ? ठाकुरजीकी ओर मुँह करके कहती हूँ कि तुमसे झूठ नहीं कहूँगी।"

मैंने हँसकर कहा, "करूँगा।"

"तो कहती हूँ। एक दिन गौहर गुसाईंके मुँहसे सुना कि उनकी पाठशाला का एक मित्र उनके घर आया है ? सोचा कि जो आदमी एक दिन भी यहाँ आये बिना नहीं रह सकता, वह अपने बचपनके मित्रके साथ दस-सात दिन कैसे भूला रहा ? फिर सोचा कि वह कैसा आलस मित्र है जो अनायास ही मुसलमान के घर पड़ा रहा किसीसे भी नहीं डरा ? उसका क्या कहीं भी कोई नहीं है ? पूछनेपर गौहर गुसाईंने भी ठीक यही बात कही। कहा कि संसारमें उसका अपना कहने लायक कोई नहीं है, इसलिए उसे डर नहीं है, चिन्ता भी नहीं है। मन ही मन ख्याल किया कि ऐसा ही होगा। पूछा, गुसाईं तुम्हारे मित्रका क्या नाम है ? नाम सुनकर मैं चौंक गई। जानते हो गुसाईं, वह नाम मुझे नहीं लेना चाहिए।"

हँसकर बोला, "जानता हूँ। तुम्हारे मुँहसे ही सुना है।'

वैष्णवीने कहा, "पूछा, तुम्हारा मित्र देखनेमें कैसा है ? उम्र क्या है ? गुसाईंने जो कुछ कहा उसका कुछ हिस्सा तो कानोंमें गया, और कुछ नहीं। पर हृदयके भीतर धड़कन होने लगी। तुम ख्याल करते होगे कि ऐसा आदमी तो नहीं देखा जो नाम सुनकर ही पागल हो जाय। पर यह सच है। सिर्फ नाम सुनकर ही औरतें पागल हो जाती हैं गुसाईं ?"

"उसके बाद ?"

वैष्णवीने कहा, "उसके बाद खुद भी हँसने लगी पर भूल न सकी। सब काम-काजोंमें मुझे केवल एक ही बात याद आने लगी कि तुम कब आओगे, तुम्हें अपनी आँखोंसे कब देख सकूँगी।"

सुनकर चुप रहा, पर उसके चेहरेकी ओर देखकर हँस न सका।

वैष्णवीने कहा, "अभी तो कल शामको ही तुम आये हो, पर आज इस संसारमें मुझसे ज्यादा तुम्हें और प्रेम नहीं करता। पूर्वजन्म अगर सच न होता तो क्या एक दिनमें यह असम्भव बात सम्भव हो सकती!"

कुछ ठहरकर उसने फिर कहा, "मैं जानती हूँ कि तुम रहने नहीं आये हो और रहोगे भी नहीं। चाहे कितनी भी प्रार्थना क्यों न करूँ, तुम दो-एक दिन बाद चले ही जाओगे। पर मैं केवल यही सोचती हूँ कि इस व्यथाको मैं कबतक सँभाले रहूँगी।" यह कहकर उसने अपना आँचलसे आँखें पोंछ डालीं।

मैं चुप हो रहा। इतने थोड़ेसे समयमें, इतनी स्पष्ट और प्राञ्जल भाषामें रमणीके प्रणय निवेदनकी कहानी इसके पहले न तो कभी किताबमें पढ़ी थी और न लोगोंकी जुबानी ही सुनी थी। और अपनी आँखोंसे ही देख रहा हूँ कि यह अभिनय भी नहीं है। कमललता देखनेमें सुन्दर है, निरक्षर मूर्ख भी नहीं है, उसकी बात-चीत, उसका गाना, उसका आदर-प्यार और उसकी अतिथि-सेवाकी आन्तरिकताके कारण वह मुझे अच्छी लगी है और इस अच्छे लगनेका मूल्य और परिणामकी उचित पैमाइश करनेमें मैंने कंजूसी भी नहीं की है। पर देखते ही देखते यह परिस्थिति इतनी गहरी हो जायगी, वैष्णवीके आवेदनसे, प्रेम-निवेदनसे और माधुर्यके अकुण्ठित आत्मप्रकाशसे सारा मन ऐसी विह्वलतासे परिपूर्ण हो जायगा—यह जरा सन्देह भी पहले जानता था। मानो मैं हतबुद्धि हो गया। यही नहीं कि सिर्फ अचरजसे ही सारा शरीर रोमांचित हो गया हो, बल्कि एक अजानी अनास्वादित मिठासकी चारों ओरसे हृदयमें कहीं शान्ति और निरुद्वेगता न रही। पता नहीं कि किस अशुभ मुहूर्तमें वहाँसे चला था जो एक ठौरका आश्रय छोड़कर दूसरी ठौरके फन्देमें बुरी तरह फँस गया। इधर उम्र यौवनकी सीमा लाँघ रही है ऐसे समयमें अयाचित नारी प्रेमकी ऐसी बाढ़ आ गई कि सोच ही न सका कि कहाँ खड़ा रहकर आत्मरक्षा करूँ। कल्पना भी न की थी कि पुरुषके लिए मुक्ती-[illegible] दिखा

इतनी अधिकारिणी हो सकती है। सोचा, एकाएक मेरा मूल्य इतना कैसे बढ़ गया! आज राजलक्ष्मीका प्रयोजन भी मुझसे पीछे नहीं रहना चाहता,—यही मीमांसा हुई कि वह अपनी वज्रमुष्टिसे मरते भी ढील कर मुझे निष्कृति नहीं देगी। पर अब यहाँ और नहीं रहना चाहिए। वायु-रोग सिर-माथे, यही स्थिर किया कि इस स्थानको कल ही छोड़ दूँगा।

एकाएक वैष्णवी चकित हो उठी, "अरे बाप! तुम्हारे लिए चाय जो मँगाई है गुसाईं!"

"कहती क्या हो! कहाँ मिली?"

"आदमीको शहर भेजा था। जाऊँ, तैयार करके ले आऊँ, देखो, कहीं भाग न जाना!"

"नहीं लेकिन बनाना जानती हो?"

वैष्णवीने जवाब नहीं दिया सिर हिलाकर हँसती हुई चली गई। उसके चले जानेके बाद उस ओर देखनेपर हृदयमें न जाने कैसी एक चाह-सी उठी। जान-पहचान आश्रमकी व्यवस्था नहीं है, शायद मनाही है, तो भी उसे यह खबर लग गई कि यह चीज मुझे अच्छी लगती है और शहरमें आदमी भेजकर उसने मँगवा भी ली। उसके विगत जीवनका इतिहास नहीं जानता और वर्तमानका भी नहीं। केवल यह आभास मिला है कि वह अच्छा नहीं है वह निन्दाके योग्य है—सुननेपर आर्योंको घृणा होती है। तथापि, वह उस कहानीको मुझसे छिपाना नहीं चाहती, सुनानेके लिए बार बार जिद कर रही है, सिर्फ मैं ही सुननेको राजी नहीं हूँ। मुझे कुतूहल नहीं है, क्योंकि प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन उसीका है। अकेले बैठे हुए उस प्रयोजनके सम्बन्धमें सोचते हुए स्पष्ट देखा कि मुझे बताये बगैर उसके हृदयकी ग्लानि नहीं मिटेगी,—मनमें वह किसी तरह भी शान्ति नहीं पा रही है। सुना है कि मेरा 'श्रीकांत' नाम कमललता उच्चारण नहीं कर सकती। पता नहीं कि कौन वह उसका परमपूज्य गुरुजन है और उसने कब इस लोकसे विदा ले ली है। हमारे नामको इस दैवी एकताने ही शायद इस विरोधकी सृष्टि की है और उसने उसीसे ही कल्पनामें गत जन्मके स्वप्नसागरमें डुबकी लगाकर संसार की सब यथार्थताओंको तिलांजलि दे दी है।

तो भी ऐसा लगता है कि इसमें विस्मयकी कोई बात नहीं। इसकी आदत

धनामें आकण्ठ-मग्न रहते हुए भी उसकी एकान्त नारी-प्रकृति आज भी शायद उसका तत्त्व नहीं पा सकी है, वह उद्दाम अपरितृप्त प्रवृत्ति इस निरवच्छिन्न भाव-विलासके उपकरणोंको संग्रह करनेमें शायद आज क्लान्त है,—दुविधासे पीड़ित है। उसका वह पथभ्रष्ट विभ्रान्त मन अपने अनजानमें ही न जाने कहाँ अवलम्ब खोजनेमें प्राणपणसे जुटा हुआ है,—वैष्णवी उसका पता नहीं जानती इसीलिए आज वह बार-बार चौंककर अपने विगत-जन्मके बन्द द्वारपर हाथ फैलाकर असहायकी सान्त्वना माँग रही है। उसकी बातें सुनकर समझ सकता हूँ कि मेरे नाम 'श्रीकान्त' को ही पाथेय बनाकर आज वह अपनी नाव छोड़ देना चाहती है।

वैष्णवी चाय ले आई। इस नई व्यवस्था है पीकर बहुत आनन्द मिला। मनुष्यका मन कितनी आसानीसे परिवर्तित हो जाता है!—अब मानों उसके खिलाफ कोई शिकायत नहीं!

पूछा, "कमललता, तुम क्या कलवार हो?"

कमललताने हँसकर कहा, "नहीं, सुनार-बनियाँ। पर तुम्हारे निकट तो कोई प्रभेद नहीं है — दोनों ही एक हैं।"

"कमसे कम मेरे निकट तो एक ही हैं। दोनों ही एक क्यों बल्कि सबके एक हो जानेपर भी कोई नुकसान नहीं।"

वैष्णवने कहा, "ऐसा ही तो लगता है। तुमने तो गौहरकी माँके हाथका भी खाया है।"

"उन्हें तुम नहीं जानतीं। गौहर बापकी तरहका नहीं है, उसे अपनी माँका स्वभाव मिला है। इतना शान्त, अपनेको भूला हुआ, ऐसा अच्छा मनुष्य कभी देखा है! उसकी माँ ऐसी थी। एक बार बचपनमें गौहरके पिताके साथ उनके झगड़ेकी बात मुझे याद है। उन्होंने किसीको छिपाकर बहुत-से रुपये दे दिये थे। इसी वजहसे झगड़ा खड़ा हुआ। गौहरके पिता बदमिज़ाज आदमी थे। हम तो डरके मारे भाग गये। कुछ घण्टे बाद धीरे धीरे आकर देखा कि गौहरकी माँ चुपचाप बैठी हैं। गौहरके पिताके बारेमें पूछनेपर पहले तो उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। पर हमारे मुँहकी ओर ताकते हुए वे एक बार खिल-खिलाकर हँस पड़ीं। आँखोंसे पानीकी कुछ बूँदें नीचे गिर पड़ीं। यह उनकी आदत थी।"

वैष्णवीने प्रश्न किया, "इसमें हँसनेकी कौन-सी बात हुई ?"

"हमने भी तो यही सोचा। पर जब हँसी रुक गई तो वे चोटीसे आँ पोंछ कर बोलीं, 'मैं कैसी मूर्ख औरत हूँ भैया! वे तो मजेसे पेट भर कर सूर्य के रहे हैं और मैं बिना खाये उपवास कर गुस्सेमें भुन-भुन रही हूँ, क्यों इसकी क्या जरूरत है?' और इस कहनेके साथ ही उनका सारा अभिमान और क्रोध धुल-पुँछकर साफ हो गया। यह भुक्तभोगीके अलावा और कोई मा जानता कि औरतोंका यह कितना बड़ा गुण है!"

वैष्णवीने प्रश्न किया, "तुम क्या भुक्तभोगी हो, गुसाईं?"

मैं कुछ सिटपिटा गया। यह नहीं सोचा था कि उसको छोड़कर यह प्रश्न मेरे ही सिर आ पड़ेगा। कहा, 'सब दुःख क्या खुद ही भोगना पड़ता कमललता, दूसरोंको देखकर भी तो सीखा जाता है। इस मोटी भौंहोंवा आदमीके निकट क्या तुमने कुछ नहीं सीखा?"

वैष्णवीने कहा, "पर यह तो मेरे लिए पराया नहीं है।"

और कोई प्रश्न अब मेरे मुँहसे नहीं निकला,—बिल्कुल निस्तब्ध हो गया

वैष्णवी खुद भी कुछ देर चुप रही। फिर हाथ जोड़कर बोली, "तुम विनती करती हूँ गुसाईं, एक बार मेरी दुःखकी बातें सुन लो—"

"अच्छी बात है, कहो।"

पर जब कहने बैठी तो देखा कि कहना उतना आसान नहीं है। मेरी तरह मुँह नीचा किये हुए उसे भी काफी देरतक चुप रहना पड़ा। पर उस हार नहीं मानी। अन्तर्द्वन्द्वमें विजयी होकर जब उसने एक बार मुँह ऊप उठाकर देखा तो मुझे भी ऐसा लगा कि उसके स्वाभाविक चेहरेपर मान एक अद्भुत चमक आ गई है। बोली, "अहंकार मर कर भी नहीं मरता गुसाईं हमारे बड़े गुसाईं कहते हैं कि यह मानो भूसेकी आग है जो बुझकर भी न बुझती। राख हटाते ही नजर आता है कि धक-धक जल रही है, पर इसीलि इसे फूँक देकर जला तो नहीं सकती। फिर तो मेरा इस पथपर आना ही मिथ्य हो जायगा। सुनो। किन्तु औरत हूँ न, इसलिए शायद सब बातें खोलकर न कह सकूँ।"

मेरे संकोचकी सीमा न रही। अन्तिम बार विनती कर कहा, "औरतों पैर फिसलनेके विवरणोंमें मुझे दिलचस्पी नहीं है, उत्सुकता भी नहीं, और उ

सुनना मुझे कभी अच्छा भी नहीं लगा कमललता। मुझे नहीं मालूम कि तुम्हारी वैष्णव-साधनामें अहंकारके नाशके लिए कौन-से मार्गका निर्देश महाजनोंने किया है, पर अपने गुप्त पापोंको अनावृत करनेकी लज्जित विनय ही अगर तुम्हारे प्रायश्चित्तका विधान हो तो तुम्हें अनेक व्यक्ति मिल जायेंगे जिन्हें ऐसी सच कथा नित्य सुनना बहुत रुचिकर लगता है। मुझे माफ करो, कमललता, इसके अलावा मैं शायद कल ही चला जाऊँगा, शायद फिर जीवनमें कभी हम दोनोंकी मुलाकात भी नहीं होगी।"

वैष्णवीने कहा, "तुमसे तो पहले ही कहा है गुसाईं, प्रयोजन तुम्हारा नहीं, मेरा है, पर यह क्या तुम सच कह रहे हो कि इसके बाद हमारी मुलाकात नहीं होगी?—नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता। मेरा मन कहता है कि फिर मुलाकात होगी,—मैं यही आशा लेकर रहूँगी। पर क्या वास्तवमें मेरे बारेमें कुछ भी जाननेकी इच्छा तुम्हारी नहीं है? हमेशा क्या सिर्फ एक अनुमान और सन्देहको ही लिये रहोगे?"

प्रश्न किया, "आज वनमें जिस आदमीसे मेरी मुलाकात हुई, जिसे तुम आश्रममें घुसने नहीं देतीं, जिसके उपद्रवसे तुम भागना चाहती हो,—वह क्या वास्तवमें तुम्हारा कोई नहीं होता? बिलकुल पराया है?"

"जिसके डरसे भाग रही हूँ, यह तुम समझ गये गुसाईं?"

"हाँ, ऐसा ही तो लगता है। पर वह है कौन?"

"वह कौन है? वह मेरे इह और परलोककी नरक-यन्त्रणा है। इसीलिए तो निरन्तर रोकर भगवान्से कहती हूँ प्रभु, मैं तुम्हारी दासी हूँ,—मनुष्यके प्रति इतनी जबरदस्त घृणा मेरे मनसे निकाल दो, जिससे मैं फिर आसानीसे साँस लेकर जी सकूँ। नहीं तो मेरी सारी साधना व्यर्थ हो जायगी।"

उसकी आँखोंसे जैसे आत्मग्लानि फूट पड़ी, मैं चुप हो रहा।

वैष्णवीने कहा, "फिर भी, एक दिन उससे ज्यादा मेरा अपना कोई नहीं था,—संसारमें इतना प्यार किसीने भी किसीका नहीं किया होगा।" उसका कथन सुनकर विस्मयकी सीमा नहीं रही और इस मुग्धा रमणीकी तुलनामें उस प्रेमके पात्रकी कुत्सित और भद्दी शक्लको स्मरण कर मेरा मन बहुत ही संकुचित हो गया।

बुद्धिमती वैष्णवीने मेरा मुँह देखकर यह ताड़ लिया। कहा, "गुसाईं, यह तो

उसका सिर्फ बाहरका परिचय है,—उसके भीतरका परिचय सुनो।"

"कहो।"

वैष्णवीने कहना शुरू किया, "मेरे और भी दो छोटे भाई हैं, पर माँ-बापकी मैं इकलौती बेटी थी। हम श्रीहट्टके रहनेवाले हैं, पर चूँकि पिताजी व्यापारी आदमी थे, उनका व्यापार कलकत्तेमें था, इसलिए बचपनसे ही मैं कलकत्तेमें पली हूँ। गृहस्थीके साथ माँ गाँवके मकानमें ही रहती थीं। मैं पूजाके दिनोंमें अगर कभी गाँव जाती तो महीने-भरसे ज्यादा न रह पाती। वहाँ रहना मुझे अच्छा भी न लगता। कलकत्तेमें ही मेरी शादी हुई और सात वर्षकी उम्रमें कलकत्तेमें ही मैंने उन्हें खो दिया। उनके नामकी बाबतसे ही गुसाईं, तुम्हारा नाम गौहर गुसाईंके मुँहसे सुनकर मैं चौंक पड़ी। इसलिए 'नये गुसाईं' के नामसे पुकारती हूँ, वह नाम जुबानपर नहीं आ सकती।'

"यह मैं समझ गया, उसके बाद?'

वैष्णवीने कहा, "आज जिसके साथ तुम्हारी मुलाकात हुई थी उसका नाम मन्मथ है वह हमारा मुनीम था।" कह कर वह क्षणभरके लिए मौन रही, फिर बोली, "जब मेरी उम्र इक्कीस सालकी थी तब मेरे संतान होनेकी संभावना हुई—"

वैष्णवी कहने लगी, "मन्मथका एक पितृहीन भतीजा हमारे ही मकानमें रहता था। पिताजी उसे कालेजमें पढ़ाते थे। उम्रमें मुझसे बरस छोटा था। वह मुझे इतना प्यार करता था जिसकी सीमा नहीं। उसे बुलाकर कहा, 'यतीन तुमसे और कभी तो कुछ माँगा नहीं है भाई, इस विपत्तिमें अन्तिम बार मुझे थोड़ी-सी मदद करो। मुझे एक रुपयेका जहर खरीद कर ला दो।' पहले तो वह मेरी बात नहीं समझा, पर जब उसकी समझमें आया तो उसका चेहरा मुर्देकी तरह फीका पड़ गया। कहा, 'ऐसी मत करो भाई, तुम्हें अभी खरीदकर ला देना होगा। इसके अलावा मेरे लिए और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

"यह सुनकर यतीनके रोमेका तो क्या कहना। वह मुझे देवता समझता था और दीदी कहकर पुकारता था। उसे कितना आघात, कितनी व्यथा हुई, उसकी आँखोंका पानी जैसे खत्म ही नहीं होना चाहता था। बोला, 'दीदी, आत्महत्यासे बढ़कर और कोई महापाप नहीं है। एक पापके ऊपर और

एक जबरदस्त पाप लादकर तुम रास्ता खोजना चाहती हो। पर कलंकसे बचनेका यह तरीका ही अगर तुमने स्थिर किया हो दीदी, तो मैं कभी मदद नहीं करूँगा। इसके अतिरिक्त और जो कुछ भी तुम आदेश दोगी, उसका मैं तत्काल पालन करूँगा।' उन्हींके कारण मैं मर न सकी।

"क्रमशः पिताजीके कानोंमें बात पहुँची। वे जैसे निष्ठावान् वैसे ही शान्त और निरीह प्रकृतिके मनुष्य थे। मुझसे कुछ नहीं कहा पर दुःखसे, शर्मसे दो तीन दिनतक बिछौनेसे न उठ सके। फिर गुरुदेवके परामर्शसे मुझे लेकर नवद्वीप आये। यह तय हुआ कि मैं और मन्मथ दीक्षा लेकर वैष्णव हो जायें और सब फूलोंकी माला और तुलसीकी माला अदल-बदलकर नई रीतिसे हमारी शादी हो। उससे पापका प्रायश्चित्त होगा या नहीं, यह नहीं जानती थी पर इस भरोसेपर कि जो शिशु गर्भमें आया है उसकी माँ होकर हत्या नहीं करनी पड़ेगी, मेरी आधी वेदना दूर हो गई। उद्योग आयोजन होने लगा, दीक्षा कहो या भेख कहो, या और कुछ कहो, मेरा नया नामकरण हुआ—कमललता। किन्तु, तब भी यह मालूम नहीं था कि दस हजार रुपये देनेका वचन देकर ही पिताजीने मन्मथको राजी किया है। पर एकाएक न जाने क्यों शादीका दिन आगे बढ़ा दिया गया,—शायद एक हफ्ता। मन्मथ बहुत कम दिखाई पड़ता, नवद्वीपके मकानमें मैं अकेली ही रहती थी। ऐसे ही कई दिन कट गये, इसके बाद फिर शुभ दिन आया। स्नान करके पवित्र होकर शान्त मनसे ठाकुरको अर्पित माला हाथमें लिये प्रतीक्षामें बैठी रही। उदास चेहरेसे पिताजी एक बार देख गये, पर मन्मथको जब नवीन वैष्णवके वेशमें देखा, तो अचानक सारे मनके भीतर बिजली दौड़ गई। यह ठीक नहीं जानती कि वह आनन्दकी थी या व्यथाकी, शायद दोनोंकी ही थी। पर इच्छा हुई कि उठकर उसके पैरोंकी धूल माथेपर लगा लूँ। पर शर्मके मारे ऐसा नहीं हो सका।

"हमारी कलकत्तेकी पुरानी दासी बहुत-सी चीजें ले आई। उन्हींने मेरी परवरिश की थी उन्हींके मुँहसे दिन बढ़ जानेका कारण सुना।"

कितनी पुरानी बात है, तो भी गला भारी हो गया और उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। मुँह छिपाकर वैष्णवी आँसू पोंछने लगी।

पाँच-छह मिनट बाद पूछा, "उसने क्या कारण बताया?"

वैष्णवीने कहा, "उसने बताया कि मन्मथ अचानक दस हजारके बदले

बीस हजार रुपयोंकी माँग पेश कर बैठा। मुझे कुछ मालूम नहीं था, इसलिए चौंककर पूछा कि क्या मन्मथ रुपयोंके बदले राजी हुआ है? और शिवानी भी बीस हजार रुपये देनेको तैयार हैं? रानीने कहा, 'उपाय क्या है श्रीकान्त? मामला भी तो आसान नहीं है, जाहिर हो जानेपर जाति, कुल, मान—सब चला जायगा।' मन्मथने असली बात अन्तमें जाहिर कर दी। कहा कि इसके लिए वह तो जिम्मेदार है नहीं, जिम्मेदार है उसका मुनीम यतीन। अतः यदि बिना दोषके उसे अपनी जाति छोड़नी ही है तो बीस हजारसे कममें नहीं छोड़ सकता। फिर, दूसरेके लड़केका पितृत्व स्वीकार करना,—यह भी तो कम मुश्किल नहीं है।

"यतीन अपने कमरेमें बैठा पढ़ रहा था, उसे बुलाकर बात सुनाई गई। सुनकर पहले तो वह हक्का-बक्का-सा हुआ खड़ा रहा। फिर बोला झूठी बात है। मामा मन्मथ गर्ज उठा, 'पापी, नीच, नमकहराम! जो व्यक्ति तुझे खाना-कपड़ा और कालेजमें पढ़ा-लिखाकर आदमी बना रहा है, उसीका तूने सर्वनाश किया! कैसे काले साँपको मैं मालिकके घरमें लाया!—सोचा था कि माँ-बाप-हीन लड़का आदमी बनेगा। छी छी,'—यह कहनेके साथ ही साथ वह छाती और सिर पीटने लगा। बोला 'यह बात उषाने खुद अपने मुँहसे कही है और तुम इन्कार करते हो!'

"यतीन चौंक उठा और बोला, 'उषा दीदीने खुद मेरा नाम लिया है? पर वह तो कभी झूठ नहीं बोलतीं,—इतना बड़ा झूठा अपवाद तो उनके मुँहसे कभी बाहर नहीं निकल सकता!'

"मन्मथ और एक बार चिल्ला उठा, 'अब भी इन्कार करता है पाजी, कमबख्त, शैतान, अपने मालिकसे तो पूछ, वे क्या कहते हैं!'

"मालिकने अनुमोदन करते हुए कहा, 'हाँ।'

"यतीनने पूछा, 'खुद दीदीने मेरा नाम लिया है?'

"मालिकने फिर सिर हिलाकर कहा, 'हाँ।'

"शिवानीको वह देवता-तुल्य मानता था। इसके बाद उसने और कोई प्रतिवाद नहीं किया। स्तब्ध हो कुछ देरतक खड़े रहनेके बाद धीरे-धीरे चला गया। क्या सोचा, यह वही जाने।

"रातको किसीने उसकी खबर नहीं ली। सुबह ही किसीने आकर खबर

हो। सब रोड़ पड़ और देखा कि हमारे टूटे मकानके एक कोनेमें गलेमें रस्सी बाँधे यतीन झूल रहा है!"

वैष्णवीने कहा, "पर नहीं जानती कि भतीजेकी आत्महत्याके लिए शास्त्रोंमें चाचाके लिए शोचकी विधि है या नहीं गुसाईं। शायद न हो, या शायद दूसरेको लगानेसे ही शुद्धि हो जाती हो, जो कुछ भी हो, शुभ दिन फिर कुछ दिनोंके लिए और आगे टल गया। इसके बाद गंगा-स्नानसे शुद्ध और पवित्र हो, माला और तिलक लगाये हुए मन्मथ गुसाईं पद्मिनीके पाप-विमोचनका शुभ संकल्प किये हुए नवद्वीपमें आकर हाजिर हो गये।"

एक मुहूर्तके लिए मौन रहकर वैष्णवी फिर कहने लगी, "उस दिन ठाकुरकी अर्चित माला ठाकुरजीके पादपद्मोंमें ही लौटा आई। मन्मथकी अपवित्रता दूर हो गई, पर पद्मिनी उसकी अपवित्रता इस जीवनमें दूर न हुए नये गुसाईं।"

मैंने कहा, "उसके बाद?"

वैष्णवीने मुँह फेर लिया, कोई जवाब नहीं दिया। समझ गया कि अब उसे सँभलनेमें देर लगेगी। काफी देरतक हम दोनों ही चुप बैठे रहे।

उसका शेष अंश सुननेका आग्रह प्रबल हो उठा। पर सोच रहा था कि प्रश्न करना उचित है या नहीं। वैष्णवीने आर्द्र मृदु कण्ठसे खुद ही कहा, 'गुसाईं, जानते हो, संसारमें पाप नामकी चीज इतनी भयंकर क्यों है?"

"अपने शास्त्रोंके मुताबिक एक तरहसे जानता हूँ, पर तुम्हारी धारणाके साथ शायद वह न मिले।"

उसने प्रत्युत्तरमें कहा, "नहीं जानती कि तुम्हारा क्या खयाल है। पर उस दिनसे मैंने अकेले ही अपने खयालके अनुसार समझ लिया है गुसाईं, कि इसीके साथ तुम कितने ही लोगोंको कहते हुए सुनोगे कि कुछ भी नहीं होता। वे अनेक आदमियोंका उदाहरण देकर अपनी बात प्रमाणित करना चाहेंगे। पर इसकी तो कोई जरूरत नहीं। इसका प्रमाण है मन्मथ और प्रमाण हूँ मैं खुद। अब भी हम लोगोंका कुछ नहीं हुआ। अगर कुछ होता तो मैं इसे इतना भयंकर न कहती, पर ऐसा तो नहीं है, इसका दण्ड भोगते हैं निरपराध और निर्दोष लोग। यतीनको आत्महत्याका बड़ा डर था, पर उसीसे वह अपनी मौसीके अपराधका प्रायश्चित कर गया। कहो गुसाईं, इससे और अधिक भयंकर

तब निष्ठुर संसारमें क्या है!—पर ऐसा ही होता है, इसी तरह भगवान् छलकर अपनी सृष्टिकी रक्षा करते हैं।"

इस विषयमें बहस करनेसे कोई फायदा नहीं। युक्ति और मान्य,—कोई भी प्रांजल नहीं है, तथापि यही खयाल किया कि कुसुमविकी शोकाच्छन्न स्मृतिने घायल इसी पथपर चलकर पाप-पुण्यकी उपलब्धि अर्जन की है और उससे सान्त्वना पाई है।

"कमललता, उसके बाद क्या हुआ?"

यह सुनकर वह सहसा मानो व्याकुल होकर कह उठी, "अब कहानी सुनाऊँ, इसके बाद भी मेरी बातें सुननेकी इच्छा होती है?"

"तब ही कह रहा हूँ, होती है।"

वैष्णवीने कहा, "मेरा भाग्य है जो इस जन्ममें तुम्हारे दर्शन फिर हुए।" यह कह कुछ देरतक चुपचाप मेरी ओर देखते-देखते वह फिर कहने लगी, "कोई चार दिन बाद एक मरा हुआ लड़का पैदा हुआ। उसे गंगाके किनारे विसर्जित कर गंगामें नहाकर घर लौट आई। पिताजीने रोकर कहा, 'अब तो मैं नहीं रह सकता बेटी।'

"हाँ पिताजी अब आप मत रहिए, आप घर लौट जाइए। बहुत दुःख दिया, अब आप मेरी फिक्र न करें।"

पिताजीने पूछा "बीचमें खबर लोगी न बेटी?"

"नहीं पिताजी मेरी खबर लेनेकी आप अब चेष्टा न कीजिएगा।"

"पर उषा, तुम्हारी माँ अब भी जीवित है।"

"मैं मरूँगी नहीं पिताजी पर मेरी उसी-जैसी माँसे कह देना कि उषा मर गई। माँको दुःख तो होगा, पर लड़की जिन्दा है, जानकर और भी ज्यादा दुःख होगा। आँखोंके आँसू पोंछकर पिताजी कलकत्ते चले गये।"

मैं चुप बैठा रहा, कमललता कहने लगी, "पासमें रुपया था—मकानका किराया चुकाकर मैं भी निकल पड़ी। संगी-साथी मिल गए, तब श्रीवृन्दावनधाम जा रहे थे, मैं भी साथ हो ली।"

वैष्णवीने कुछ रुककर कहा "इसके बाद कितने तीर्थ, कितने पथ और कितने पेड़ोंके नीचे अनेक दिन कट गये—"

"यह समझता हूँ, पर बैठकोंमें साधुओंकी आँखोंकी दृष्टिका विवरण तो तुमने

बताया ही नहीं, कमलकला !"

देवजी हँस पड़ी। बोली, "बाबाजी लोगोंकी दृष्टि अतिशय निर्मल है, उनके बारेमें अभद्रताकी बातें नहीं करना चाहिए गुसाईं।"

"नहीं-नहीं, अभद्रता नहीं। अतिशय भद्राके साथ उनकी कहानी सुनना चाहता हूँ कमलकला।"

इस दफा वह नहीं हँसी, पर रुकी हुई हँसी छिपा भी न सकी। बोली, "जो बाबाजी भ्रम करते हैं उनसे सब बातें खोलकर नहीं कही जातीं, हमारे वैष्णव शास्त्रमें मनाही है।"

"तो रहने दो। उन बातोंका काम नहीं, पर एक बात बताओ। गुसाईंजी द्वारिकादास कहाँ मिले ?"

कमलकलाने दाँतोंतले जीभ काटकर और कपालपर हाथ टेककर कहा, "मजाक नहीं करना चाहिए, वे मेरे गुरुदेव हैं गुसाईं।"

"गुरुदेव ! तुमने उन्हींसे दीक्षा ली है ?"

"नहीं, दीक्षा तो नहीं ली है, पर वे उतने ही पूजनीय हैं।"

"पर इतनी सारी वैष्णवियाँ—सेवादासियाँ क्या—"

कमलकलाने फिर जीभ काटकर कहा, "वे सब मेरी ही तरह उनकी शिष्या हैं। उनका भी उन्होंने ही उद्धार किया है।"

"निश्चय ही किया है पर 'परकीया साधना'—या कुछ ऐसी ही जो एक साधना-पद्धति तुम लोगोंकी है—उसमें तो कोई दोष नहीं—"

वैष्णवीने मुख रोककर कहा, "तुम लोगोंने सिर्फ दूर रहकर हमारा हँसी मजाक ही उड़ाया है, नजदीक आकर कभी कुछ देखा तो नहीं, इसीलिए अनायास व्यंग्य कर सकते हो। हमारे बड़े गुसाईंजी संन्यासी हैं, उनका उपहास करनेसे पाप होता है नूतन गुसाईं,—ऐसी बातें फिर कभी जबानपर मत लाना।"

उसकी बातोंसे और गम्भीरतासे कुछ हतप्रभ हो गया। वैष्णवीने यह लक्ष्य कर जरा मुस्कराते हुए कहा, "दो दिन हम लोगोंके पास यहीं रहो न गुसाईं। वैसा करके गुसाईंजीके लिए ही नहीं कह रही हूँ, मुझे तो तुम प्यार करते हो, और कभी यदि मुलाकात न हो तो कम-से-कम यह तो देख जाओ कि कमलकला सचमुचमें क्या लेकर संसारमें रह रही है। पतीनको मैं आज भी नहीं भूली हूँ,—दो दिन रहो, मैं कहती हूँ कि तुम यथार्थमें खुश होगे।"

चुप रहा। इन लोगोंके बारेमें एकदम ही कुछ न जानता होऊँ, सो बात नहीं है। सहसा वैष्णवकी कहकी प्यारकी याद आ गई। किन्तु मज़ाक करनेकी मन और प्रवृत्ति नहीं थी। रतीनके प्रायश्चित्तकी घटना सारी आलोचनाके बीच रह-रह कर फिर मुझे उन्मना कर देती थी।

वैष्णवीने अचानक प्रश्न किया, "क्यों गुसाईं, इस उमरतक भी सचमुच तुमने कभी किसीको प्यार नहीं किया?"

"तुम्हारा क्या खयाल होता है कमललता?"

"मेरा खयाल होता है, नहीं। तुम्हारा मन अलखी बैरागीका मन है—उदासीनका—शिवजीकी तरह। तुम कभी किसी बन्धनको नहीं मानोगे।"

मैंने हँसकर कहा, "शिवजीकी उपमा तो अच्छी नहीं है कमललता, पर वो सुननेमें बहुत-कुछ गाली जैसी है। मेरा प्रेमपात्र सचमुचमें ही यदि कहीं कोई हो तो उसके कानोंमें इसकी भनक पड़नेपर अनर्थ हो जायगा।" वैष्णवी हँसी, बोली, "डरकी कोई बात नहीं गुसाईं, वास्तवमें यदि कोई होगी, तो मेरी बातका वह विश्वास नहीं करेगी और तुम्हारी मधुमिश्रित भाषाको भी वह जीवन भर नहीं पकड़ सकेगी।"

"तो फिर उसे दुःख किस बातका? हो न भाषाकी, परन्तु उसके निकट तो बाती जली रहेगी?"

वैष्णवीने सिर हिलाकर कहा, "ऐसा नहीं होता गुसाईं। छलका स्थान सत्य कभी नहीं ले सकता। वे भले ही न समझें, कारण भले ही उनके लिए स्पष्ट न हो तो भी उनका अन्तर निरन्तर अभुक्त ही रहेगा। मिथ्याका काण्ड तो देखते ही हो इसी तरह इस अखाड़ेमें न जाने कितने लोग आये। पर पथ जिनके लिए सम नहीं है, उनकी सारी साधना जलकी धाराके तलकी सूखी बालूकी तरह हमेशा ही अलग-अलग रही है, कभी एक नहीं हुई।"

कुछ ठहर कर वह मानो अचानक मन ही मन बोल उठी, "वे रसके मर्मतक तो पहुँचते नहीं, इसीलिए प्राणहीन निर्जीव मूर्तिकी निरर्थक सेवा करते करते उनका जी दो दिनमें ही ऊब उठता है,—सोचते हैं कि यह किस मोहके अंध-कारमें भटकते दिन-रात ठगाते हुए मरे जा रहे हैं। ऐसे लोगोंको देखकर ही तुम लोग हमारा उपहास करना सीखते हो —पर मैं यह क्या अण्ड-बण्ड बातें बक रही हूँ गुसाईं, इस सब असंलग्न प्रलापकी एक बात भी तुम नहीं समझोगे। पर

यदि तुम्हारी कोई ऐसी है, तो तुम उसे मनसे ही भूल जाओ, पर वह तुम्हें नहीं भूल सकेगी, और न कभी उसकी आँखोंका पानी ही सूखेगा।"

मैंने स्वीकार किया कि उसके वक्तव्यका प्रथम अंश मैंने समझा, पर अन्तिम अंशके प्रतिवादमें कहा, "तुम क्या मुझसे यही कहना चाहती हो कमलकला, कि मुझको प्यार करनेका नाम ही है दुःख पाना?"

"दुःखकी बात तो नहीं कही गुसाईं कही है आँखोंके पानीकी बात।"

"पर कमलकला, ये दोनों तो एक ही हैं सिर्फ शब्दोंका हेर-फेर है।"

वैष्णवीने कहा, "नहीं गुसाईं, ये दोनों एक नहीं हैं। न तो शब्दोंका ही हेर-फेर है और न भावका ही। औरतें न इससे डरती ही हैं, और न उससे बचना ही चाहती हैं। पर तुम समझोगे कैसे?"

"अब कुछ नहीं समझूँगा तो फिर मुझसे यह सब कहती ही क्यों हो?"

"बिना कहे रहा भी नहीं जाता जी। प्रेमकी वास्तविकताको लेकर मर्दोंका दल जब अपनी बड़ाई किया करता है, तब सोचती हूँ कि हमारी जाति उनसे अच्छा है। तुम लोगोंके और हम लोगोंके प्यारकी प्रकृति ही भिन्न है। तुम लोग चाहते हो विस्तार और हम चाहती हैं गम्भीरता, तुम लोग चाहते हो उन्माद और हम चाहती हैं शान्ति। जानते हो गुसाईं, कि प्रेमके नशेमें हम भीतर ही भीतर कितना डरती हैं। उसके उन्मादसे हमारे हृदयकी धड़कन नहीं रुकती।"

मैं कुछ प्रश्न करना चाहता था, किन्तु उसने मेरी ओर ध्यान ही नहीं दिया और भावोंके आवेगमें बोलना जारी रक्खा, "यह हमारा सुख भी नहीं है, हमारा आनन्द भी नहीं है। यह दौड़-धूपकी चंचलता जिस दिन रुकती है, केवल उसी दिन हम निःश्वास छोड़कर आराम पाती हैं। जो जी नये गुसाईं, प्रेमकी बड़ीसे बड़ी प्राप्ति, स्त्रियोंके लिए, निःसंशयकी भरोसा और कुछ नहीं है। पर यही चीज तुम लोगोंसे कोई कभी नहीं पाती।"

"यह निश्चयपूर्वक जानती हो, कि नहीं पाती?"

वैष्णवीने कहा, "निश्चयपूर्वक जानती हूँ। इसीलिए तो तुम्हारी बड़ाई मुझे मान नहीं होती।"

आश्चर्य हुआ। कहा, "तुम्हारे निकट बड़ाई तो कभी नहीं की कमलकला।"

उसने कहा, "जान-बूझकर नहीं की, पर तुम्हारा यह उदासीन वैरागी मन,

जगत्‌में इससे बढ़कर अहंकारसे भरा हुआ और भी कुछ है क्या ?"

"पर इन दो दिनोंमें ही तुमने मुझे इतना कैसे जान लिया ?"

"जान गई, क्योंकि तुम्हें प्यार जो किया है।"

सुनकर मन ही मन कहा, तुम्हारे मुख और आँखोंके आँसुओंका मर्म इतनी देर बाद अब समझा हूँ कमललता ! मालूम होता है, अविश्राम पूजा और इसकी आराधनाका परिणाम ऐसा ही होता है।

"प्यार किया है, यह क्या सच है कमललता ?"

"हाँ सच है।"

"पर तुम्हारा जप-तप, तुम्हारा कीर्तन, तुम्हारी रात-दिनकी ठाकुर-सेवा,—इन सबका क्या होगा, बताओ ?"

वैष्णवीने कहा, "तब ये सब मेरे लिए और भी सच, और भी सार्थक हो उठेंगे। चलो न गुसाईं, सब-कुछ छोड़-छाड़कर दोनों जने रास्तेपर निकल पड़ें।'

मैंने सिर हिलाकर कहा, "यह नहीं होगा कमललता, कल मैं जा रहा हूँ। पर जानेके पहले गौहरके बारेमें जाननेकी इच्छा होती है।"

वैष्णवीने सिर्फ निःश्वास छोड़कर कहा, "गौहरके बारेमें ? नहीं, उसे सुननेका तुम्हारा काम नहीं। सचमुच ही कल जाओगे ?"

"हाँ, सच ही कल जाऊँगा।"

क्षणभरके लिए स्तब्ध रह कर वैष्णवीने कहा, "किन्तु इस आश्रममें यदि तुम फिर कभी आओगे गुसाईं, तो कमललताको न देख पाओगे।"



८

इस विषयमें सन्देह न था कि अब यहाँ एक क्षण रहना भी उचित नहीं। पर उसी समय मानो कोई आड़में खड़ा होकर आँख बन्द कर इशारेसे निषेध करता है। कहता है 'जाओगे क्यों ? यही सोचकर तो आये थे कि दस-सात दिन रहेंगे—रहो न। तकलीफ तो कुछ है नहीं।'

रातको बिछौनेपर लेटा हुआ सोच रहा था कि ये कौन हैं जो एक ही शरीरमें वास करके एक ही वक्त ठीक उल्टी राय देते हैं। किसकी बात ज्यादा सच है ? कौन ज्यादा अपना है ? विवेक, बुद्धि, मन प्रवृत्ति,—ऐसे ही जाने कितने नाम हैं, इनकी न जाने कितनी दार्शनिक व्याख्याएँ हैं, पर सबकी व्याख्या भी

कौन निःसंशय प्रतिष्ठित कर सका है ? जिनको सोचता हूँ, कि अच्छा है, इच्छा आकर बाहिर पैर बढ़ानेमें बाधा क्यों डालती है ? अपने ही अन्दरके इस विरोध, —द्वन्द्वका छोर क्यों नहीं होता ? मन कहता है कि मेरा यहां आना ही श्रेयस्कर है, अन्य जाना ही कल्याणकारी है। तो फिर दूसरे ही क्षण उस मनकी दोनों आँखोंमें आँसू क्यों भर आते हैं ? बुद्धि, विवेक, प्रवृत्ति, मन, इन सब बातोंकी सृष्टि करके सभी सान्त्वना कहाँ रह जाती है ?

फिर भी जाना ही चाहिए, पीछे हटनेसे काम नहीं चलेगा। और सो भी चुप ही। यही सोचने लगा कि इस जानेको कैसे संपन्न करूँ। बचपनका एक रास्ता जानता हूँ वह है गायब हो जाना। किसीको बाकी नहीं छोड़कर जानेकी छुट्टी दिलाना नहीं कारणका प्रदर्शन नहीं, प्रयोजनका,—कर्तव्यका विस्तृत विवरण नहीं सिर्फ मैं था और अब मैं नहीं हूँ, इस तरह घटनाके आविष्कारका भार उन लोगोंपर छोड़ देना जो पीछे रह गये हैं, बस। निश्चय कर लिया कि अब सोना तो होगा नहीं, ठाकुरजीकी मंगलआरती शुरू होनेके पहले ही अन्धकारमें शरीर ढककर प्रस्थान कर दूँगा। पर दिक्कत है कि पूँटूके दहेजका रुपया छै सैकड़ेमेंसे कमललताके पास है। लेकिन उसे रहने दो। कलकत्तेसे, और नहीं तो बर्मासे चिट्ठी भेज दूँगा, उससे एक काम यह भी होगा कि जबतक उन्हें कौसम न देगी तबतक कमललताको बाध्य होकर यहीं रहना पड़ेगा, पथ-निरापद जानेका सुयोग नहीं मिलेगा। जो कुछ रुपये मेरे कुरतेकी जेबमें पड़े हैं, वे कलकत्तेतक पहुँचनेके लिए काफी हैं।

बहुत रात इसी तरह कट गई। चूँकि बार-बार संकल्प किया था कि सोऊँगा नहीं शायद इसी कारण न जाने कब सो गया। पता नहीं कि कितनी देरतक सोया, पर अचानक ऐसा लगा कि स्वप्नमें गाना सुन रहा हूँ। एक बार खयाल किया कि रातका त्योहार शायद अभीतक समाप्त नहीं हुआ है, फिर सोचा कि शायद प्रभुकी मंगलआरती शुरू हो गई है, पर आँखोंके पलकोंका सुनिश्चित हुआ निर्णय नहीं है। असम्पूर्ण अपरितृप्त निद्रा टूट कर भी नहीं टूटती, आँखें खोलकर देखा भी नहीं जा सकता। किन्तु, कानोंमें प्रभातीके सुरमें मीठे कण्ठका गाया धीमा आह्वान पहुँचा :

जागिए गोपाल लाल, पंछी बन बाजे।
रजनीको अन्त भयो, दिनने पट खोले॥

"गुसाईंजी, और कितनी देरतक सोओगे ! उठो ।"

बिछौनेपर उठ बैठा । मसहरी उठाई, पूर्वकी खिड़की खुली हुई है—सामनेकी आम्र-शाखाओंमें पुष्पित लवंग-मंजरीके कई बड़े-बड़े गुच्छ नीचेतक झूल रहे हैं । उनकी संधोंमेंसे दिखाई दिया कि आकाशमें कई जगह हल्के लाल रंगका आभास है, जैसे अँधेरी रातमें सुदूर ग्रामके अन्तमें आग लग गई हो ।—मनमें कहीं कुछ व्यथा-सी होने लगी । कुछ चमगीदड़ उड़ करके अपने आवासों-को लौट रहे हैं । उनके पंखोंकी फड़फड़ाहट बार-बार कानोंमें आने लगी । ऐसा लगने लगा कि रात्रि खत्म हो रही है । यह नीलकण्ठों, बुलबुलों और श्यामा पक्षियोंका देश है । मानो, यह उनकी राजधानी 'कलकत्ता शहर' है और यह निपाक बकुल-वृक्ष (मौलसिरी) उनके लेन-देन और काम-काजका 'बड़ा बाजार' है जहाँ दिनके वक्तकी भीड़ देखकर अवाक् हो जाना पड़ता है । तरह-तरहकी शक्लें, तरह-तरहकी भाषा और रंग-बिरंगी पोशाकका बहुत ही विचित्र समावेश है । रातको अखाड़ेके चारों ओरसे वनमें डाल-डालपर उनके आश्रित पड़े हैं । नींद खुल जानेकी आहट कुछ-कुछ पाई गई । उससे मालूम हुआ कि मानो हाथ-मुँह धोकर वे तैयारी कर रहे हैं । अब सारे दिन चलनेवाले नाच-गानका महोत्सव शुरू होगा । वे सब वनस्थलके उस्ताद हैं जो थकते भी नहीं और कण्ठ रस भी बन्द नहीं करते । भीतर वैष्णवोंका कीर्तन शायद कभी बन्द भी हो जाय, परन्तु बाहर इन सबके बन्द होनेकी सम्भावना नहीं है । यहाँपर छोटे बड़े, भले-बुरेका विचार नहीं है । इच्छा और समय चाहे हो या न हो, गाना तुम्हें सुनना ही पड़ेगा । इस देशकी, मालूम होता है, यही व्यवस्था है, यही नियम है । याद आया, कल सारी दोपहरी-भर पीछेके बाँसके वनमें दो पपीहोंके उच्च गलेकी 'पिया-पिया' पुकारकी अविश्रान्त होड़से मेरी दिवा निद्रामें काफी विघ्न हुआ था, इसपर मेरी ही तरह क्षुब्ध हुआ कोई बन-काक नदी-किनारेके ऊपर और भी कठोर कण्ठसे बार-बार उनका तिरस्कार करके भी उन्हें चुप नहीं कर सका था । मालूम पड़ता था कि इस देशमें मोर नहीं हैं नहीं तो उनके इस उत्सवके अखाड़ेमें आ पहुँचनेपर तो मनुष्य टिक ही नहीं पाता । जो कुछ भी हो दिनका उपद्रव अब भी शुरू नहीं हुआ था । शायद और भी थोड़ा-सा निर्विघ्न सो सकता, किन्तु इसी समय गत रात्रिका संकल्प याद आ गया । परन्तु, अब चुपचाप खिसक चलनेका भी मौका नहीं रहा, महरियोंकी

छटपटाते काम बिगड़ चुका था। नाराज होकर बोला, "मैं 'गोपाल' भी नहीं हूँ और मेरे बिछौनेमें आग भी नहीं है। इस समय आधी रातको सोतेसे जगानेकी मदद करो तो क्या जरूरत थी!"

वैष्णवीने कहा, "रात कहाँ है गुसाईं, तुम्हारी तो आज सुबहकी गाड़ीसे कलकत्ते जानेकी बात थी! मुँह-हाथ धो लो, मैं चाय तैयार कर लाती हूँ। नहाना नहीं। आदत नहीं है, बीमार पड़ सकते हो।"

"हाँ, बीमार पड़ सकता हूँ। सुबहकी गाड़ीमें जब मेरी इच्छा होगी चला जाऊँगा, पर यह तो बताओ कि तुम्हें इस विषयमें इतना उत्साह क्यों है!"

उसने कहा, "और किसीके उठनेके पहले मैं तुम्हें बड़े रास्तेतक पहुँचा आना चाहती हूँ गुसाईं।" उसका चेहरा स्पष्ट नहीं दिखाई दिया, पर बिखरे हुए बालोंकी ओर देखकर कमरेकी इतनी कम रोशनीमें भी यह जान गया कि वे गीले हैं, स्नानसे निबटकर वैष्णवी तैयार हो गई है।'

"मुझे पहुँचाकर फिर आश्रममें ही लौट आओगी न?"

वैष्णवीने कहा, "हाँ।"

रुपयोंकी उस छोटी-सी थैलीको बिछौनेपर रख उसने कहा, "यह रहा तुम्हारा बैग। रास्तेमें होशियारी रखना,—इसे एक बार देख लो।"

एकाएक कुछ कहनेके लिए शब्द न सूझे। फिर कहा, "कमललता, तुम्हारा इस रास्तेपर आना मिथ्या है। एक दिन तुम्हारा नाम था उषा, आज भी वही उषा हो,—जरा भी नहीं बदल सकी हो।"

"क्यों, बताओ?"

"तुम भी कहो कि मुझसे रुपये गिननेके लिए क्यों कहा? गिन सकता हूँ पर क्या तुम सच समझती हो? जो कहते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं उन्हें कपटी कहते हैं। जानेके पहले मैं बड़े गुसाईंजीसे शिकायत कर जाऊँगा कि आश्रमके खातेसे तुम्हारा नाम काट दें। तुम वैष्णव-समाजके लिए कलंक हो।"

वह चुप रही। मैं भी क्षणभर मौन रहकर बोला, "आज सुबह मेरी जानेकी इच्छा नहीं है।"

"नहीं है? तो थोड़ी देर और सो जाओ। उठनेपर मुझे खबर देना —

"पर तुम अभी क्या करोगी?"

"मुझे काम है। फूल चुनने जाऊँगी।"

"इस अन्धकारमें! डर नहीं लगता?"

"नहीं डर किसका! तुम्हारी पूजाके फूल मैं ही चुनकर लाती हूँ। नहीं उन लोगोंको बड़ी तकलीफ होती है।"

'उन लोगों'के माने अन्यान्य वैष्णवियाँ। यहाँ दो दिन रहकर यह कर रहा था कि इसकी आड़में रहकर मठका समस्त गुरु-भार कमललता अके पालन करती है। सब व्यवस्थाओंमें उसका कर्तृत्व है सबके ऊपर, किन्तु स्नेह सौजन्यसे और सर्वोपरि अविनय कर्मकुशलतासे यह कर्तृत्व इतनी सहज गु प्रवहमान है कि कहीं भी ईर्ष्या-विद्वेषका कण-मात्र भी सिर नहीं उठाने पाता यह सोचकर मुझे भी क्षोभ हुआ कि यही आश्रम-वासी आज उस व्याकुलताके साथ 'जाऊँ जाऊँ' कर रही है। यह कितनी बड़ी दुर्घटना है कित बड़ी निरुपाय दुर्गतिमें इतने निश्चिन्त नर-नारी गिर पड़ेंगे। इस मठमें सिर्फ दिनसे हूँ, पर न जाने कैसा एक आश्चर्य अनुभव कर रहा हूँ,—ऐसा मनोभ हो गया है कि मानो इसकी आन्तरिक शुभाकांक्षा चाहे बिना रह ही न सकता। सोचा, लोग यह गलत कहते हैं कि इनको सिर्फ आश्रम है औ यहाँ सभी समान हैं। पर यह मानो आँखोंके सामने ही देखने लगा कि एकके अभावमें किस प्रकार ताशके घरकी तरह समस्त आयतन ही विधि-विधानों विश्लिष्ट-विच्छिन्न होकर टूट सकता है। कहा, "और यहीं सोऊँगा कमललत चलो, तुम्हारे साथ चलकर फूल चुन लाऊँ।"

वैष्णवीने कहा "तुमने स्नान नहीं किया है, कपड़े भी नहीं बदले हैं,— तुम्हारे छुए हुए फूलोंसे पूजा होगी?"

मैंने कहा, "फूल मत तोड़ने देना, पर डालको नीचा कर पकड़ने तो दोगी यह भी तुम्हारी सहायता होगी।"

वैष्णवीने कहा "डाल नीची करनेकी जरूरत नहीं होगी, छोटे-छोटे पे हैं,—मैं खुद ही कर लेती हूँ।"

कहा "अपने काम साथ रहकर सुख-दुखकी दो-चार बातें तो कर सकोगी इसमें भी तुम्हारी मेहनत कम होगी।"

इस बार वैष्णवी हँसी। बोली, "एकाएक इतना दरद हो आया गुसाईं अच्छा, चलो। मैं डलिया ले आऊँ, इतनेमें तुम हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदल लो।"

आश्रमके बाहर थोड़ी दूरपर फूलोंका बगीचा है। उसे पारकर अलग-बगलके भीतरसे रास्ता है। फिर अन्धकारके कारण ही नहीं बल्कि उसके पत्तोंके कारण पथकी रेखा विलुप्त हो गई है। वैष्णवी आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे चला, हर डग डर लगता कि कहीं ठोकर पैर न पड़ जाय।

कहा, "कमललता, रास्ता तो नहीं भूलोगी?"

"नहीं, अपने काम काज तो हमारे लिए रास्ता पहचानकर चलना होगा।"

"कमललता, एक अनुरोध रखोगी?"

"कौन-सा अनुरोध?"

"यहाँसे तुम और कहीं नहीं जाओगी।"

"जानेसे तुम्हारा क्या नुकसान है?"

जवाब नहीं दे सका, चुप हो रहा।

"बुड्ढे ठाकुरने कहा है कि 'इस जन्ममें जनने पर और जाओ, जिसने बीते दुःख भी भर कर सहनेका भा दिया है, उसे तुम अब क्या खोजती हो?'— गुसाईं, इसको तुम कलकत्ते पढ़े जाओगे, और अब यहीं शायद एक मासके ज्यादा ठहर न सकोगे,—क्यों?"

"क्या पता, पहले सुबह तो होने दो।"

वैष्णवीने जवाब नहीं दिया, कुछ देर बाद गुनगुनाकर गाने लगी—

चण्डीदास कहे सुन विनोदिनी, सुख-दुख दोनों भाई।
सुखके कारण प्रीति करे जो, दुख भी ता ढिग जाई॥

मैंने कहा, "इसके बाद?"

"इसके बाद और नहीं याद।"

कहा, "तो कुछ और गाओ—"

वैष्णवीने वैसे ही मृदु स्वरमें गाया—

चण्डीदास कहे सुन विनोदिनी, प्रीतिकी बात न भावे।
प्रीतिके कारण मान गँवावे, आखिर प्रीति ही पावे॥

इस बार उसके रुकनेपर बोला, "इसके बाद?"

वैष्णवीने जवाब दिया, "इसके बाद और नहीं है, यहीं तक है।"

इसमें शक नहीं कि ठीक ही है। दोनों चुप हो रहे। बहुत इच्छा होने लगी

कि दुतल्लेसे नजदीक जाकर और झुक कर इस अन्धकार-गह्वर उसका हाथ पकड़ कर चलूँ। जानता हूँ कि वह नाराज नहीं होगी, बाधा नहीं देगी, पर किसी भी तरह पैर नहीं चले, मुँहसे भी एक शब्द नहीं निकला। जैसे खड़ा था वैसे ही धीरे धीरे चुपचाप कमरेके बाहर आ पहुँचा।

रास्तेके किनारे दीवालोंके पीछे घिरा हुआ आयताकार फूलोंका एक बगीचा है। ठाकुरजीकी दैनिक पूजाके लिए यहींसे फूल आते हैं। चुनी हुई जगहमें अन्धकार नहीं है पर उजेला भी उतना नहीं हुआ है। फिर भी देखा कि आश्विनके खिले हुए कामिनीके फूलोंसे सारा बगीचा मानो सफेद हो रहा है। सामनेके पत्ते झड़े हुए मुचकुन्द चमेलीकी झाड़में तो फूल नहीं हैं, परन्तु, उसके पास ही कहीं कुछ रजनीगन्धाके फूल अरण्यमें फूल रहे हैं जिनकी मधुर गन्धसे इस त्रुटिकी पूर्ति हो गई है। और सबसे अधिक मनको हरण करनेवाला था शीतका हिम। पहिले कमरेमें इन दुखके आलोकमें पहचाने आते थे एक-दूसरेसे मिले हुए छप्परके छज्जे गुम्बदके साथ—जिनमें बेशुमार फूल थे और जो तरसे पैदी हुई खास ऑंखोंसे चमेलीकी डालियोंकी ओर मानो ताक रहे थे। पहले कभी इतने सबेरे बिस्तरा छोड़कर नहीं उठा था, यह समय हमेशा निद्राच्छन्न आलस्यकी अचेतनामें कट जाता है। पता नहीं सकता कि आज कितना अच्छा लगा। पूर्वके पश्चिम दिगन्तमें ज्योतिर्मयका आभास मिल रहा है, और उसकी निःशब्द महिमासे सारा आकाश शान्त हो रहा है। पर दक्षिणकी ओर पत्तोंसे, शोभा और सौरभसे और आनन्दित फूलोंसे परिव्याप्त समुन्नत उपवन,—सभी मिलकर ऐसा लगा कि जैसे यह रात्रिकी समाप्तप्राय वासनाहीन विदाकी अस्फुट भाषा हो। करुणा, ममता और अयाचित दाक्षिण्यसे मेरा समस्त अन्तर पल भरमें ही परिपूर्ण हो उठा, कहना चाह उठा, "बाबा जाओ, जीवनमें तुमने अनेक दुःख-दर्द पाये हैं, प्रार्थना करता हूँ कि इस बार तुम सुखी होओ!"

सैकड़ों फूलोंकी डालियाको पानीकी बाल्टी ... सामनेकी दरवाजा खोल रही थी कि उसने आहटसे घूमकर देखा और कहा, "अचानक तुम्हें हो क्या गया गुसाईं!" अपनी बात अपने ही कानोंमें न जाने कैसी बेढंगी लग रही थी, उसपर उसके विस्मय प्रश्नसे मन ही मन बहुत लज्जित हो गया। कोई जवाब नहीं सूझा, लज्जाको ढकनेके लिए एक अर्थहीन हँसीकी चेष्टा भी ठीक

तरफ उत्सुक नहीं हुई, अन्तमें चुप हो रहा ।

वैष्णवीने भीतर प्रवेश किया, साथ ही मैंने भी । धूप तोड़ते हुए उसने खुद ही कहा, "मैं तुममें ही हूँ गुसाईं । जिनके पाद-पद्मोंमें अपनेको निवेदन कर दिया है वे दासीका कभी परित्याग नहीं करेंगे ।"

सन्देह हुआ कि अर्थ काफी साफ नहीं है, पर यह कहनेका साहस भी नहीं हुआ कि स्पष्ट करके कहो । वह मृदु स्वरसे गुनगुनाने लगी—

गलेमें तमाम माणिकोंकी मंजु मालायें डालूँगी,
और कानोंमें नवकुंडल, श्याम-गुण-यशके धारूँगी ।
श्यामके ही अनुराग-रँगे, पीत पट सुन्दर पहनूँगी,
योगिनी बन करके बन बन, और पथ पथपर भटकूँगी ॥
कहे यदुनाथदास—

गीत रोकना पड़ा । कहा, "यदुनाथदासको रहने दो, उधर लक्ष्मीकी आवाज सुन रही हो, सोयेगी नहीं ?' उसने मेरी ओर देखकर मृदु हास्यसे फिर शुरू कर दिया—

धर्म और कर्म सभी जावें, नहीं डरती हूँ मैं इससे ।
कहीं इस चक्करमें पड़कर, हाथ धो बैठूँ प्रीतमसे ॥

"अच्छा, नये गुसाईं, जानते हो कि बहुत-से भले आदमी औरतोंका गाना नहीं सुनना चाहते, उन्हें बहुत दुःख लगता है ?"

मैंने कहा, "जानता हूँ । किन्तु मैं उन 'भले आदमियों'में नहीं हूँ ।"

"तो गाना डालकर मुझे रोका क्यों ?"

"उधर तो अधर आरती शुरू हो गई है—तुम्हारे न रहनेसे उसमें कमी रह जायगी ।"

"यह मिथ्या छलना है गुसाईं ।"

"छलना क्यों है ?'

"क्यों, सो तुम भी जानते हो । पर यह बात तुमसे कही किसने कि मेरे न रहनेपर ठाकुरजीकी सेवामें सचमुच ही कमी हो सकती है ? इसपर क्या तुम विश्वास करते हो ?"

"करता हूँ । मुझे किसीने कहा नहीं कमललता, मैंने खुद अपनी आँखोंसे

देखा है ।"

उसने और कुछ नहीं कहा, न जाने कैसे अन्यमनस्क भावसे क्षणकाल तक मेरे मुँहकी ओर ताकती रही और उसके बाद फूल तोड़ने लगी ।

डलिया भर जानेपर बोली, "बस, अब और नहीं ।"

"गुलाब नहीं चुने ?"

"नहीं, उन्हें हम नहीं तोड़तीं यहींसे भगवान्‌को निवेदन कर देती हैं चलो, अब चलें ।"

उजाला हो गया है । पर यह मठ ग्रामके एकान्तमें है,—इधर कोई ज्यादा आता-जाता नहीं, इसलिए तब भी यह पथ जन-हीन था और अब भी है चलते-चलते एक बार फिर वही प्रश्न किया, 'तुम क्या सचमुच यहाँसे चली जाओगी ।"

"बार-बार यह बात पूछनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा गुसाईं ?"

इस बार भी जवाब न दे सका, सिर्फ अपने-आपसे पूछा, सच तो है, बार बार यह बात क्यों पूछता हूँ ?—इससे मेरा काम ?

मठमें लौटकर देखा कि इस बीच सभी लोग जागकर दैनिक कार्योंमें लग गये हैं । उस वक्त झालरीकी आवाजसे व्यस्त होकर वृथा ही जल्दी मचाई थी मालूम हुआ कि वह मंगल-आरती नहीं थी सिर्फ ठाकुरजीकी निद्रा भंग करनेका बाजा था । वह उन्हें ही सुहाता है ।

हम दोनोंको अनेकोंने देखा, पर किसीके भी देखनेमें कुतूहल नहीं था कम-उम्र होनेके कारण सिर्फ पद्मा एक बार मुस्कराई और फिर मुँह नीचा कर लिया । वह ठाकुरजीकी माला गूँथती है । उसके पास डलिया रखकर कमललताने सस्नेह कौतुकसे तर्जन करके कहा, "हँसी क्यों कलमुँही ?"

किन्तु उसने मुँह ऊपर नहीं उठाया । कमललताने ठाकुरजीके कमरेमें प्रवेश किया, और मैं भी अपने कमरेमें दाखिल हुआ ।

स्नान और आहार यथारीति और यथासमय सम्पन्न हुआ । ग्रामकी गाड़ीसे मेरे जानेकी बात थी । बैष्णवीको खोजने गया तो देखा कि वह ठाकुरजीके कमरेमें है और उन्हें सजा रही है । मुझे देखते ही बोली, "नये गुसाईं, यदि आये हो तो कुछ मेरी सहायता भी करो । पद्मा सिरदर्द लेकर पड़ी है और लक्ष्मी-सरस्वती दोनों बहिनोंको एकाएक बुखार आ गया है, क्या होगा कुछ समझमें

नहीं जाता। वाल्मी रंगके इन दो कपड़ोंमें सुन्दर लाल हो न गुसाईं।"

अतएव ठाकुरके कपड़ोंमें सुन्दर बाल्ने बैठ गया। उस दिन जाना न हो सका। दूसरे दिन भी नहीं और उसके बादवाले दिन भी नहीं। मैं बड़े सबेरे वैष्णवीके फूल तोड़नेका साथी बन गया। प्रभातमें, मध्याह्नमें, सन्ध्याको,—कुछ-कुछ काम वह मुझसे करा ही लेती है। इसी प्रकार स्वप्नकी तरह दिन कटने लगे। सेवामें, सहयोगतामें, आनन्दमें, आराधनामें, पूजोंमें, गन्धमें, कीर्तनमें, पक्षियोंके गानमें,—कहीं भी कोई छिद्र नहीं, फिर भी रह-रहकर मन बीच-बीचमें सजग हो भर्त्सना कर उठता है कि यह क्या खिलवाड़ कर रहे हो! बाहरके सारे सम्बन्ध तोड़कर इन थोड़े-से निर्जीव खिलौनोंके पीछे यह कैसा पागलपन कर रहे हो! इतनी बड़ी आत्म-वंचनामें मनुष्य जीवित कैसे रहता है! फिर भी यह अच्छा लगता है, 'चलूँ चलूँ' करके भी पैर नहीं बढ़ा पाता। इस तरफ मलेरिया कम है, फिर भी इस समय अनेक लोग ज्वरग्रस्त हो रहे हैं। गौहर सिर्फ एक दिन आया था, फिर नहीं आया। उसकी खोज-खबर लेनेका समय भी नहीं निकाल पाता! यह मेरी दशा अच्छी हुई!

सहसा मन भय और धिक्कारसे भर गया,—यह मैं कर क्या रहा हूँ! संगति-दोषसे क्या एक दिन यह सब सत्य मान बैठूँगा! स्थिर किया, अब नहीं, चाहे कुछ भी क्यों न हो, कल यह जगह छोड़कर मुझे भागना ही पड़ेगा।

हर रोज रातके अन्तमें वैष्णवी आकर जगा देती है। प्रभातीके स्वरमें वैष्णव कवियोंका नींद उड़ा देनेवाला वह गीत भक्ति और प्रेमका कितना करुण आवेदन होता है! हठात् उत्तर नहीं देता, कान लगाकर सुनता रहता हूँ। आँखोंके कोनोंमें आँसू आ जाना चाहते हैं। मसहरी उठाकर जब वह खिड़की और दरवाजा खोल देती है तब नाराज होकर उठ बैठता हूँ, और मुँह धो कपड़े बदलकर साथ चल देता हूँ।

कई दिनोंकी आदतकी वजहसे आज अपने-आप ही नींद खुल गई। कमरेमें अँधकार है। एक बार ऐसा लगा कि रात अभी खत्म नहीं हुई है, परन्तु फिर सन्देह हुआ। बिछौना छोड़कर बाहर आया,—देखता हूँ कि रात कहाँ है, सबेरा हो गया है। किसीके खबर देते ही कमललता आकर खड़ी हो गई। उसका ऐसा म्लान अप्रफुल्ल चेहरा इसके पहले नहीं देखा था।

मैंने पूछा, "तुम्हारी तबीयत क्या अच्छी नहीं है?"

उसने म्लान हँसी हँसकर कहा, "गुसाईं, आज तुम जीत गये।"

"क्यामो कैसे ?"

"तबीयत आज वैसी अच्छी नहीं वक्तपर नहीं उठ सकी।"

'तो आज फूल तोड़ने कौन गया ?"

आँगनके एक ओर एक अधमरे टगरके पेड़में कुछ थोड़े-से फूल लगे थे, उन्हींको दिखाकर बोली, "इस वक्त तो किसी तरह इन्हींसे काम चल जायगा।"

"पर ठाकुरके गलेकी माला ?"

"माला आज न पहना सकूँगी।"

सुनकर मन न जाने कैसा हो गया,—उन्हीं निर्जीव खिलौनोंके लिए! कहा, "नहाकर मैं तोड़ लाता हूँ।"

"तो आओ पर इतने सबेरे नहा नहीं सकोगे। बीमार पड़ जाओगे।"

"बड़े गुसाईंजी नहीं दिखाई देते ?"

वैष्णवीने कहा, "वे तो यहाँ नहीं, परसों अपने गुरुदेवसे मिलने नवद्वीप गये हैं।"

"कब लौटेंगे ?"

"यह तो पता नहीं गुसाईं।"

इतने दिनोंसे मठमें रहते हुए भी वैरागी द्वारिकादासके साथ घनिष्ठता नहीं हुई, कुछ तो मेरे अपने दोषसे और कुछ उनके निर्लिप्त स्वभावके कारण। वैष्णवीके मुँहसे सुनकर और अपनी आँखोंसे देखकर जान गया हूँ कि इस आश्रममें न कपट है, न अनाचार और न मास्सरी करनेका भाव। उनका अधिकांश समय अपने निर्जन कमरेमें वैष्णव धर्मग्रन्थोंके साथ व्यतीत होता है। इन लोगोंके धर्म-मतपर न मेरी आस्था है न विश्वास। पर इस व्यक्तिकी बातें इतनी नम्र, देखनेकी भंगी इतनी स्वच्छ, गम्भीर तथा विश्वास और निष्ठासे आद्यन्त ऐसी भरपूर रहती है कि उनके मत और पथके विरुद्ध आलोचना करनेमें सिर्फ संकोच ही नहीं बल्कि दुःख होता है। अपने आप ही यह समझमें आ जाता है कि यहाँ तर्क करना बिलकुल निष्फल है। एक दिन एक मामूली-सी दलील करने पर वे मुस्कुराते हुए इस तरह चुपचाप देखते रह गये कि कुण्ठाके मारे मेरे मुँहसे और शब्द ही न निकले। उसके बादसे ही मैं यथासाध्य उनसे बचकर चलता हूँ। फिर भी एक कुतूहल बना रहा। इच्छा थी कि जानेके पहले इतनी मारिकोंसे फिर

रहनेपर भी निरवच्छिन्न रसके अनुशीलनमें निमग्न रहनेपर भी, चित्तकी शान्ति और देहकी निर्मलताको अक्षुण्ण बनाये रखनेका रहस्य उनसे पूछ जाऊँगा। पर वह सुयोग इस यात्रामें अब शायद नहीं मिलेगा। मन ही मन सोचा कि फिर कभी यदि आना हुआ, तो देखा जायगा।

वैष्णवोंके मठोंमें भी ठाकुरजीकी मूर्तिको आम तौरपर ब्राह्मणके अलावा और कोई स्पर्श नहीं कर सकता, पर इस आश्रममें यह रीति नहीं है। ठाकुरका एक वैष्णव पुजारी बाहर रहता है, आज भी वह आकर यथारीति पूजा कर गया। पर ठाकुरकी सेवाका भार आज बहुत-कुछ मुझपर आ पड़ा। वैष्णवी बतलाती जाती है और मैं सब काम करता जाता हूँ, पर रह-रहकर सारा हृदय खिन्न हो उठता है। मुझपर यह कैसा पागलपन सवार हो रहा है! आज भी जाना बन्द रहा। अपनेको डपटकर यह कहकर समझाया कि जब इतने दिनोंसे यहाँ हूँ, तब इस विपत्तिके समय इन लोगोंको कैसे छोड़ जाऊँ? संसारमें कृतज्ञता नामकी भी तो कोई चीज है!

और भी दो दिन कट गये, किन्तु अब और नहीं। कमललता स्वस्थ हो गई है, पद्मा और लक्ष्मी-सरस्वती दोनों बहिनोंकी तबीयत भी ठीक हो गई है। द्वारिकादास कल आश्रमको लौट आये हैं, उनसे विदा माँगने गया। गुसाईंजीने कहा, "आज जाओगे गुसाईं? अब कब आओगे?"

"यह तो नहीं जानता गुसाईंजी।"

"लेकिन कमललता तो रो-रोकर अधमरी हो जायगी।"

यह जानकर मन ही मन बहुत बिगड़ा कि इनके कानोंमें भी हमारी बात पहुँच गई है। कहा, "वह क्यों रोने लगी?"

गुसाईंजीने जरा हँसकर कहा, "शायद तुम नहीं जानते?"

"नहीं।"

"उसका स्वभाव ही ऐसा है। किसीके चले जानेपर वह शोकमें अधमरी हो जाती है।"

यह बात और भी बुरी लगी। कहा, "जिसकी आदत ही शोक करनेकी है वह तो करेगा ही। मैं उसे रोक कैसे सकता हूँ?" पर यह कहा और उनकी आँखोंकी तरफ देखकर मुँह फेरा ही था कि देखा, मेरे पीछे कमललता खड़ी है।

द्वारिकादासने कुण्ठित स्वरमें कहा, "इसपर नाराज न होना गुसाईं, मुझ

है कि मैं तब तुम्हारी सेवा नहीं कर सकी और बीमार पड़कर तुमसे बहुत काम लिया, अनेक कष्ट भी दिये। वह कल मुझसे इसके लिए स्वयं ही दुःख प्रकट कर रही थी। और फिर वैष्णव-वैरागियोंके पास सेवा-सत्कार करने लायक है ही क्या! किन्तु अगर कभी तुम्हारा यहाँ आना हो तो भिखारियोंको दर्शन दे जाना। दे जाओगे न गुसाईं?"

सिर हिलाकर बाहर निकल आया, कमललता वहींपर वैसी ही खड़ी रही। पर अकस्मात् यह क्या हो गया! विदा लेनेके वक्त न जाने कितना क्या कहने और सुननेकी कल्पना कर रक्खी थी!—सब नष्ट कर दी। अनुभव कर रहा था कि चित्तकी दुर्बलताकी ग्लानि अन्तरमें धीरे-धीरे सञ्चित हो रही है, किन्तु स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि हँसता-खाता हुआ अतीन्द्रिय मन ऐसी अशोभन रूढ़तासे अपनी मर्यादा नष्ट कर बैठेगा!

नवीन आ पहुँचा। वह गौहरकी तलाशमें आया है, क्योंकि वह कलसे मकान पर नहीं लौटा है। बड़ा अचरज हुआ, "यह क्या नवीन, वह तो यहाँ भी अब नहीं आता!"

नवीन विशेष विचलित न हुआ। बोला, "तो किसी वन-जंगलमें घूम रहे होंगे, नहाना-खाना बन्द कर दिया है, अब कहीं साँपके काटनेकी खबर मिलेगी तो निश्चिन्त हुआ जायगा।"

"पर नवीन, उसकी तलाश करना तो जरूरी है।"

"मालूम है कि जरूरी है, पर तलाश कहाँ करूँ! बाबू, जंगलमें घूम घूमकर मैं अपनी जान तो दे नहीं सकता! पर वे कहाँ हैं? एक बार उनसे और पूछ लूँ।"

"'वे' कौन?"

"वही कमललता।"

"पर उसे क्या मालूम होगा नवीन?"

"वे नहीं जानतीं! सब जानती हैं।"

और ज्यादा बहस न करके मैं उत्तेजित नवीनको मठके बाहर ले आया। कहा, "वास्तवमें नवीन, कमललता कुछ नहीं जानती। खुद बीमार होनेके कारण वह तीन-चार दिनसे अखाड़ेके बाहर भी नहीं निकली।"

नवीनने विश्वास नहीं किया। नाराज होकर कहा, "नहीं जानतीं! वह

सब जानती है। वैष्णवी कौन-सा मंतर नहीं जानती!—वह क्या नहीं कर सकती! यदि कहीं वह नवीनके पल्ले पड़ी होती तो उसका आँख-मुँह मटकाना और कीर्तन करना सब बाहर निकाल देता। लोगोंने बाबूके इतने रुपये-पैसे मानों जादूसे उड़ा दिये!"

उसे शान्त करनेके लिए कहा, "कमललता रुपये लेकर क्या करेगी, नवीन? वैष्णवी है, मठमें रहती है, गाना गाकर, भीख माँगकर ठाकुर-देवताकी सेवा करती है। दो दफे दो मुट्ठी खाती ही तो है और क्या! इसलिए मुझे तो ऐसा नहीं लगा कि वह रुपयोंकी भिखारिणी है नवीन!"

नवीन कुछ ठंडा होकर बोला, "रुपयेके लिए नहीं—यह तो हम भी जानते हैं। देखनेमें भी वह भले घरकी लड़की जैसी लगती है। वैसा ही चेहरा और वैसी ही बातचीत। बड़े बाबाजी भी लोभी नहीं हैं, पर उन्होंने वैष्णवियोंका पूरा एक झुण्डका-झुण्ड जो पाल रखा है! ठाकुर-सेवाके नामपर उन लोगोंको हलुआ-पूरी और दूध-घी रोज चाहिये! नयनचाँद चक्रवर्तीके मुँह पर कुछ-कुछ सुनी है कि अखाड़ेके नाम बीस बीघा जमीन खरीदी गई है। कुछ भी नहीं रहेगा बाबू, जो कुछ है सब एक दिन वैरागियोंके पेटमें चला जायगा।"

कहा, "पर वह अखाड़ा शायद यह नहीं। और तुम्हारा वह नयन चक्रवर्ती भी तो कम नहीं है!"

नवीनने फौरन स्वीकार कर कहा, "यह ठीक है। वह बूढ़ा ब्राह्मण बड़ा धोखेबाज है। पर कहिए, विश्वास कैसे न करें! उस दिन चुपचाप मेरे ही लड़केके नाम दस बीघा जमीन दान कर दी। बहुत मना किया पर नहीं सुना। मानता हूँ कि बाप बहुत रख गया है, पर बाबू, इस तरह लुटानेसे कितने दिन चलेगा! एक दिन क्या कहा, जानते हैं? कहा, हम फकीरके बच्चे हैं, फकीरी तो हमसे कोई छीन नहीं लेगा! लीजिए, सुनिए इनकी बातें!"

नवीन चला गया। एक बातपर ध्यान गया। वह उसने एक बार भी न पूछा कि मैं किसलिए इतने दिनोंसे मठमें पड़ा हुआ हूँ। नहीं जानता कि पूछता तो मैं क्या कहता, पर मन ही मन शर्मिन्दा हुआ। उससे ही और एक खबर मिली कि कालिदास बाबूके लड़केका ब्याह बड़ी धूमधामसे हो गया। उसकी तारीखतक मुझे ख्याल ही न रहा।

नवीनकी बातोंपर मन ही मन विचार करते करते अकस्मात् ।

एक संदेह उठ खड़ा हुआ,—वैष्णवी किसलिए अभी जाना चाहती है ? कहीं उस मेरी मौसीवाले कुत्सित आदमीके डरसे तो नहीं, जो कण्ठी बदलकर पाये हुए पतित्वका दावा करता है ! और वह गौहर ! मेरे यहाँ रहनेके समयमें ही शायद इसीलिए वैष्णवीने उस दिन सकौतुक कहा था कि गुसाईं, मैं अगर तुम्हें पकड़कर रखे रहूँ तो वे नाराज नहीं होंगे। नाराज होनेवाले आदमी वे नहीं हैं। पर आज वह क्यों नहीं आया ? उसने अपने मन ही मन जाने क्या सोच लिया है। संसारमें गौहरको आसक्ति नहीं है, अपना कहनेको भी कोई नहीं है। रुपया-पैसा, धन-दौलत तो उसके लिए ऐसे हैं मानों उन्हें दूर फेंकनेपर ही उसे चैन मिलेगी। प्रेम अगर उसने किया भी हो तो इस डरसे वह मुँह खोलकर शायद किसी दिन कहेगा भी नहीं कि कहीं पीछे किसी अपराधका स्पर्श न हो जाय। वैष्णवी यह जानती है। उस अनासक्तिमय बाधासे चिरनिष्फल प्रयत्नके निष्फल चित्त-दाहसे इस पाप और लज्जाको सूखे हुए मनुष्यको बचानेके लिए ही शायद वह यहाँसे भाग जाना चाहती है। नवीन पक्ष गया है और मैं बकुलके नीचे बैठकर उस टूटी वेदीके ऊपर अकेला बैठा हुआ सोच रहा हूँ। घड़ी खोलकर देखी। यदि पाँच बजेकी ट्रेन पकड़ना है तो अब और देर नहीं की जा सकती। पर हर रोज न जाना ही इस तरह आदतमें शामिल हो गया था कि जल्दीसे उठकर चल देनेके लिए आज भी मन पीछे हटने लगा।

चाहे कहीं भी रहूँ, पूँटूके बहू-भातके समय पहुँचकर भात ग्रहण करनेका वादा किया था और भागे हुए गौहरको खोज आना मेरा कर्तव्य है। इनके निरर्थक अनावश्यक अनुरोध बहुत माने हैं, पर आज जब सच्चा कारण विद्यमान है तब मना करनेको कोई नहीं। देखा पद्मा आ रही है। करीब आकर बोली, "तुम्हें एक बार दीदी बुला रही हैं, गुसाईं।"

फिर लौट आया। आँगनमें खड़े होकर वैष्णवीने कहा, "कलकत्ते पहुँचनेमें तुम्हें रात हो जायगी, नये गुसाईं। ठाकुरजीका थोड़ा-सा प्रसाद रख रखा है, कमरेमें आओ।"

पहलेकी ही तरह सावधानीसे तैयारी की गई थी। बैठ गया। यहाँ खानेके लिए मनाने और जोर डालनेकी प्रथा नहीं है, आवश्यक होनेपर माँग लेना होता है। बाकी नहीं छोड़ा जाता।

चलनेके वक्त वैष्णवीने कहा, "नये गुसाईं, फिर आओगे न?"

"तुम रहोगी न?"

"तुम बताओ, मुझे कितने दिनतक रहना होगा?"

"तुम ही बताओ कि कितने दिनों बाद मुझे यहाँ आना होगा?"

"नहीं, वह मैं तुम्हें नहीं बताऊँगी।"

"न बताओ, पर एक दूसरी बातका जवाब दोगी, बोलो?"

इस बार वैष्णवीने जरा हँसकर कहा, "नहीं, वह भी मैं न दूँगी। इस समय तुम्हारी जो इच्छा हो सोच लो गुसाईं, एक दिन अपने आप ही उसका जवाब मिल जायगा।"

कई बार इन शब्दोंने जबानपर आना चाहा, कि अब तो वक्त नहीं है कमललता, कल जाऊँगा,—पर किसी भी तरह कह नहीं पाया। यही कहा कि "जाता हूँ।"

पद्मा निकट आकर खड़ी हो गई। कमललताकी देखादेखी उसने भी हाथ जोड़कर नमस्कार किया। वैष्णवीने उससे नाराज होकर कहा, "हाथ जोड़कर नमस्कार क्या करती है कलमुँही, पैरोंकी धूल लेकर प्रणाम कर।"

इस बातसे मानों मैं चौंक पड़ा। उसके मुँहकी ओर नजर करते ही देखा कि उसने दूसरी ओर मुँह फेर लिया है। तब और कुछ न कहकर मैं उनका आश्रम छोड़कर बाहर चल दिया।

९

आज बे-मन कलकत्ते पहुँचनेके लिए निकल पड़ा। उसके बाद इससे भी ज्यादा दुस्सह है बर्माका निर्वासन। वहाँसे लौटकर आनेका शायद समय भी न होगा और प्रयोजन भी न होगा। शायद यह आना ही अन्तिम आना हो। गिनकर देखा, दस दिन बाकी हैं। दस दिन जीवनके हिसाबसे कितने से हैं! तथापि, मनमें सन्देह नहीं रहा कि दस दिन पहले जो यहाँ आया था और आज जो विदा लेकर जा रहा है, दोनों एक नहीं हैं।

बहुतोंको खेदके साथ कहते हुए सुना है कि यह किसने सोचा था अमुक व्यक्ति ऐसा हो जायगा,—अर्थात्, अमुकका जीवन मानों सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणकी तरह उनके अनुमानके पंचांगमें ठीक-ठीक मिलकर लिखा हुआ है,

उसका ठीक न मिलना सिर्फ अचिन्त्य ही नहीं, अद्भुत भी है,—मानो उनकी बुद्धिके हिसाब-किताबके बाहर दुनियामें और कुछ है ही नहीं। वे नहीं जानते कि संसारमें केवल विचित्र मनुष्य ही नहीं हैं, बल्कि इसका पता लगाना भी कठिन है कि एक-एक मनुष्य भी कितने विचित्र मनुष्योंके रूपमें रूपान्तरित हो जाता है,—पलोंपर एक क्षण भी तीव्रता और तीव्रतामें समस्त जीवनको अतिक्रम कर सकता है।

× × × ×

सीधा रास्ता छोड़कर बन-जंगलोंमेंसे इस-उस रास्ते चक्कर लगाता हुआ स्टेशन जा रहा था—बहुत-कुछ उसी तरह जिस तरह बचपनमें पाठशालाको जाया करता था। ट्रेनका वक्त नहीं जानता, उसकी जरूरत भी नहीं है,—सिर्फ यह जानता हूँ कि वहाँ पहुँचनेपर कोई-न-कोई ट्रेन, जब भी मिले, मिल ही जायगी। चलते-चलते एकाएक ऐसा लगा कि इन रास्तोंसे जैसे पहचाने हुए हैं, मानो कितने दिनोंतक कितनी बार इन रास्तोंसे आया-गया हूँ। पहले ये बड़े थे, अब न जाने क्यों संकीर्ण और छोटे हो गये हैं। अरे यह क्या, यह तो खाँ-चौधरियोंका इजारा बाग है। अरे, यही तो है! और यह तो मैं अपने ही गाँवके दक्षिणके मुहल्लेके किनारेसे जा रहा हूँ! उसने न जाने कब इसकी व्यथाके मारे इस इमलीके पेड़की डालसे गलेमें रस्सी बाँधकर आत्महत्या कर ली थी। की थी या नहीं, नहीं जानता, पर प्रायः और सब गाँवोंकी तरह यहाँ भी यह जनश्रुति है। पेड़ रास्तेके किनारे है, बचपनमें इसपर नजर पड़ते ही शरीरमें काँटे उठ आते थे, आँख बन्द करके एक ही दौड़में इस स्थानको पार कर जाना पड़ता था।

पेड़ वैसा ही है। उस वक्त ऐसा लगता था कि इस इमलीके पेड़का धड़ मानो पहाड़की तरह है और माथा आकाशसे जाकर टकरा रहा है। परन्तु आज देखा कि उस बेचारेमें गर्व करने लायक कुछ नहीं है, और जैसे अन्य इमलीके पेड़ होते हैं वैसा ही है। जनहीन ग्रामके एक ओर एकाकी निःशब्द खड़ा है। शैशवमें जितना डराया है, आज बहुत वर्षों बादके प्रथम साक्षात्में उसीने मानो बन्धुकी तरह आँख मिचकाकर मजाक किया, कहो मेरे बन्धु, कैसे हो, डर तो नहीं लगता!

मैंने पास जाकर परम स्नेहके साथ उसके शरीरपर हाथ फेरा। मन ही मन

अच्छा ही हूँ भाई। डर क्यों लगेगा, तुम तो मेरे बचपनके पड़ोसी हो,—
आत्मीय।

सन्ध्याका प्रकाश बुझता जा रहा था। मैंने विदा लेते हुए कहा, भाग्य
ा था जो अचानक मुलाकात हो गई, अब जाता हूँ बन्धु।

भेलीगढ़ बहुत-से बगीचोंके बाद बड़ा सूखी जगह है। अन्यमनस्क होता तो
भी पार कर जाता, किन्तु सहसा अनेक दिनोंकी भूली हुई-सी परन्तु परिचित
बहुत ही सुन्दर मीठी गन्धसे चौंक पड़ा—इधर उधर निहारते ही नजर
गई,—वाह! यह तो हमारी उसी यशोदा वैष्णवीके आसक्त फूलोंकी गन्ध
बचपनमें इनके लिए यशोदाकी कितनी आरजू-मिन्नत नहीं की थी! इस
तेका पेड़ इधर नहीं होता, क्या मालूम कहाँसे लाकर उसने इसको अपने
नके एक कोनेमें लगाया था। टेढ़ी-मेढ़ी और गाँठोंवाली, बूढ़े आदमी
उसकी शकल थी। उस दिनकी तरह आज भी उसकी वही एकमात्र सर्वांग
ता है और उसके कुछ थोड़े-से हरे पत्तोंके बीच बैठे ही थोड़से फूल सफेद
हैं। इसके नीचे यशोदाके स्वामीकी समाधि थी। वैष्णव ठाकुरको हमने
देखा था, हमारे जन्मके पहले वे स्वर्गधाम सिधार चुके थे। उनकी छोटी
मनिहारीकी दूकान तब उनकी विधवा ही चलाती थी। दूकान तो नहीं थी,
एक डलियामें यशोदा छोटी-छोटी आरसियाँ, कंघियाँ, नारे, महावर, लेसके
ते, काँचके खिलौने, टीनकी बंशी इत्यादि भरकर घर-घर घूमकर बेचा करती
। इसके सिवाय उसके पास मछली पकड़नेका सामान भी रहता था। कटिया
, एक-एक दो-दो पैसेकी डोरियाँ और काँटे। इन्हें खरीदने जब हम उसके
जाते, तो बहुत धूम मचाते। इस आसक्तके पेड़की एक सूखी डालपर बनाये
र मिट्टीके थामेपर यशोदा सन्ध्याके समय दीपक जलाती थी और फूलोंके लिए
द्द करनेपर वह हमें समाधि दिखाकर कहती, "नहीं बच्चा, ये मेरे देवताके
हैं तोड़नेपर नाराज होंगे।"

वैष्णवी अब नहीं है, पता नहीं कि वह कब मर गई,—शायद बहुत दिन
हीं हुए। पेड़के एक किनारे और एक छोटे चबूतरेपर नजर पड़ी, शायद यह
शोदाकी समाधि होगी। बहुत सम्भव है कि सुदीर्घ प्रतीक्षाके बाद उसने भी
के पास ही अपने लिए थोड़ा-सा स्थान कर लिया हो। लूपकी बुनी हुई
ज्यादा उर्वर हो जानेके कारण विस्तृत हो गये हैं और पेड़को चम-

गीदड़ोंने छा लिया है,—सँभालनेवाला कोई नहीं है।

रास्ता छोड़कर सेमलके उस परिचित बूढ़े पेड़के पास आकर खड़ा हो गया। देखा कि घाटको ढकनेवाला वह दीपक नीचे पड़ा है और उसके ऊपरकी वह सूखी डाल आज भी वैसी ही हैंकसे झाँकी हो रही है।

मझोदाका कोठा-सा घर अभीतक पूरी तरह ढहा नहीं है,—टूटा-फिटमरा और जीर्ण-शीर्ण फूसका छप्पर दरवाजेको ढककर औंधा पड़ा हुआ आज भी प्राणपणसे रक्षा कर रहा है।

बीस-पच्चीस वर्ष पहलेकी न जाने कितनी बातें याद आ गई,—बाँसोंके घेरेसे घिरा हुआ लिपा-पुता मझोदाका आँगन, और वही छोटा-सा कमरा। उसकी आज यह दशा है! पर इससे भी बहुत ज्यादा एक करुण वस्तु अब भी देखनेको बाकी थी। अकस्मात् देखा कि उसी घरके टूटे छप्परके नीचेसे एक कंकाल-शेष कुत्ता बाहर निकला। मेरे पैरोंकी आवाजसे चकित होकर शायद उसने मेरे अनधिकार-प्रवेशका प्रतिवाद करना चाहा। पर उसकी आवाज इतनी क्षीण थी कि उसके मुँहमें ही रह गई।

कहा, "क्यों रे, मैंने अपराध तो नहीं किया?"

उसने मेरे मुँहकी ओर देखकर न जाने क्या सोचा और फिर पूँछ हिलाना शुरू कर दिया। मैंने कहा, "अब भी तू यहीं है?"

उसने प्रत्युत्तरमें सिर्फ दोनों मलिन आँखें खोलकर अत्यन्त निरुपायकी तरह मेरे मुँहकी तरफ देखा।

इसमें शक नहीं कि यह मझोदाका कुत्ता है। फुन्दार रंगीन किनारीका गल-पट्टा अब भी उसके गलेमें है। मैं समझ ही न सका कि उस निःसन्तान दम्पतीके एकान्त स्नेहका धन यह कुत्ता आज भी इस परित्यक्त कुटीमें क्या खाकर जीवित है। मुहल्लेमें जाकर छीन-झपट कर खानेका जोर तो उसमें है नहीं, आदत भी नहीं है, और स्वजातिके साथ मेल रखनेकी शिक्षा भी उसे नहीं मिली। शायद भूखा और अधभूखा रहकर यहीं पड़ा-पड़ा बेचारा शायद उसीकी राह देख रहा है, जो उसको एक दिन प्यार करती थी। शायद सोचता है कि कहीं-न-कहीं गई है, एक-न-एक दिन लौटकर आयेगी ही। मन ही मन कहा, यही क्या ऐसा है? इस मरणशीलको बिल्कुल ही सीध सान्त्वना संसारमें क्या इतना आसान है?

जानेके पहले कमरकी देहलीसे एक बार भीतरकी ओर दृष्टि डाली। अन्धकारमें और तो कुछ भी दिखाई न पड़ा, दीवारपर चिपकी हुई कुछ तसवीरें नजर आ गईं। राजा-रानीसे लेकर नाना जातिके देवी-देवताओंतककी तसवीरें हैं। कपड़ेके नये थानोंमेंसे निकाल-निकालकर यशोदा इन्हें संग्रह करती थी और इस तरह वह अपना तसवीरोंका शौक मिटाती थी। याद आया कि बचपनमें इनको अनेक बार मुग्ध दृष्टिसे देखा है। बारिशसे भीगकर, दीवारकी मिट्टीसे बिगड़कर, ये आज भी किसी तरह टिकी हुई हैं।

और पड़ी हुई है पासके ही ताकपर वैसी ही दुर्दशामें वह रंगीन हँड़िया जिसे देखते ही मुझे वह बात याद आ गई कि इसमें उसके आमसत्त्वके बंडल रहते थे। और भी इधर उधर क्या-क्या पड़ा था, अन्धकारमें पता नहीं पड़ा। ये सब चीजें मिलकर प्राणपणसे मुझे न जाने किस बातका इंगित करने लगीं, पर उस भाषासे मैं अनजान था। कुछ ऐसा लगा कि मकानके एक कोनेमें मानों किसी मृत शिशुका खिलौना-घर है। घर-गृहस्थीकी नाना टूटी-फूटी चीजोंसे यत्नपूर्वक सजाये हुए इस क्षुद्र संसारको वह छोड़ गया है। आज उन चीजोंका आदर नहीं है, प्रयोजन भी नहीं, आँचलसे बार-बार झाड़ने-पोंछनेकी जरूरत भी नहीं— पड़ा हुआ है सिर्फ जंजाल, इसलिए कि किसीने उसे मुक्त नहीं किया है।

वह कुत्ता कुछ देरतक साथ-साथ आया और ठहर गया। जबतक दिखाई पड़ा तबतक बेचारा इस ओर टकटकी लगाये खड़ा देखता रहा। उसके साथका यह परिचय प्रथम भी है, और अन्तिम भी। फिर भी वह कुछ आगे बढ़कर विदा देने आया है। मैं जा रहा हूँ किसी बन्धुहीन, लक्ष्यहीन प्रवासके लिए, और वह लौट जायगा अपने अन्धकारपूर्ण निराले टूटे हुए मकानमें। दोनोंके ही संसारमें ऐसा कोई नहीं है जो राह देखते हुए प्रतीक्षा कर रहा हो!

बगीचेके पार हो जानेसे वह आँखोंसे ओझल हो गया, परन्तु पाँच ही मिनटके इस अभागे साथीके लिए हृदय भीतर ही भीतर रो उठा, ऐसी दशा हो गई कि आँखोंके आँसू न रोक सका।

चलते-चलते सोच रहा था कि ऐसा क्यों होता है! और किसी दिन यह सब देखता तो शायद कुछ विशेष खयाल न आता, पर आज मेरा हृदयाकाश मेघोंके भारसे भारातुर हो रहा है—जो उन लोगोंके सुखकी हवाके आघातोंमें बरस पड़ना चाहते हैं।

स्टेशन पहुँच गया। भाग्य अच्छा था, उसी वक्त गाड़ी मिल गई, कलकत्ते के निवासस्थानपर पहुँचनेतक ज्यादा रात न होगी। टिकट खरीद कर बैठ गया और उसने सीटी देकर यात्रा शुरू कर दी।—स्टेशनके प्रति उसे मोह नहीं, सजल आँखोंसे बार-बार घूमकर देखनेकी उसे जरूरत नहीं।

फिर वही याद आई,—मनुष्यके जीवनमें दस दिन कितने-से हैं, फिर भी कितने बड़े हैं।

कल सुबह कमललता अकेली ही फूल तोड़ने जायगी और उसके बाद उसकी सारे दिन चलनेवाली सेवा-सेवा शुरू हो जायगी! क्या मालूम, दस दिनके साथी नये गुसाईंको भूलनेमें उसे कितने दिन लगें।

उस दिन उसने कहा था, 'सुनते ही तो हैं गुसाईं। किसके पाद-पद्मोंपर अपने आपको निवेदन कर दिया है मैं चालीका कभी परिणाम नहीं करेंगे।' तो, यही हो। ऐसा ही हो।

बचपनसे ही मेरे जीवनका कोई लक्ष्य नहीं है, बलपूर्वक किसी भी चीजकी कामना करना मैं नहीं जानता,—सुख-दुःख-सम्बन्धी मेरी धारणा भी अस्पष्ट है। तथापि इतनी उम्र कट गई सिर्फ दूसरोंका अनुकरण करनेमें,—दूसरोंके विश्वासपर और दूसरोंका हुक्म तामील करनेमें। इसलिए कोई भी काम मेरे द्वारा अच्छी तरह निर्वाहित नहीं होता। दुविधासे दुर्बल मेरे सारे संकल्प और सारे उद्योग थोड़े ही दूर चलते हैं और ठोकर खाकर रास्तेमें ही चूर-चूर हो जाते हैं; सब लोग कहने लगते हैं, 'आलसी है, किसी कामका नहीं।' शायद इसीलिए उन निकम्मे वैरागियोंके अखाड़ेमें ही मेरा अन्तरवासी अपरिचित बन्धु अस्फुट छाया रूपमें मुझे दर्शन दे गया, मैंने बार-बार नाराज होकर मुँह फिरा लिया और उसने बार-बार स्निग्ध हास्यसे हाथ हिला हिलाकर न जाने क्या इशारा किया।

और वह वैष्णवी कमललता! उसका जीवन मानो प्राचीन वैष्णव कवि चित्तोंके आँसुओंका गीत है। छन्दोंमें मेल नहीं, व्याकरणमें भूलें हैं, भाषामें भी अनेक त्रुटियाँ हैं, पर उसका विचार तो उस ओरसे नहीं किया जा सकता। मानो उसीका दिया हुआ कीर्तनका सुर है,—जिसके मर्ममें पैठता है, उसे ही उसका पता चलता है। वह मानो गोधूलिके आकाशकी रंगबिरंगी तसवीर है। उसका नाम नहीं, संज्ञा नहीं—कलाशास्त्रके सूत्रोंके अनुसार उसका परिचय देना भी विडम्बना है।

मुझसे कहा था, 'रुको न गुसाईं, पहाड़ी पथ है, गीत गाते गाते पथ ही पथपर दोनोंके दिन कट जायेंगे।'

उसे कहनेमें तो कुछ नहीं लगा, पर वह मुझे खटका। मेरा नाम रक्खा है उसने 'नये गुसाईं।' कहा, 'असल नाम तो मैं मुँहसे निकाल नहीं सकती गुसाईं।' उसका विश्वास है कि मैं उसके विगत-जीवनका बन्धु हूँ। मुझसे उसे डर नहीं, मेरे पास रहते हुए उसकी साधनामें विघ्न नहीं आ सकता। वैरागी द्वारिकादासकी वह शिष्या है, मालूम नहीं उन्होंने उसे किस साधनासे सिद्धि लाभ करनेका मन्त्र दिया है।

एकाएक राजलक्ष्मीकी याद आ गई और उसकी उस कठोर चिट्ठीका खयाल आ गया जो स्नेह और स्वार्थके मिश्रणसे भरी हुई थी। तो भी जानता हूँ कि इस जीवनके पूर्व विरामपर वह मेरे लिए शेष हो गई है। शायद यह अच्छा ही हुआ है। किन्तु उस शून्यताको भरनेके लिए क्या कहीं भी कोई है? खिड़कीके बाहर अन्धकारको ताकता हुआ चुपचाप बैठा रहा। एक-एक करके न जाने कितनी बातें और कितनी घटनाएँ याद आ गईं। शिकारके आयोजनके लिए खड़ा किया हुआ कुमार साहबका वह तम्बू, वह दल-बल और अनेक वर्षोंके बाद प्रवासमें उस प्रथम साक्षात्के दिनकी दीप्त काली आँखोंमें उसकी वह विस्मय-विमुग्ध दृष्टि! किसे जानता था कि मर गई है, किसे पहचान नहीं सका,—उस दिन श्मशानके पथपर उसीने कितनी व्यग्र-व्याकुल विनती की थी और अन्तमें क्रुद्ध निराशाका वह कैसा तीव्र अभिमान था! रास्ता रोककर कहा था, 'जाना चाहते हो इसीलिए क्या मैं तुम्हें जाने दूँगी! देखूँ, कैसे जाते हो! इस विदेशमें यदि कोई विपत्ति आ पड़ी, तो कौन देखभाल करेगा? वे या मैं?'

इस दफा उसे पहचाना। यह और ही उसका हमेशाका सच्चा परिचय है। जीवनमें यह उससे फिर कभी न छूटा,—इससे उसके निकट कभी किसीको अव्याहति नहीं मिली।

रास्तेके एक किनारे मरनेको पड़ा था कि नींद टूटनेपर आँखें खोलकर देखता हूँ कि वह सिरहाने बैठी है। तब सारी चिन्ताएँ उसे सौंपकर आँखें बन्द कर सो गया। यह भार उसका है, मेरा नहीं।

गाँवके मकानमें आकर बीमार पड़ गया। वहाँ

पूछा, "अच्छे हैं बाबूजी ?"

"हाँ तुलसीदास, अच्छा हूँ। तुम अच्छे हो ?"

प्रत्युत्तरमें फिर उसने वैसा ही नमस्कार किया। तुलसी मुँगेर जिलेका है, जातका कुर्मी, ब्राह्मण होनेके नाते वह बराबर गंगामाटीके दिनसे मेरे पैर छूकर प्रणाम करता है।

हमारी बातचीतकी आवाजसे शायद और भी एक हिन्दुस्तानी नौकरकी नींद टूट गई, रतनके जोरसे धमकानेके कारण वह बेचारा हक्का-बक्का हो गया। बिना कारण दूसरोंको डरा-धमका कर ही रतन इस मकानमें अपनी मर्यादा कायम रखता है। बोला, "बड़े आये हो, खाली सोते हो और रोटी खाते हो, तमाकूतक चिलममें लगाकर नहीं रख सकते ! जाओ जल्दी—" यह आदमी नया है, डरसे चिलम लगाने दौड़ गया। ऊपर सीढ़ीके सामनेवाला बरामदा पार करनेपर एक बहुत बड़ा कमरा मिला, गैसके उज्ज्वल प्रकाशसे आलोकित। चारों ओर कार्पेट बिछा हुआ है, उसके ऊपर फूलदार जाजम और दो-चार तकिये पड़े हैं। पास ही मेरा बहुमूल्य अत्यन्त प्रिय हुक्का और उससे थोड़ी ही दूरपर मेरे जरीके कामवाले मखमली स्लीपर सावधानीसे रखे हुए हैं। ये राजलक्ष्मीने अपने हाथसे बुने थे और परिहासमें मेरे एक जन्मदिनके अवसरपर उपहार दिये थे। पासका कमरा भी खुला हुआ है, पर उसमें कोई नहीं है। खुले दरवाजेसे एक बार झाँककर देखा कि एक ओर नई खरीदी हुई खाटपर बिछौना बिछा हुआ है और दूसरी ओर वैसी ही नई अलगनीपर सिर्फ मेरे ही कपड़े टँगे हैं। गंगामाटी जानेसे पहले ये सब तैयार हुए थे। याद भी न थे, और कभी काममें भी नहीं आये।

रतनने पुकारा, "माँ !"

"आती हूँ," कहकर राजलक्ष्मी सामने आकर खड़ी हो गई और पैरोंकी धूल लेकर प्रणाम करके बोली, "रतन, चिलम तो भर ला, तुझे भी इधर कई दिनोंसे बड़ी तकलीफ रही।"

"तकलीफ कुछ भी नहीं हुई माँ। राजी-खुशी इन्हें घर लौटा लाया, यही मेरे लिए बहुत है।" कहकर वह नीचे चला गया।

राजलक्ष्मीको नई आँखोंसे देखा। शरीरमें रूप नहीं समाता। उस दिनकी पियारी याद आ गई। इन कई वर्षोंके दुःख-शोकके आँधी-तूफानमें नहाकर मानो

उसने नया रूप धारण कर लिया है। इन चार दिनोंके इस नये मकानकी अव्यवस्थासे चकित नहीं हुआ, क्योंकि उसकी सुव्यवस्थासे पेड़-तलेका वास-स्थान भी सुन्दर हो उठता है। किन्तु राजलक्ष्मीने मानों अपने-आपको भी इन चार दिनोंमें मिटाकर फिरसे बनाया है। पहले वह बहुत गहने पहनती थी, बीचमें कम कर दिये थे,—मानों संन्यासिनी हो। लेकिन आज फिर पहने हैं,—कुछ थोड़े-से ही,—पर देखनेपर ऐसा लगा मानो वे अतिशय कीमती हैं। फिर भी धोती ज्यादा कीमती नहीं है,—मिलकी साड़ी,—आठों पहर घरमें पहननेकी। माथेमें आँचलकी किनारीके नीचेसे निकलकर छोटे-छोटे बाल गालोंके इर्द-गिर्द झूल रहे हैं। छोटे होनेके कारण ही शायद वे उसकी आज्ञा नहीं मानते। देखकर अवाक् हो रहा।

राजलक्ष्मीने कहा, "इतना क्या देख रहे हो?"

"तुमको देख रहा हूँ।"

"नई हूँ?"

"ऐसा ही तो लग रहा है।"

"और मुझे क्या लग रहा है, जानते हो?"

"नहीं।"

"इच्छा हो रही है कि रतनके चिलम तैयार कर लानेसे पहले ही अपने दोनों हाथ तुम्हारे गलेमें डाल दूँ। डाल देनेसे क्या करोगे बताओ?" कहकर हँस पड़ी। बोली, "उठाकर बाहर तो नहीं फेंक दोगे?"

मैं भी हँसी न रोक सका। कहा, "डालकर देख ही लो न! पर इतनी हँसी —कहीं भाँग तो नहीं खा ली है?"

सीढ़ियोंपर पैरोंकी आवाज सुनाई दी। बुद्धिमान् रतन जरा जोरसे पैर पटकता हुआ चढ़ रहा था। राजलक्ष्मीने हँसी दबाकर जरा धीरेसे कहा, "पहले रतनको चले जाने दो, फिर तुम्हें बताऊँगी कि भाँग खाई है या और कुछ खाया है।" पर कहते-कहते अचानक उसका गला भारी हो गया। कहा, "इस अन-जान जगहमें चार-पाँच दिनको मुझे अकेला छोड़कर तुम पूँटूकी शादी कराने गये थे! मालूम है, ये पल-दिन मेरे किस तरह कटे हैं!"

"मुझे क्या मालूम कि तुम अचानक आ जाओगी!"

"हाँ जी हाँ, अचानक तो कहोगे ही। तुम सब जानते थे।

करनेके लिए ही चले गये थे।"

रतनने आकर हुक्का दिया, बोला, "बात तय हुई है माँ, बाबूका प्रसाद पाऊँगा। रसोइयेसे खाना बनानेके लिए कह दूँ? रातके बारह बज गये हैं।"

बात सुनकर राजलक्ष्मी व्यस्त हो गई, "रसोइयेसे नहीं होगा, मैं खुद जाती हूँ। तुम मेरे सोनेके कमरेमें थोड़ी-सी जगह कर दो।"

खानेके लिए बैठते वक्त मुझे गंगामाटीके अन्तिम दिनोंकी याद बार बार आ गई। तब यही रसोइयाँ और यही रतन मेरे खानेकी देख-रेख करते थे। राजलक्ष्मीको मेरी खबर लेनेको वक्त नहीं मिलता था। पर आज इन लोगोंसे नहीं होगा,—रसोईघरमें खुद जाना होगा! पर यह उसकी प्रकृति है, यह भी विकृति। समझ गया कि कारण कुछ भी हो, किन्तु उसने अपनेको फिर पा लिया है।

खाना खतम होनेपर राजलक्ष्मीने पूछा, "पूँटूकी शादी कैसी हुई?"

"आँखोंसे नहीं देखी पर कानोंसे सुनी है, अच्छी तरह हुई।"

"आँखोंसे नहीं देखी? इतने दिनों फिर कहाँ थे?"

विवाहकी सारी घटना खोलकर सुनाई। सुनकर क्षणभरके लिए माथेपर हाथ रखते हुए उसने कहा, "तुमने तो अवाक् कर दिया! आनेके पहले पूँटूको कुछ उपहार देकर नहीं आये?"

"मेरी तरफसे वह तुम दे देना।'

राजलक्ष्मीने कहा, "तुम्हारी तरफसे क्यों, अपनी तरफसे ही लड़कीको कुछ भेज दूँगी। पर थे कहाँ, यह तो बताया ही नहीं?"

कहा, "मुरारीपुरके बाबाजीके आश्रमकी याद है?"

राजलक्ष्मी कहा, "है क्यों नहीं। वैष्णवियाँ वहाँसे तो मुहल्ले-मुहल्लेमें भीख माँगने आती थीं। बचपनकी बातें मुझे खूब याद हैं।'

"वहीं था।"

सुनकर जैसे राजलक्ष्मीके शरीरमें काँटे उठ आये, "उन्हीं वैष्णवियोंके अखाड़ेमें? अरे मेरी माँ!—क्या करते हो जी! उनके विषयमें तो भयंकर गन्दी बातें सुनी हैं!" कहकर वह सहसा उच्च कण्ठसे हँस पड़ी। अन्तमें मुँहमें आँचल दबाकर बोली, "तो तुम्हारे लिए असाध्य काम कोई नहीं है। शहरमें जो तुम्हारी मूर्ति देखी है,—माथेमें जटा, सारे शरीरमें रुद्राक्षकी माला, हाथोंमें

पीसकर,—वह मतलब—"

बात खतम न कर सकी, हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई। नाराज होकर उसे ठेल दिया। अन्तमें हिचकी लेकर मुँहमें कपड़ा ठूँसनेपर जब बड़ी मुश्किलसे हँसी रुकी तो बोली, "वैष्णवियोंने तुमसे क्या कहा? चपटी नाकोंवाली और गोदनोंवाली वहाँ बहुत-सी रहती हैं न जी—"

फिर वैसा ही हँसीका फौवारा छूटनेवाला था, पर सतर्क कर दिया, "इस बार हँसनेपर ऐसा कड़ा दण्ड दूँगा कि कल नौकरोंको मुँह न दिखा सकोगी।"

राजलक्ष्मी डरसे दूर हट गई, और मुँहसे बोली, "वह तुम सरीखे वीर पुरुषों का काम नहीं है। खुद ही शर्मके मारे बाहर नहीं निकल सकोगे। संसारमें तुमसे ज्यादा भीरु पुरुष और कोई है!"

कहा, "तुम कुछ भी नहीं जानतीं लक्ष्मी। तुमने भीरु कहकर अवज्ञा की, पर वहाँ एक वैष्णवी मुझसे कहती थी अहंकारी—दम्भी!"

"क्यों, उसका क्या किया था?"

"कुछ भी नहीं। उसने मेरा नाम रखा था 'नये गुसाईं'। कहती थी, 'गुसाईं, तुम्हारे उदासीन वैरागी मनकी अपेक्षा अधिक दम्भी मन पृथ्वीमें और दूसरा नहीं है'।"

राजलक्ष्मीकी हँसी रुक गई, "क्या कहा उसने?"

"कहा कि इस तरहके उदासी, वैरागी-मनके मनुष्यकी अपेक्षा अधिक दम्भी व्यक्ति दुनियामें खोजनेपर भी नहीं मिलेगा। अर्थात् मैं दुर्धर्ष वीर हूँ, भीरु कतई नहीं।"

राजलक्ष्मीका चेहरा गम्भीर हो गया। परिहासकी ओर उसने ध्यान ही न दिया। बोली, "तुम्हारे उदासीन मनकी खबर उस हरामजादीने कैसे पा ली?"

"वैष्णवियोंके प्रति ऐसी अशिष्ट भाषा बहुत आपत्तिजनक है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "यह जानती हूँ। पर उसने तुम्हारा नाम तो रखा 'नये गुसाईं', और उसका अपना नाम क्या है?"

"कमललता। कोई-कोई प्रेमसे कमलीलता भी कहता है। लोग कहते हैं कि वह जादू जानती है, उसका कीर्तन सुनकर मनुष्य पागल हो जाता है और वह जो चाहती है वही दे देता है।"

"तुमने सुना है?"

"सुना है। चमत्कार!"

"उसकी उम्र क्या है?"

"जान पड़ता है तुम्हारे ही बराबर होगी। कुछ ज्यादा भी हो सकती है।"

"देखनेमें कैसी है?"

"अच्छी। कमसे कम खराब तो नहीं कही जा सकती। जिन चपटी नाकों और गोदनागुदियोंको तुमने देखा है उनके सरीखी वह नहीं है। वह भले घरकी लड़की है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मैं उसकी बात सुनकर ही समझ गई। जबतक तुम रहे तबतक तुम्हारी सेवा करती थी न?"

"हाँ। मेरी कोई शिकायत नहीं है।"

राजलक्ष्मीने एकाएक निःश्वास छोड़कर कहा, "जो करने दो। जिस साधनासे तुमको पाया जाता है उससे तो भगवान् भी मिल सकते हैं। यह वैष्णव-वैरागियोंका काम नहीं है। मैं डरने जाऊँगी न जाने कहाँकी इस कमललतासे! छिः!" कहकर वह उठी और बाहर चली गई।

मेरे मुँहसे भी एक दीर्घ निःश्वास निकल गई। शायद कुछ अन्यमन हो गया था, इस आघातसे होशमें आया। मोटे तकियेको खींच चित लेटकर हुक्का पीने लगा।

ऊपर एक छोटा-सा मकड़ा घूम-घूम कर जाल बुन रहा था। गैसके उज्ज्वल प्रकाशमें उसकी छाया बहुत बड़े बीभत्स जन्तुकी तरह मकानकी कड़ियोंपर पड़ी थी। आलोकके व्यवधानसे छाया भी कई गुनी कायाको अतिक्रम कर जाती है।

राजलक्ष्मी लौटकर मेरे ही तकियेके एक कोनेमें कोहनियोंके बल झुककर बैठ गई। हाथ लगाकर देखा कि उसके कपालके बाल भीगे हुए हैं। शायद अभी अभी आँख मुँह धोकर आई है।

प्रश्न किया, "लक्ष्मी, एकाएक इस तरह कलकत्ते क्यों चली आई?"

राजलक्ष्मीने कहा, "एकाएक कतई नहीं। उस दिनके बाद रात-दिन चौबीस घण्टे मन न जाने कैसा होने लगा कि किसी भी तरह रहा न गया, डर लगा कि कहीं हार्ट-फेल न हो जाय,—इस जन्ममें फिर कभी आँखोंसे नहीं देख सकूँ," कहकर उसने हुक्केकी नली मेरे मुँहसे निकालकर दूर फेंक दी।

कहा, "जरा ठहरो। धुएँके मारे मुँहतक दिखाई नहीं देता, ऐसा अन्धकार कर रखा है।"

हुक्केकी नली तो गई पर बदलेमें मुट्ठीमें उसका हाथ आ गया।

पूछा, "बंकू आजकल क्या करता है?"

राजलक्ष्मीने जरा म्लान हँसी हँसकर कहा, "बहुओंके आनेपर सब लड़के जो करते हैं, वही।"

"उससे ज्यादा कुछ नहीं?"

"कुछ नहीं तो नहीं करती, पर वह मुझे दुःख क्या देगा? दुःख तो सिर्फ तुम्हीं दे सकते हो। तुम लोगोंके अलावा औरोंको समझाकर दुःख और कोई भी नहीं दे सकता।"

"पर मैंने क्या कभी कोई दुःख दिया है लक्ष्मी?"

राजलक्ष्मीने अनावश्यक ही मेरे कपालमें हाथ लगाया और उसे पोंछकर कहा, "कभी नहीं। बल्कि, मैंने ही आजतक तुमको न जाने कितने दुःख दिये हैं। अपने सुखके लिए लोगोंकी नजरोंमें तुम्हें हेय बनाया, प्रतिदिन तुम्हारा अपमान होने दिया,—उसका ही दण्ड है कि अब दोनों किनारे डूबे जा रहे हैं। देख तो रहे हो न?"

हँसकर कहा, "कहाँ, नहीं तो?"

राजलक्ष्मीने कहा, "तो किसीने मन्तर पढ़कर तुम्हारी दोनों आँखोंपर पर्दा डाल दिया है।" फिर कुछ चुप रहकर कहा, "इतने पाप करके भी संसारमें मेरे जैसा भाग्य किसीका कभी देखा है? पर मेरी आशा उससे भी नहीं मिटी। न जाने कहाँसे आ जुटा धर्मका पागलपन और हाथ आई लक्ष्मी अपने पैरोंसे ठुकरा दी। गंगामाटीसे आकर भी चैतन्य नहीं हुआ, काशीसे तुम्हें अनादरके साथ विदा कर दिया।"

उसकी दोनों आँखोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे, मेरे उन्हें हाथसे पोंछ देने पर बोली, "अपने ही हाथसे विषका पौधा लगाया था, अब उसमें फल लग गये हैं। खा नहीं सकती, सो नहीं सकती, आँखोंकी नींद हराम हो गई, न जाने कैसे-कैसे असम्बद्ध डर होने लगे जिनका न सिर न पैर। गुरुदेव तब मकानमें थे, उन्होंने कोई कवच जैसा हाथमें बाँध दिया, कहा, बेटी, सुबह एक ही आसनपर बैठकर तुमको दस हजार बार इस नामका जप करना

कर क्यों सकी ! मनमें तो भाग चल रही थी, पूजापर बैठते ही दोनों आँखोंसे आँसुओंकी धार बह चली,—उसी समय आई तुम्हारी चिट्ठी और तब इतने दिनों बाद रोग पकड़ा गया।"

"किसने पकड़ा,—गुरुदेवने ? इस बार शायद उन्होंने फिर एक कवच लिख दिया ?"

"हाँ जी, लिख दिया है और उसे तुम्हारे गलेमें बाँधनेके लिए कहा है।"

"ऐसा ही करना बाँध देना, अगर तुम्हारा रोग अच्छा हो जाय।'

राजलक्ष्मीने कहा, "उस चिट्ठीको लेकर मेरे दो दिन कटे। कैसे कटे यह नहीं जानती। रतनको बुलाकर उसके हाथों चिट्ठीका जवाब भेज दिया। गंगा स्नानकर अन्नपूर्णाके मन्दिरमें खड़े होकर कहा, 'माँ, ऐसा करो कि समय रहते उनके हाथमें चिट्ठी पहुँच जाय, मुझे आत्महत्या न करनी पड़े'।" मेरे मुँहकी ओर देखकर कहा, "मुझे इस तरह क्यों बाँधा था बोलो ?"

लज्जासे इस जिज्ञासाका उत्तर न दे सका। इसके बाद कहा, "तुम औरतोंके द्वारा ही यह सम्भव है। हम यह सोच भी नहीं सकते, समझ भी नहीं सकते।"

"स्वीकार करते हो ?"

"हाँ।"

राजलक्ष्मीने फिर एक बार क्षणभरके लिए मेरी ओर देखकर कहा, "वाकई विश्वास करते हो कि यह हम लोगोंके लिए ही सम्भव है, पुरुष यथार्थमें ऐसा नहीं कर सकते ?"

कुछ देरतक दोनों खामोश रहे। राजलक्ष्मीने कहा, "मन्दिरसे बाहर निकल कर देखा कि हमारा पटनेका कम्मन साहू खड़ा है। मेरे हाथ वह बनारसी कपड़े बेचा करता था। बूढ़ा मुझे बहुत चाहता था और मुझे बेटी कहकर पुकारता था। आश्चर्यान्वित हो बोला, 'बेटी, आप यहाँ ?' मुझे मालूम था कि कलकत्तेमें उसकी दूकान है। कहा, 'साहूजी, मैं कलकत्ते जाऊँगी, मेरे लिए एक मकान ठीक कर सकते हो ?' "

उसने कहा, " 'कर सकता हूँ। बंगाली मुहल्लेमें मेरा अपना एक मकान है, परसोंमें खरीदा था। चाहो तो उतने ही रुपयोंमें वह मकान दे सकता हूँ।' साहू धर्म-भीरु व्यक्ति है, उसपर मेरा विश्वास था, राजी हो गई। घरसे बुलाकर रुपये दे दिये और उसने रसीद लिख कर दे दी। उसीके आदमियोंने यह सब

चीजें खरीद ली हैं। छः-सात दिन बाद ही रतनको साथ लेकर यहाँ चली आई। मन ही मन कहा, 'माँ अन्नपूर्णा, तुमने मुझपर दया की है, नहीं तो यह सुयोग कभी न मिलता। मुझे उनके दर्शन होंगे ही' और आखिर दर्शन हो गये।"

कहा, "पर मुझे तो जल्दी ही बर्मा जाना होगा लक्ष्मी।"

"राजलक्ष्मीने कहा, "ठीक है, तो चलो न। वहाँ अभया है, सारे देशमें बुद्धदेवके बड़े-बड़े मन्दिर हैं,—उन सबको देख आऊँगी।"

कहा, "पर वह म्लेच्छ देश है लक्ष्मी, शुचि-वायुग्रस्त लोगोंके आचार विचार वहाँ नहीं चलते। उस देशमें तुम कैसे जाओगी?"

राजलक्ष्मीने मेरे कानपर मुँह रखकर धीरे-धीरे न जाने क्या कहा, अच्छी तरहसे समझमें नहीं आया। कहा "जरा जोरसे कहो तो सुनाई दे।"

राजलक्ष्मीने कहा, "नहीं।"

इसके बाद वह बहुत समयसे उसी तरह पड़ी रही। सिर्फ उसके उष्ण घन निःश्वास मेरे गलेपर और मेरे गालोंपर आकर पड़ने लगे।

१०

"अजी, उठो। कपड़े बदलकर हाथ-मुँह धो लो। रतन चाय लिये खड़ा है।"

मेरा उत्तर न पानेपर राजलक्ष्मीने फिर पुकारा, "कितनी देर हो गई है,—अब कबतक सोओगे?"

करवट बदलकर मैंने अस्पष्ट कण्ठसे कहा, "तुमने सोने ही कब दिया! अभी-अभी तो सोया हूँ।"

इतनेमें कानोंमें चायकी कटोरीकी आवाज पहुँची जिसे रतन मेजपर रखकर शायद लज्जाके मारे भाग गया था।

राजलक्ष्मीने कहा, "छी छी, तुम कितने बेहया हो। आदमीको झूठमूठ ही अपमानित कर सकते हो! खुद रातभर कुम्भकर्णकी तरह सोये, बल्कि मैं ही जाग-कर पंखा करती रही कि गर्मीसे कहीं तुम्हारी नींद न खुल जाय और मुझसे ही अब ऐसा कहते हो! जल्दी उठो, नहीं तो ऊपर पानी डाल दूँगी।"

उठ बैठा। यद्यपि देर नहीं हुई थी तो भी सवेरा हो गया था, खिड़कियाँ खुली हुई थीं। प्रातःकालके उस स्निग्ध प्रकाशमें राजलक्ष्मीकी मरुभ्रुव —'

दिखाई दी। उसका स्नान और पूजा-पाठ समाप्त हो चुका है, गंगा-घाटके उड़िया पण्डेका लगाया हुआ सफेद और लाल चन्दनका टीका उसके मस्तकपर है, शरीरपर नई लाल बनारसी साड़ी है, पूर्वकी खिड़कीसे आई हुई थोड़ी-सी सुनहरी धूप तिरछी होकर उसके मुँहके एक तरफ पड़ रही है, उसके होठोंके कोनेमें छलछल कौतुककी दबी हुई हँसी है, फिर भी कृत्रिम क्रोधसे सिकुड़ी हुई भौंहोंके नीचे चंचल आँखोंकी दृष्टि मानों उछलते हुए आवेगसे जगमगा रही है,—देखकर आज भी आश्चर्यकी सीमा न रही। एकाएक उसने कुछ हँसकर कहा, "अच्छा बताओ तो कि कबसे इतने गौरसे क्या देख रहे हो?"

"तुम्हीं बताओ न कि क्या देख रहा हूँ?"

राजलक्ष्मीने फिर कुछ हँसकर कहा, "शायद यह देख रहे हो कि पूँटू मुझसे अधिक सुन्दर है या नहीं, या कमललता देखनेमें ज्यादा अच्छी लगती है कि नहीं,—क्यों, है न यही बात?"

"नहीं। यह बात आसानीसे कही जा सकती है कि रूपके लिहाजसे तो कोई तुम्हारे पासतक नहीं फटक सकता। इसके लिए इतने गौरसे देखनेकी आवश्यकता नहीं।"

राजलक्ष्मीने कहा "अच्छा, रूपकी बात जाने दो। पर गुणमें?"

"गुणमें? हाँ, यह मानना ही होगा कि इस विषयमें मतभेदकी सम्भावना है।"

"गुणोंके बारेमें तो सुना है कि वह कीर्तन कर सकती है।"

"हाँ, बहुत बढ़िया।"

"यह तुमने कैसे समझा कि बढ़िया है?"

"वाह—यह भी नहीं समझ सकता? विशुद्ध ताल, लय, सुर—"

राजलक्ष्मीने बाधा देकर पूछा, "हाँ जी, ताल किसे कहते हैं?"

"ताल उसे कहते हैं जो बचपनमें तुम्हारी पीठपर पड़ती थी। याद नहीं है?"

राजलक्ष्मीने कहा, "क्या कहा,—याद नहीं? खूब याद है। कल लापरवाह मौज करकर तुम्हारी निन्दा कर जाती। कमललताने सिर्फ तुम्हारे उदासीन मन का ही पता पाया है, शायद तुम्हारी वीरताकी कहानी नहीं सुनी?"

"नहीं, क्योंकि आत्मप्रशंसा खुद नहीं करनी चाहिए। वह तुम सुना देना।

पर उसका गला मीठा है, इसमें सन्देह नहीं।"

"मुझे भी सन्देह नहीं है।" कहनेके साथ ही एकाएक प्रच्छन्न कौतुकसे उसकी आँखें चमक उठीं। बोली "हाँ जी, तुम्हें वह गाना याद है? वही जिसे पाठशालाकी छुट्टी होनेपर तुम गाते थे और हम सब मुग्ध होकर सुनते थे— वही, 'कहाँ गये पाण्डवोंके प्राण रे दुर्योधन रे-ए-ए-ए-ए—'"

हँसी दबानेके लिए उसने आँचलसे मुँहको छिपा लिया, मैं भी हँस पड़ा। राजलक्ष्मीने कहा, "पर गाना बहुत भावमय है। तुम्हारे मुँहसे सुनकर मनुष्योंकी तो कौन कहे, गाय-बछड़ोंतककी आँखोंमें पानी आ जाता था।"

रतनके पैरोंकी आहट सुनाई दी। अविलम्ब ही दरवाजेके पास खड़े होकर उसने कहा, "चायका पानी फिर चढ़ा दिया है माँ, तैयार होनेमें देर नहीं लगेगी।" यह कह कमरेके अन्दर दाखिल हो उसने चायकी कटोरी उठा ली।

राजलक्ष्मीने मुझसे कहा, "अब देरी मत करो, उठो, इस बार फिर चाय ठंडी होनेपर रतन चिढ़ जायगा। वह अपमान सहन नहीं कर सकता, क्यों ठीक है न रतन?"

रतन भी जवाब देना जानता है। बोला, "माँ, आपका बरदाश्त नहीं कर सकता। पर बाबूके लिए सब-कुछ सहन कर सकता हूँ।" कहकर वह चायकी कटोरी लेकर चला गया। क्रोधमें वह राजलक्ष्मीको 'आप' कहता था, अन्यथा 'तुम' कहकर ही पुकारता था।

राजलक्ष्मीने कहा, "रतन सचमुच तुमको बहुत प्यार करता है।"

"मेरा भी यही ख्याल है।"

"हाँ। जब तुम काशीसे चले आये तो उसने झगड़ा करके मेरा काम छोड़ दिया। मैंने नाराज होकर कहा, 'रतन मैंने तेरे साथ जो सलूक किया, उसका क्या यही प्रतिफल है?' उसने कहा, 'माँ, रतन नमकहराम नहीं है। मैं भी बर्मा जा रहा हूँ, बाबूकी सेवा करके तुम्हारा ऋण चुका दूँगा।' तब उसका हाथ पकड़ लिया और अपना अपराध स्वीकार कर उसे शान्त किया।"

कुछ ठहरकर कहा, "इसके बाद तुम्हारे विवाहका निमन्त्रण-पत्र आया।"

बाधा देकर कहा, "झूठ न बोलो। तुम्हारी राय जाननेके लिए—"

इस बार उसने भी बाधा देकर कहा, "हाँ जी हाँ, मालूम है। नाराज होकर यदि विवाह करनेको लिख देती तो कर बैठे न!"

"नहीं।"

"नहीं क्या। तुम लोग सब-कुछ कर सकते हो।"

राजलक्ष्मी कहने लगी, "रतन न जाने क्या समझा, केवल यह देखा कि मेरे मुँहकी ओर देखकर उसकी आँखें छलछला आई हैं। उसके बाद जब उसे चिट्ठीका जवाब डाकमें डालनेके लिए दिया, तो बोला, 'माँ, इस चिट्ठीको डाकमें न डाल सकूँगा, इसे मैं खुद ले जाकर उनके हाथमें दूँगा।' मैंने कहा, 'व्यर्थमें रुपये खर्च करनेसे क्या फायदा होगा भइया?' रतनने हठात् आँखें पोंछकर कहा, 'माँ, मैं नहीं जानता कि क्या हुआ है, पर तुम्हें देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों पद्माका किनारा कमजोर हो गया है,—इसका कोई ठीक नहीं कि पेड़-पत्तों और मकानोंको लेकर वह कब पानीमें बह जाय। तुम्हारी दयासे मेरे अब कोई कमी नहीं है,—वह रुपये तुम दोगी तो भी मैं न ले सकूँगा। अगर विश्वनाथ बाबाने फिर उठाकर देख लिया तो मेरे गाँवकी झोंपड़ीमें अपनी दासीको थोड़ा-सा प्रसाद भेज देना, वह कृतार्थ हो जायगी।"

"नाई-बेटा कितना सयाना है!"

सुनकर राजलक्ष्मीने होठ दबाकर सिर्फ हँस दिया और कहा, "अच्छा, अब देरी मत करो जाओ।"

दोपहरको जब वह भोजन कराने बैठी तो मैंने कहा, "कल तो मामूली साड़ी पहने हुए थीं, पर आज सबेरे ही यह बनारसी साड़ीका ठाठ क्यों है, बताओ जरा?"

"तुम्हीं बताओ न!"

"मैं नहीं जानता।"

"जरूर जानते हो। इस साड़ीको पहचान सकते हो?'

"हाँ, पहचान सकता हूँ। मैंने बर्मासे खरीदकर भेजी थी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "उसी दिन मैंने विचार कर लिया था कि अपने जीवनके सबसे महान् दिनपर इसे पहनूँगी,—और कभी नहीं।"

"इसलिए आज पहनी है!"

"हाँ, इसीलिए आज पहनी है।"

हँसकर कहा, "किन्तु वह तो हो गया। अब उतार दो।" यह सुन हो

रही। कहा, "सुना है कि तुम अभी-अभी काशीघाट जाओगी?"

"राजलक्ष्मीने आश्चर्यके साथ कहा, "अम्मे! यह कैसे हो सकता है! तुम्हें खिला पिलाकर सुलानेके बाद ही तो छुट्टी मिलेगी।"

"नहीं, तब भी नहीं मिलेगी। रतन कह रहा था कि तुम्हारा खाना-पीना प्रायः बन्द-सा हो गया है। सिर्फ कल जरा-सा खाया था और आजसे फिर उप वास शुरू हो गया है। मालूम है, मैंने क्या स्थिर किया है? अबसे तुम्हें कड़े शासनमें रखूँगा। अब तुम्हारी जो खुशी होगी, न कर सकोगी।"

राजलक्ष्मीने प्रसन्न मुखसे कहा, "ऐसा हो तो जी जाऊँ महाप्रभुजी, तब खूब खाऊँगी-पीऊँगी, किसी झंझटमें न पड़ना होगा।"

"इसीलिए आज तुम काशीघाट भी न जा सकोगी।"

राजलक्ष्मीने हाथ जोड़कर कहा, "तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, सिर्फ आज भरके लिए माफ कर दो, आइन्दा पुराने जमानेके नवाब-बादशाहोंकी खरीदी हुई लौंडीकी तरह रहूँगी,—इससे अधिक तुमसे और कुछ भी न चाहूँगी।"

"अच्छा, यह तो बताओ कि इतना विनय क्यों?"

"विनय नहीं, यह सत्य है। अपनी औकात समझकर नहीं चली, और न तुम्हें मानकर ही चली, इसलिए अपराधके बाद अपराध करते-करते साहस बढ़ गया है। तुम्हारे ऊपर अब उस पहलेवाली जमीका अधिकार नहीं है,—अपने ही दोषसे खो बैठी हूँ।"

देखा कि उसकी आँखोंमें आँसू आ गये हैं। कहा, "केवल आज-भरके लिए जानेकी आज्ञा दे दो मेरे राजा, मैं माँकी आरती देख आऊँ।"

कहा, "ऐसा ही है तो कल चली जाना। तुमने तो कहा, कि कल सारी रात जागकर मेरी सेवा करती रहीं। आज तुम बहुत थकी हुई हो।"

"नहीं, मुझे जरा भी थकावट नहीं है। केवल आज ही नहीं, कितनी ही बार बीमारीके मौकोंपर देखा है कि लगातार रातोंके बाद रात जागनेपर भी तुम्हारी सेवामें मुझे कोई कष्ट प्रतीत नहीं हुआ। न मालूम मेरी समस्त थकावटको कौन मिटा देता है। कितने दिनसे देवी-देवताओंको भूल गई थी, किसीमें भी मन न लग सका।—मेरे राजा, आज मुझे न रोको, जानेकी आज्ञा दे दो।"

"तो चलो दोनों एक साथ चलें।"

राजलक्ष्मीकी दोनों आँखें आनन्दसे चमक उठीं। बोली, "तो चलो, पर

"यहीं। इसी मकानमें।"

"विश्वास नहीं होता, प्रमाण दो।"

"प्रमाण दूँगी तुम्हें! मुझे क्या गरज पड़ी है!"

"किन्तु क्रीत दासियाँ ऐसी बातें नहीं किया करतीं।"

"देखो, क्रोध न दिलाओ। इस तरह बार-बार 'क्रीत दासी' कहकर पुकारोगे, तो अच्छा न होगा।"

"अच्छा जाओ, तुम्हें मुक्त कर दिया। आजसे तुम स्वाधीन हुईं।"

राजलक्ष्मी फिर हँसी, बोली, "मैं कितनी स्वाधीन हूँ, सो इस वक्त मन-मनमें अनुभव कर रही हूँ। कल बातें करते-करते जब तुम सो गये, तब अपने गलेसे तुम्हारा हाथ हटाकर मैं उठ बैठी। हाथ लगाकर देखा, तुम्हारा माथा पसीनेसे तर हो रहा है, आँचलसे पसीना पोंछकर मैं पंखा लेकर बैठ गई। मन्द प्रकाशको तेज कर दिया; उस समय तुम्हारे निद्राभिभूत चेहरेकी ओर देखकर आँखें हटा ही न सकी। इसके पहले कभी नजर नहीं आया कि यह इतना सुन्दर है! अबतक क्या अन्धी थी! फिर सोचा यदि यह पाप है तो फिर पुण्यकी मुझे आवश्यकता नहीं और यदि यह अधर्म है तो भूलोकमें आज मेरी धर्मकथा; जीवनमें यदि यह मिथ्या है तो ज्ञान होनेके पूर्व ही किसके कहनेसे मैंने इन्हें वरण किया था!—अरे यह क्या, पीते क्यों नहीं! सारा दूध वैसा ही पड़ा है!"

"अब नहीं पिया जाता।"

"तो कुछ फल ले आऊँ!"

"नहीं, वह भी नहीं।"

"किन्तु कितने दुबले हो गये हो!"

"यदि दुबला हो भी गया हूँ, तो बहुत दिनोंकी अवहेलनासे। एक दिनमें ही सुधारना चाहोगी तो व्यर्थ मारा जाऊँगा।"

वेदनासे उसका चेहरा पीला पड़ गया, कहा "अब गलती न होगी। जो दण्ड मिला है उसे अब नहीं भूलूँगी। यही मेरा सबसे बड़ा लाभ है।" फिर कुछ देर मौन रहकर धीरे-धीरे कहने लगी 'प्रातःकाल होनेपर उठ आई। भाग्यसे कुम्भकर्णकी निद्रा अभी नहीं टूटी, वरना बोलचाल आज ही तो खत्म था! तब रतनको साथ लेकर गंगा नहाने गई, मालूम पड़ा, मानो माताने समस्त ताप धो डाला है। घर आकर जब पूजा करने बैठी तब जाना कि केवल

तुम अभीसे ही नहीं छोड़ आये हो, साथ ही आ गया है मेरी पूजाका मन्त्र, आ गये हैं मेरे इष्टदेवता और गुरुदेव, और आ गये हैं मेरे आषाढ़के मेघ। आज भी मेरी आँखोंसे जल बहने लगा, किन्तु वे अश्रु हृदयको मरोड़कर निचोड़े हुए नहीं थे, बल्कि वह तो आनन्दसे उमड़े हुए झरनेकी धारा थी जिसने मुझे सब ओरसे विभोर कर दिया।—जाऊँ, कुछ फल ले आऊँ? पास बैठकर अपने हाथसे खिलाकर तुम्हें फल खिलाये बहुत दिन हो गये। जाऊँ, क्यों?"

"अच्छा जाओ।"

"राजलक्ष्मी वैसी ही द्रुत गतिसे चली गई। मैंने एक बार फिर आँख खोलकर कहा, "कहाँ वह और कहाँ कमललता!"

न जाने किसने जन्मके समय हजारों नामोंमेंसे चुनकर इसका राजलक्ष्मी नाम रक्खा था!

दोनों जिस समय काशीघाटसे लौटे उस समय घड़ीमें नौ बज गये थे। राजलक्ष्मी स्नान कर और कपड़े बदलकर सहज भावसे पास आ बैठी। मैंने कहा, "राजसी पोशाक उतर गई। चलो, जान बची।"

राजलक्ष्मीने सिर हिलाकर कहा, "हाँ, वह मेरे लिए राजसी पोशाक ही है, क्योंकि मेरे राजाने जो दी है। जब मरूँ तब वही मुझे पहना देनेके लिए कहना।"

"ऐसा ही होगा। पर तुम क्या आज सारा दिन स्वप्न देखनेमें ही बिता दोगी? अब कुछ खा लो।"

"खाती हूँ।"

"मैं रतनसे कह देता हूँ कि तुम्हारा खाना रसोइयेके हाथ यहीं भिजवा दे।"

"यहीं! कैसी तुम्हारी इच्छा। लेकिन मैं तुम्हारे सामने बैठकर कैसे खाऊँगी? कभी खाते देखा है?"

"देखा तो नहीं है, पर देखनेमें बुराई क्या है?"

"भला ऐसा भी कहीं होता है! स्त्रियोंका राक्षसी खाना तुम लोगोंको हम देखने ही क्यों देंगी?"

"देखो लक्ष्मी, तुम्हारी यह चाल आज नहीं चलेगी। तुम्हें अकारण ही उपवास नहीं करने दूँगा। खाओगी नहीं तो मैं तुमसे नहीं बोलूँगा।"

"न बोलना।"

"मैं भी नहीं खाऊँगा।"

राजलक्ष्मी हँस पड़ी, बोली, "इस बार जीत गये, क्योंकि यह मैं न कह सकूँगी।"

रसोइया भोजन दे गया। फल, फूल मिष्ठान्न। नाम-मात्र भोजन कर वह बोली, "रतनने शिकायत की है कि मैं खाती नहीं हूँ, परन्तु तुम ही बताओ, मैं खाती क्योंकर? हारे हुए मुकदमेकी अपील करने कलकत्ते आई थी। रतन नित्य तुम्हारे यहाँसे वापिस आता था पर मनके मारे कुछ पूछनेका साहस ही मेरा न होता था, क्योंकि, वह कहीं यह न कह दे कि मुलाकात हुई थी पर बाबू आये नहीं। जो दुर्व्यवहार किया है, उसके कारण मेरे पास तो कहनेके लिए कुछ है नहीं।"

"कहनेकी आवश्यकता भी नहीं है। अब स्वयं स्वर्ग पर आकर, जिस प्रकार काँचपोका* तिलचट्टेको पकड़ ले जाता है, तुम भी ले जाओ।"

"तिलचट्टा कौन,—तुम?"

"यही तो समझता हूँ। ऐसा निरीह जीव संसारमें और कौन है?"

एक क्षण चुप रहकर राजलक्ष्मी बोली, "किन्तु तो भी, मन ही मन मैं जितना तुमसे डरती हूँ उतना और किसीसे नहीं।"

"यह परिहास है। पर इसका कारण पूछ सकता हूँ?"

राजलक्ष्मी फिर कुछ क्षणतक मेरी ओर देखती रही, बोली, "कारण यह है कि मैं तुम्हें भलीभाँति पहचानती हूँ। मैं जानती हूँ कि स्त्रियोंके प्रति तुम्हारी सचमुचकी आसक्ति जरा भी नहीं है, जो कुछ है वह केवल दिखानेका शिष्टाचार है। संसारमें किसीके प्रति भी तुम्हें मोह नहीं है। यथार्थ प्रयोजन भी तुम्हें उसका नहीं है। तुम्हारे 'ना' कह देनेपर किस प्रकार तुम्हें लौटाऊँगी?"

"लक्ष्मी, इसमें थोड़ी-सी भूल हो गई है। पृथ्वीकी एक वस्तुमें आज भी मेरा मोह है, और वह हो तुम। केवल यहींपर 'ना' नहीं कहा जाता। तुमने अब तक श्रीकान्तकी यही बात न जानी कि केवल इसके लिए वह दुनियाकी सब वस्तुओंको त्याग सकता है।"

"हाथ धो आऊँ," कहकर राजलक्ष्मी जल्दीसे उठकर चली गई।

दूसरे दिन दिन और दिनान्तके सब काम निबटाकर राजलक्ष्मी मेरे पास आ बैठी। कहने लगी 'कमललताकी कहानी सुनूँगी सुनाओ।' जो कुछ

* हरे रंगका एक कीड़ा।

जानता था, सब सुना दिया, केवल उसने सत्यामें कुछ-कुछ छोड़ दिया, क्योंकि उससे गलतफहमी होनेकी सम्भावना थी।

मन लगाकर आद्योपान्त सारी बातें सुनकर उसने धीरेसे कहा, "यतीनकी मृत्यु ही उसे सबसे अधिक चुभी है, उसीके दोषसे वह मारा गया।"

"उसका क्या दोष?"

"दोष कैसे नहीं है? अपना कलंक छुपानेके लिए उसीसे आत्महत्या करनेमें सहायता माँगी थी। उस दिन तो यतीन स्वीकार नहीं कर सका, किन्तु एक दिन अपना कलंक छिपानेके लिए उसे भी वही मार्ग सबसे पहले नजर आया। ऐसा ही होता है, इसीलिए पापमें सहायताके लिए किसी मित्रको नहीं बुलाना चाहिए। इससे एकका प्रायश्चित दूसरेके गले पड़ जाता है।—वह स्वयं तो बच गई, किन्तु उसके स्नेहका धन मर गया।"

'युक्ति कुछ समझमें नहीं आई, लक्ष्मी।"

"तुम कैसे समझोगे? समझा है कमललताने और तुम्हारी राजलक्ष्मीने।"

"ओः—ऐसा है?"

"नहीं तो क्या। सच कहो तो हमारा जीवन कितना-सा है, उसका क्या मूल्य है, जब हम देखती हैं तुम्हारी तरफ—"

'किन्तु कल तुमने ही तो कहा था कि मेरे मनकी सब कालिख साफ हो गई और अब कोई ग्लानि नहीं है,—तो वह क्या झूठ था?"

"झूठ ही तो था। कालिख तो मरनेपर ही छुटेगी, उससे पहले नहीं। मरना भी चाहा था, केवल तुम्हारे ही कारण न मर सकी।"

"सब मालूम है, पर तुम यदि इसे लेकर बारम्बार दुःख दोगी तो मैं इस तरह भाग जाऊँगा कि फिर ढूँढ़नेपर भी न पाओगी।"

राजलक्ष्मीने भयभीत होकर मेरा हाथ पकड़ लिया और बिल्कुल छातीके पास खिसक आई। बोली, "अब ऐसी बात कभी मुँहपर भी नहीं लाना। तुम सब-कुछ कर सकते हो, तुम्हारी निष्ठुरता कहीं भी बाधा नहीं मानती।"

"तब कहो कि अब ऐसी बात न कहोगी?"

"नहीं कहूँगी।"

"बोलो, सोचूँगी भी नहीं।"

"तुम भी कहो कि अब मुझे छोड़कर कभी नहीं जाओगे।"

"मैं तो कभी गया नहीं लक्ष्मी, और अब कभी गया हूँ तब केवल इसी लिए कि तुमने मुझे नहीं चाहा।"

"वह तुम्हारी लक्ष्मी नहीं, कोई और होगी।"

"उस किसी औरसे ही तो आज भय लगता है।"

"नहीं, अब उससे मत डरो, वह राक्षसी मर चुकी है।"

यह कहकर उसने मेरे उसी हाथको जोरसे पकड़ लिया और चुपचाप बैठी रही।

पाँच-छह मिनटतक इसी प्रकार बैठे रहनेके पश्चात् उसने दूसरी चर्चा छेड़ दी, कहा, "तुम क्या सचमुच बर्मा जाओगे?"

"हाँ, सचमुच ही जाऊँगा।"

"जाकर क्या करोगे,—नौकरी? पर हम लोग तो सिर्फ दो ही प्राणी हैं,—हम लोगोंकी आवश्यकताएँ ही कितनी हैं?"

"किन्तु उन कितनीका भी तो प्रबन्ध करना होगा?'

"वह भगवान् दे देंगे। पर तुम नौकरी नहीं करने पाओगे, यह तुम्हारे स्वभावके अनुकूल नहीं है।"

"नहीं कर सकूँगा तो वापिस चला आऊँगा।"

'जानती हूँ, वापिस तो आना ही पड़ेगा, केवल मुझको कष्ट देनेके लिए छलपूर्वक इतनी दूर ले जाना चाहते हो।"

"चाहो तो कष्ट नहीं भी करो।"

राजलक्ष्मीने एक क्रुद्ध कटाक्ष फेंक कर कहा, "देखो, चालाकी मत करो!"

मैंने कहा, "चालाकी नहीं करता, चलनेसे तुम्हें वास्तवमें कष्ट होगा। भोजन पकाना, बर्तन माँजना, घर-द्वार साफ करना, बिछौने बिछाना—"

राजलक्ष्मीने कहा "तब दाई-नौकर क्या करेंगे?"

"दाई-नौकर कहाँ? उनके लिए रुपये कहाँ हैं?"

राजलक्ष्मीने कहा, "अच्छा, न सही। तुम मुझे चाहे कितना ही भय दिखाओ, लेकिन मैं तो चलूँगी ही।"

"तो चलो। केवल मैं और तुम, कामके मारे न मिलेगा झगड़ा करनेका अवसर और न मिलेगी पूजा तथा उपवास करनेकी फुरसत।"

"न मिलने दो। मैं क्या कामसे डरती हूँ?"

"सच है, डरती नहीं हो, पर तुम कर न सकोगी। दो दिन बाद ही वापिस

आनेके लिए आपका प्रस्थान शुरू कर दोगी।"

"इसमें भी क्या कोई डर है! साथ लेकर जाऊँगी तथा साथ ही वापिस ले आऊँगी। कमसे कम तुम्हें छोड़कर तो न आना होगा।" कहकर वह एक क्षणके लिए कुछ सोचने लगी, फिर बोली, "हाँ यह ठीक रहेगा। एक छोटे-से घरमें केवल हम और तुम रहेंगे, न कोई दास होगा न दासी। जो खानेको दूँगी वही खाओगे जो पहननेको दूँगी वही पहनोगे।—नहीं! तुम देखना, मेरी आनेकी शायद इच्छा ही न होगी।"

सहसा वह मेरी गोदीमें अपना सिर रखकर लेट गई और बहुत देरतक आँखें बन्द कर निस्तब्ध पड़ी रही।

"क्या सोच रही हो!"

राजलक्ष्मी नेत्र खोलकर किंचित् मुस्कराई और बोली, "हम लोग कब चलेंगे!"

"इस मकानकी कुछ व्यवस्था कर दो, फिर जिस दिन चाहो प्रस्थान कर दो।"

उसने सिर हिलाकर स्वीकृति जताई और फिर नेत्र मूँद लिये।

"फिर क्या सोच रही हो!"

राजलक्ष्मीने हाँसते हुए कहा, "सोच रही हूँ कि एक बार मुरारीपुर नहीं जाओगे!"

"हाँ, विदेश जानेसे पूर्व एक बार उन्हें मिल आनेका वचन तो दिया था।"

"तो चलो, कल ही दोनों चलें।"

"तुम भी चलोगी!"

"क्यों, इसमें डर क्या है! तुम्हें चाहती है कमललता और उसे चाहते हैं हमारे गौहर दादा। यह शुभ खूब है!"

"यह सब तुमसे किसने कहा!"

"तुम्हींने।"

"न, मैंने नहीं कहा।"

"हाँ, तुमने कहा है, केवल तुम्हें यह ख्याल नहीं है कि कब कहा है।"

सुनकर संकोचसे व्याकुल हो उठा। कहा, "अच्छा, जो कुछ भी हो, पर तुम्हारा वहाँ जाना उचित नहीं है।"

"क्यों नहीं है ?

"उस बेचारीका मज़ाक करके तुम उसे तंग कर डालोगी।"

राजलक्ष्मीकी भृकुटी तन गई, उसने क्रोधित स्वरमें कहा, "अबतक तुम्हें मेरा यही परिचय मिला है ? मैं क्या उसे इसीलिए लज्जित करूँगी कि वह तुमसे प्रेम करती है ? तुमसे प्रेम करना क्या अपराध है ? मैं भी तो स्त्री हूँ। यह भी तो हो सकता है कि जानेपर मैं भी उसे चाहने लग जाऊँ।"

"तुम्हारे लिए कुछ भी असम्भव नहीं है लक्ष्मी। चलो, तुम भी चलो।"

"हाँ, चलो, कल सबेरेकी गाड़ीसे ही हम दोनों चल दें। तुम कोई चिन्ता न करो, इस जीवनमें मैं तुम्हें कभी दुखी न करूँगी।"

इतना कहकर वह एक तरह विमना-सी हो गई। आँखें बन्द हो गईं, ओंठ फड़कने लगे, सहसा न जाने वह कितनी दूर चली गई।

भयभीत होकर उसे हिलाकर पूछा, "यह क्या ?"

राजलक्ष्मी आँखें खोलकर किंचित् मुसकराई और बोली, "क्यों, कुछ भी तो नहीं!"

आज उसकी यह हँसी भी न जाने मुझे कैसी लगी।

११

दूसरे दिन मेरी अनिच्छाके कारण जाना न हुआ किन्तु उसके अगले दिन किसी प्रकार भी न अटका सका और मुरारीपुरके अखाड़ेके लिए रवाना होना पड़ा। जिसके बिना एक कदम भी चलना मुश्किल है वह राजलक्ष्मीका वाहन रतन तो साथ चला ही, पर रसोईघरकी दाई लालूकी माँ भी साथ चली। कुछ जल्दी चीजें लेकर रतन सबेरेकी गाड़ीसे रवाना हो गया है। वहाँ पहुँचकर वह स्टेशनपर पहलेहीसे दो घोड़ा-गाड़ियाँ ठीक कर रक्खेगा। हम लोगोंके साथ जो सामान बाँधा गया है वह भी तो कम नहीं है।

मैंने प्रश्न किया "वहाँ क्या घरबार बसाने जा रही हो ?

राजलक्ष्मीने कहा, "वहाँ क्या दो-एक दिन भी न रहेंगे ? देशके वन-जंगल, नदी-नाले, घाट-मैदान क्या तुम अकेले ही देख आओगे ? मैं क्या उस देशकी लड़की नहीं हूँ ? मेरी क्या देखनेको इच्छा नहीं होती ?"

"मानता हूँ कि होती है, पर इतनी चीजें, इतने तरहका खाने-पीनेका

आयोजन—"

'तो तुम क्या यह कहते हो कि देवस्थानमें खाली हाथ चला जाय ! और तुम्हें तो कुछ सच होना नहीं है, फिर इतनी चिन्ता क्यों !"

चिन्ता तो बहुत थी, पर कहता किससे ! उससे अधिक भय इसी बातका *था कि यह वैष्णवी-वैरागियोंका झुण्ड हुआ देवताका प्रसाद माथेपर तो भलेसे* चढ़ा लेगी किन्तु मुँहमें न डालेगी। और कौन जानता है कि वहाँ जाकर किस बहाने उपवास आरम्भ कर देगी या भोजन पकाने बैठ जायगी। केवल एक भरोसा है। राजलक्ष्मीका मन सचमुच ही बड़ा है। अपनेसे गले पड़कर वह किसीको चोट नहीं पहुँचा सकती। यदि उसे कुछ ऐसा करना भी हुआ तो प्रसन्न-मुख हास-परिहासके साथ इस प्रकार करेगी कि मुझे और रतनको छोड़ कोई समझ भी नहीं पायगा।

राजलक्ष्मीके शारीरिक गठनमें बाहुल्य-भार कभी नहीं हुआ और फिर संयम तथा उपवासने उसे मानो कृशताकी एक दीप्ति दान की है। विशेषकर आज उसकी साज-सज्जा कुछ विचित्र ही है। भोर होनेके पहले ही वह स्नान कर आई है, गंगाघाटके उड़िया पण्डेका यत्नपूर्वक लगाया हुआ तिलक उसके मस्तकपर है, कत्थई रंगकी फूल-पत्ती तथा बेल-बूटोंसे चित्रित वृन्दावनी साड़ी पहन रक्खी है, शरीरपर वे ही कुछ थोड़े-से गहने हैं, मुखपर स्निग्ध प्रसन्नता है, और अपने काममें तल्लीन है। कल इसने आईने लगी दो आलमारियाँ खरीद डाली थीं, आज जानेसे पूर्व उनमें जल्दी-जल्दी न जाने क्या रख रही है। काम करते-करते उसके हाथोंके कड़ोंकी धार मध्यमें की आँखें बीच-बीचमें चमक उठती हैं, गलेमें पड़े हुए हीरे-पन्नेके जड़ाऊ हारकी विभिन्न वर्णच्छटा किनारीके आस-पासमेंसे झलक उठती है। उसके कानोंके पाससे भी एक नीली आभा निकल रही है। मेजपर चाय पीने बैठकर मैं एकटक उसी ओर देख रहा था। उसमें एक दोष था, घरमें वह ब्लाउज नहीं पहनती थी, अतएव जरा असावधान होनेपर उसकी गर्दन तथा बाहुका बहुत-सा अंश अनावृत हो पड़ता था। यदि इसके लिए जरा कहा जाय तो वह हँसकर कहती,—बाबा, मुझसे यह सब नहीं हो सकता। मैं ठहरी गाँवकी औरत, मुझे दिन-रात बीबियाना ठाठ नहीं सुहाता। अर्थात्, हम शुचि-वायुग्रस्त जीवोंके लिए कपड़ोंका ज्यादा पहनना काम है। आलमारीका पल्ला बन्द करती हुए एकाएक आईनेमें

मुझपर पड़ गई। धीरेसे साड़ी सँभालकर वह मेरी ओर घूमकर खड़ी हो गई और नाराज होकर बोली, "फिर भी ताक रहे हो! आखिर बार-बार मुझे इतना क्यों ताक रहे हो, कहो तो?" और कहकर ही वह हँस पड़ी।

मैं भी हँसा, बोला, "सोच रहा था कि विधाताको फरमाइश देकर न जाने किसने तुम्हें गढ़वाया था।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तुमने। नहीं तो दुनियामें ऐसी निराली पसन्दगी और किसकी हो सकती है! मेरे आनेके पाँच-छह दिन पूर्व तुम आये थे, और आते समय उन्हें बयाना दे आये थे। याद नहीं है क्या?"

"नहीं, किन्तु तुमने कैसे जाना?"

"आचमन करते समय विधाताने ही कानमें कह दिया था। पर तुम चाय पी चुके? देर करोगे तो आज भी जाना नहीं होगा।"

"न सही।"

"पर बतलाओ, क्यों?"

"वहाँ भीड़में शायद तुम्हें ढूँढ़ न पाऊँगा।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मुझे तो तुम पा लोगे, पर मैं तुम्हें खोजकर पा जाऊँ तो गनीमत है।"

मैंने कहा, "यह भी तो ठीक नहीं है।"

उसने हँसकर कहा, "नहीं, ऐसा नहीं होगा। तुम्हें पकड़ना ही पड़ेगा। सुना है कि 'नये गुसाईं'का वहाँ एक अलग कमरा है, मैं जाते ही उसका कुन्दा तोड़कर रख दूँगी। कोई भय नहीं ढूँढ़ना नहीं होगा,—चाबी तुम्हें यों ही मिल जायगी।"

"तो चलो।"

जिस समय हम लोग मठमें पहुँचे उस समय देवताकी मध्याह्नकालीन पूजा समाप्त हो चुकी थी। बिना बुलाये, बिना सूचनाके अकस्मात् इतने प्राणी हाजिर हो गये किन्तु फिर भी, उन लोगोंको इतनी खुशी हुई कि कह नहीं सकता। बड़े गुसाईं आश्रममें नहीं हैं, गुरुदेवसे मिलने फिर नवद्वीप गये हैं, किन्तु इस बीच ही दो वैरागियोंने आकर मेरे कमरेमें अड्डा जमा किया है।

कमललता, पद्मा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा और भी कइयोंने आकर हम लोगोंकी सादर अभ्यर्थना की। कमललताने भरे गलेसे कहा, "नये गुसाईं, तुम इतनी

कभी फिर हम लोगोंको दिखाई दोगे, ऐसी आशा नहीं की थी।"

राजलक्ष्मीने इस प्रकार बातचीत की, मानो न जाने कबका परिचय है। कहा "कमललता दीदी, इन कई दिनोंसे इनकी जबानपर केवल तुम्हारी ही कथा थी। इससे पहले ही आना चाहते थे, पर मेरे कारण ही ऐसा न हो सका। इसमें मेरा ही दोष है।"

कमललताका मुख कुछ क्षणके लिए लाल हो गया, पद्मा हँस पड़ी और उसने आँखें फिरा लीं।

राजलक्ष्मीकी वेश-भूषा तथा चेहरेसे सभीने उसे भद्र परिवारका समझा, केवल मेरे साथ उसका क्या सम्बन्ध है, यह निस्सन्देह कोई न जान सका। परिचयके लिए सभी उत्सुक हो रहे। राजलक्ष्मीकी आँखोंसे कुछ भी नहीं छिपा। उसने कहा, "कमललता दीदी, मुझे पहिचान नहीं सकीं?"

कमललताने सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

"वृन्दावनमें कभी नहीं देखा?"

कमललता भी निर्बोध नहीं है, उसने परिहास समझ लिया और हँसकर कहा, "याद तो नहीं पड़ रहा बहन।"

राजलक्ष्मीने कहा, "याद न पड़ना ही अच्छा है दीदी। मैं इसी देशकी लड़की हूँ, वृन्दावन कभी नहीं गई," कहकर वह हँस पड़ी। फिर लक्ष्मी, सरस्वती तथा अन्य सबके चले जानेके बाद मुझे दिखाकर कहा, "हम लोग एक ही गाँवमें एक ही गुरुकी पाठशालामें पढ़ते थे, दोनोंमें ऐसा प्रेम था जैसे भाई-बहन हों। मैं मुहल्लेके रिश्तेसे 'दादा' कहकर पुकारती थी और ये मुझे बहनकी तरह प्यार करते। शरीरपर कभी हाथतक नहीं लगाया।" फिर मेरी ओर देखकर कहा, "क्योंजी, जो कुछ कह रही हूँ सच है न?"

पद्मा खुश होकर बोली, "इसीसे तुम दोनों देखनेमें एक-से लगते हो। दोनों ही ऊँचे और पतले, केवल तुम गोरी हो और नये गुसाईं साँवले।"

राजलक्ष्मीने गम्भीर होकर कहा, "हम लोगोंके ठीक एक-से हुए बिना काम कैसे चल सकता था?"

"अरी मैया! तुम्हें तो मेरा नाम भी मालूम है। नये गुसाईंने बता दिया है शायद?"

जाओगे ? मुझे भी साथ ले चलो। तुमसे तो कोई डर नहीं, एक शाम देखकर कोई कलंक भी न लगायेगा और यदि लगाया भी तो हर्ज क्या है, विष नीलकण्ठके गलेमें ही रह जायगा पेटमें नहीं उतरेगा।"

मैं अब चुप न रह सका। औरतोंका यह किस प्रकारका मजाक है, यह वे ही जानें। क्रोधित होकर कहा, "लड़कियोंके साथ क्यों झूठा मजाक कर रही हो ?"

राजलक्ष्मीने मुझे मानुसकी तरह कहा, "सच्चा मजाक न हो तुम्हीं बता दो। जो कुछ जानती हूँ, सरल मनसे कह रही हूँ, इससे तुम नाराज क्यों होते हो ?"

उसका गाम्भीर्य देखकर गुस्से होकर भी मैं हँस पड़ा, "हाँ, सरल मनसे कह रही हो !—कमललता, संसारमें इतनी बड़ी शैतान और चालाक तुम्हें तलाश करनेपर भी दूसरी नहीं मिलेगी। इसका कुछ-न-कुछ मतलब है, इसकी सब बातोंपर सहज ही विश्वास न कर लेना।"

राजलक्ष्मीने कहा "मिथ्या क्यों कहते हो गुसाईं ? सच तो मेरे सम्बन्धमें तुम्हारे मनमें ही कोई मतलब है।"

"हाँ, है तो।"

"पर मेरे मनमें नहीं है। मैं निष्पाप निष्कलंक हूँ।"

"हाँ, युधिष्ठिर !"

कमललता भी हँसी, किन्तु उसके बोलनेकी भंगिमापर। वह शायद ठीक ठीक कुछ समझ न सकी, सिर्फ उलझनमें पड़ गई। कारण, उस दिन भी तो किसी रमणीसे अपने सम्बन्धका मैंने कोई आभास नहीं दिया था और देता भी किस तरह ? देनेके लिए उस दिन था ही क्या ?"

"मेरा नाम राजलक्ष्मी है और ये पहलेका अंश छोड़कर कहते हैं केवल 'लक्ष्मी'। मैं इन्हें 'ए जी,' 'ओ जी,' 'सुनो,' कहकर पुकारती थी। किन्तु अब 'नये गुसाईं' कहकर पुकारनेके लिए कहा है। कहते हैं इससे तृप्ति होगी।"

पद्माने ताली बजाकर कहा, "मैं समझ गई।"

कमललताने उसे धमकाकर कहा, "मुँहजलीके भारी बुद्धि है न। बता तो, क्या समझी ?"

"निश्चय समझ गई। बताऊँ ?"

"बताना नहीं होगा, जा।' कहकर उसने स्नेहके साथ राजलक्ष्मीका हाथ

पकड़कर कहा, "बातों-ही-बातोंमें देर हो रही है बहन, धूपमें मुँह सूख गया है। जानती हूँ, कुछ खाकर भी नहीं आये। चलो, हाथ-मुँह धोकर देवताको प्रणाम करो, फिर सभी मिलकर प्रसाद पावें। तुम भी चलो गुसाईं —" कहकर वह उसका हाथ पकड़कर मन्दिरकी ओर खींच ले गई।

अबकी बार मन ही मन मुझे विपत्ति दिखाई दी, क्योंकि अब आवेगा प्रसाद ग्रहण करनेका आह्वान। खाने-पीने और छुआछूतका विचार राजलक्ष्मीके जीवनके साथ इस प्रकार ग्रथित है कि इस विषयमें सत्यासत्यका प्रश्न अवैध है। यह केवल विश्वास नहीं है, उसका स्वभाव है। इसे छोड़कर वह जी नहीं सकती। यह कोई नहीं जान सकता कि जीवनके इस एकान्त प्रयोजनकी सहज और सक्रिय सतर्कताने कितनी बार कितने संकटोंसे उसकी रक्षा की है,—अपने आप वह बतायगी नहीं और जाननेसे कोई लाभ नहीं। केवल मैं ही जानता हूँ कि एक दिन राजलक्ष्मीको बिना चाहे ही दैवात् पाया है और आज वह सभी प्राप्त वस्तुओंसे बढ़कर है। किन्तु इस समय उस बातको जाने दो।

उसकी जो कुछ कठोरता है वह केवल अपने लिए, उसमें दूसरेपर कोई अत्याचार नहीं है। वह हँसकर कहती है, 'बाबा, बहुत क्या है इतना कष्ट करनेकी! आजकलके समयमें इतना बचकर चलनेसे प्राण नहीं बच सकते।' वह जानती है कि मैं कुछ नहीं मानता। वह इसीमें खुश है कि उसकी आँखोंके सामने कुछ भयंकर घटना न हो। मेरी परोक्ष अनाचारकी कहानीसे कभी तो वह अपने दोनों कानोंको बन्द करके अपनी रक्षा करती है, या कभी गालपर हाथ देकर अवाक् होकर कहती है, मेरे दुर्भाग्यसे तुम ऐसे क्यों हुए! तुम्हारे कारण मेरा सब-कुछ गया।

किन्तु आजका मामला ठीक वैसा नहीं है। इस निर्जन मठमें जो कई प्राणी शान्तिसे रहते हैं वे सब दीक्षित वैष्णव-धर्मावलम्बी हैं। वे लोग जाति-भेद नहीं मानते और पूर्वाश्रमकी बातें कभी मनमें भी नहीं लाते। इसीसे किसी अतिथिके आनेपर वे लोग निस्संकोच श्रद्धापूर्वक प्रसाद वितरण करते हैं और आजतक किसीने भी प्रसादको अस्वीकार कर इन लोगोंका अपमान नहीं किया। किन्तु यह अप्रीतिकर काण्ड यदि आज, बिना बुलाये आकर, हमारे ही हाथ घटित हो तो दुःखकी सीमा न रहेगी,—और विशेषकर मेरे दु
यह मैं जानता था कि कमललता मुँहसे कुछ न कहेगी, किसीको

न देगी,—और शायद केवल एक बार मेरी ओर देखकर ही फिर सिर नीचा कर अन्यत्र खिसक जायगी। तब उस मूक अभियोगका क्या उत्तर होगा,—खड़ा-खड़ा मैं यही सोच रहा था। इसी समय पद्माने आकर कहा, "कब्बे नये गुसाईं, दीदी तुम्हें बुला रही हैं। हाथ-मुँह धो लिया है?"

"नहीं।"

"तो आओ, मैं पानी देती हूँ। प्रसाद दिया जा रहा है।"

"आज क्या बना है?"

"आज देवताको अन्न-भोग लगा है।"

मैंने मन ही मन कहा कि तब तो और भी खुशीकी खबर है। पूछा, "प्रसाद किस जगह दिया जा रहा है?"

पद्माने कहा, "देवताके बरामदेमें। तुम बाबाजी लोगोंके साथ बैठोगे और हम औरतें बादमें खायेंगी। आज हम लोगोंको स्वयं राजलक्ष्मी दीदी परोसेंगी।"

"वे खायेंगी नहीं?"

"नहीं, वह तो हम लोगोंकी तरह वैष्णव नहीं हैं, ब्राह्मणकी लड़की हैं। हम लोगोंका छुआ खानेसे उन्हें पाप लगता है।"

"तुम्हारी कमललता दीदी नाराज नहीं हुईं?"

"नाराज क्यों होंगी, बल्कि हँसने लगीं। राजलक्ष्मीसे दीदीने कहा, "अगले जन्ममें हम दोनों बहनें एक ही माँके पेटसे जन्म लेंगी। पहले मैं पैदा होऊँगी और तुम बाद। हम दोनों बहनें माँके हाथसे एक ही पत्तलपर खायेंगी। उस समय यदि जात नष्ट होनेकी बात कहोगी तो माँ कान मल देगी।"

सुनकर खुश होकर सोचा, चलो ठीक हुआ। राजलक्ष्मीको बात करनेमें अभी तक कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं मिला था। पूछा, "क्या जवाब दिया?"

पद्माने कहा, "राजलक्ष्मी दीदी भी सुनकर हँसने लगीं। कहने लगीं, माँ क्यों दीदी, तुम तो बड़ी बहन होगी ही, स्वयं कान मल देना। छोटीकी इतनी हिमाकत किसी तरह बर्दाश्त न करना।"

प्रत्युत्तर सुनकर चुप हो गया। मन ही मन प्रार्थना करता रहा कि कमल-लता इसके भीतरी अर्थको न समझ सके।

आकर देखा कि मेरी प्रार्थना मंजूर हो गई। कमललताने उस बातपर कोई

ध्यान नहीं दिया, बल्कि इस झमेलेको न मान कर ही इस बीच दोनोंमें खूब मेल हो गया है।

शामकी गाड़ीसे बड़े गुसाईं द्वारिकादास आ गये और उनके साथ और भी कई बाबाजी आये। सर्वांगमें छापोंका परिमाण और वैचित्र्य देखकर सन्देह न रहा कि ये भी अखाड़ेके पात्र नहीं हैं। बड़े गुसाईं मुझे देखकर बहुत खुश हुए किन्तु उनके साथियोंने मेरी कोई परवा न की। परवा करनी भी न चाहिए, क्योंकि, सुना गया, उनमेंसे एक तो ख्यातिप्राप्त कीर्तनकर्त्ता हैं और दूसरे मृदङ्ग बजानेमें उस्ताद।

प्रसाद पाना समाप्त होनेपर मैं बाहर निकल पड़ा। वही सूखी नदी और वही वन-जंगल। चारों ओर वेणु और बेंतके कुञ्ज हैं,—शरीर बचाकर चलना मुश्किल है। आसन्न सूर्यास्तके समय किनारेपर बैठकर प्रकृतिकी लीला निरीक्षण करनेका संकल्प किया, किन्तु बोध हुआ कि पास ही कहीं भरी व्याधिके 'भँटोरेके माणिक' (फूल) खिले हैं। उनकी सड़े हुए मांस जैसी बीभत्स दुर्गन्धने बैठने नहीं दिया। मन ही मन सोचा कि कवियोंको यह फूल बहुत पसन्द है। कोई इन फूलोंको ले जाकर उन्हें उपहार क्यों नहीं देता? सन्ध्या होनेके पूर्व ही लौट आया। आकर देखा कि यहाँ समारोहकी धूम है। ठाकुर-घर सजाया जा रहा है और आरतीके बाद कीर्तनकी बैठक होगी।

पद्माने कहा, "नये गुसाईं, कीर्तन सुनना तुम्हें अच्छा लगता है, आज मनोहरदास बाबाजीका गाना सुननेपर तुम अवाक् हो जाओगे। कैसा बढ़िया गाते हैं!"

वस्तुतः मेरे लिए वैष्णव कवियोंकी पदावली जैसी अन्य कोई मधुर वस्तु नहीं है। कहा, "सच, मुझे बहुत अच्छा लगता है पद्मा। बचपनमें दो-चार कोसके भीतर कहीं भी कीर्तन होनेकी खबर सुनता था तो तत्काल दौड़ जाता था, किसी भी तरह घरमें नहीं रह सकता था। समझमें आवे चाहे न आवे, लेकिन अन्ततक बैठा रहता था।—कमललता, आज तुम नहीं गाओगी?"

कमललताने कहा, "नहीं गुसाईं, आज नहीं। मेरी तो वैसी शिक्षा नहीं है, इसीलिए उनके सामने गाते हुए शर्म आती है। इसके अलावा उस बीमारीसे गला इतना खराब हो गया है कि अभीतक ठीक नहीं हुआ।"

"पर लक्ष्मी तो तुम्हारा गाना सुनने ही आई है। उसका कहना है कि मैंने

तुम्हारे विषयमें बढ़ा-चढ़ाकर कहा है।"

कमललताने लज्जासे कहा, "बढ़ा-चढ़ाकर तो जरूर कहा होगा गुसाईं।" इसके बाद स्निग्ध हास्यके साथ राजलक्ष्मीसे कहा, "तुम कुछ ख्याल न करना बहन, जो कुछ थोड़ा-बहुत आता है, वह किसी और दिन सुनाऊँगी।'

राजलक्ष्मीने प्रसन्न होकर कहा, "अच्छा दीदी, तुम्हारी जिस दिन इच्छा हो खबर भेजना, मैं खुद आकर तुम्हारा गाना सुन जाऊँगी।" मुझसे कहा, "तुम्हें कीर्तन सुनना इतना अच्छा लगता है, यह तो तुमने कभी नहीं कहा?"

उत्तर दिया "तुमसे क्यों कहता? गंगामाटीमें बीमार पड़कर जब खाटपर पड़ा था, तब इसी ओर इन्हीं मैदानोंकी ओर देखते-देखते दोपहरका वक्त कटता था, और दुपहर तो किसी तरह अकेले कटना ही न चाहती थी—"

राजलक्ष्मीने पलमें मेरे मुँहको अपने हाथसे दबा दिया। कहा "अगर और कुछ ज्यादा कहा, तो पैरोंमें सिर पटककर मर जाऊँगी।" फिर खुद ही अप्रतिभ हो हाथ हटाकर बोली, "कमललता दीदी, अपने बड़े गुसाईंजीसे कह आओ बहन, आज बाबाजी महाराजके कीर्तनके बाद ही मैं देवताको गाना सुनाऊँगी।"

कमललताने संदिग्ध कण्ठसे कहा, "लेकिन बहन, बाबाजी बड़े टीका टिप्पणी करनेवाले हैं।"

राजलक्ष्मीने कहा, "भले ही हों, भगवान्‌का नाम तो होगा।" विग्रह मूर्तियोंको हाथसे दिखाते हुए कहा, "ये शायद खुश हों। और बाबाजीओंका तो मैं उतना ख्याल नहीं करती बहन, पर मेरे ये बुलाता-देवता प्रसन्न हो जायँ तो जानमें जान आए।"

"प्रसन्न होनेपर लेकिन बख्शीश मिलेगी!"

राजलक्ष्मीने नम्र कहा "क्षमा करो गुसाईं, कहीं उनके सामने बख्शीश देने मत आ जाना। तुम्हारे लिए असम्भव कुछ भी नहीं है।"

सुनकर वैष्णवियाँ हँसने लगीं, पद्मा खुश होनेपर ताली बजाने लगती है। बोली, "मैं छ-म-ना-ग-ई।"

कमललताने उसकी तरफ स्नेहसे देखकर हँसते हुए कहा, "दूर हट कल-मुँही—चुप रह।" राजलक्ष्मीसे बोली, "इसे ले जाओ बहन, क्या मालूम अचानक क्या कर बैठे।"

देवताकी सन्ध्या-आरतीके बाद कीर्तनकी बैठक जमी। आज बहुत-से

दीपक जल रहे थे। वैष्णव-समाजमें मुरारीपुरका आश्रम नितान्त अप्रसिद्ध नहीं है, नाना स्थानोंसे कीर्तन करनेवाले वैरागियोंके दल आनेपर इस तरहका आयोजन अक्सर हुआ करता है। मठमें सब तरहके वाद्ययंत्र मौजूद रहते हैं, देखा कि वे सब हाजिर कर दिये गये हैं। एक ओर वैष्णवियाँ बैठी हैं, सब परिचित हैं, दूसरी ओर अज्ञात-कुल-शील अनेक वैरागी-मूर्तियाँ हैं, नाना उम्र और तरह तरहके चेहरोंकी। बीचमें विख्यात मनोहरदास और उनके मृदङ्गवादक साथीजन हैं। मेरे कमरेपर हालमें ही दखल करनेवाले नवयुवक बाबाजी हारमोनियममें सुर दे रहे हैं। यह प्रचार हो गया है कि कलकत्तेसे एक सम्भ्रान्त घरकी महिला आई हैं,—वे ही गाना गायेंगी। वे युवती हैं और धनवती, उनके साथ आये हैं दास-दासी, आये हैं अनेक प्रकारके खाद्य-सम्भार और कोई एक नया गुसाईं भी आया है,—वह है यहींका एक घुमक्कड़।

मनोहरदासकी कीर्तनकी भूमिका और गौर-चन्द्रिकाके* बीच राजलक्ष्मी कमललताके पास आकर बैठ गई। हठात्, बाबाजी महोदयका गला कुछ काँपकर ठिठक गया, मृदंगपर थपकी नहीं पड़ी। यह एक नितान्त दैवकी ही घटना थी। सिर्फ द्वारिकादास दीवारके सहारे जैसे आँखें बन्द किये बैठे थे बैठे ही बैठे रहे। क्या मालूम, शायद वे जान ही न पाये कि कौन आया और कौन नहीं।

राजलक्ष्मी एक नीलाम्बरी साड़ी पहनकर आई है, और उसकी महीन जरीकी किनारीके साथ नीले रंगका सामंजस्य मिलकर एक हो गया है। बाकी सब वैसा ही है, सिर्फ सुबहके उड़िया पण्डेकी लगाये हुए छापे इस बार बहुत कुछ मिट गये हैं,—जो छापे बाकी बचे हैं वे मानो आश्विनके छिन्न भिन्न मेघ हैं जो न जाने कब नील आकाशमें बिला जायँगे। यह अति स्थिर शान्त है, उसने मेरी ओर कटाक्षसे भी न ताका,—मानो पहचानती ही नहीं तो भी क्यों उसने अपनी जरा-सी हँसी दबा दी, यह वही जाने। अथवा मेरी भी भूल हो सकती है—असम्भव तो है नहीं।

आज बाबाजी महाराजका गाना जमा नहीं, पर यह उनके अपने दोषसे नहीं, लोगोंकी अधीरताके कारण। द्वारिकादासने आँखें खोल राजलक्ष्मीका आह्वान कर कहा, "दीदी, हमारे देवताको अब तुम कुछ निवेदन करके सुनाओ,

* गानेके पहले चैतन्यदेवकी वन्दना।

सुनकर हम भी मग्न हों।"

राजलक्ष्मी उसी ओर मुँह करके बैठ गई। द्वारिकादासने मृदंगकी ओर अँगुलीसे इशारा कर पूछा, "इससे कोई बाधा तो पैदा न होगी?"

राजलक्ष्मीने कहा, "नहीं।"

यह सुनकर सिर्फ वे ही नहीं, बल्कि मनोहरदास भी मन ही मन कुछ विस्मित हुए, क्योंकि एक साधारण स्त्रीसे शायद उन्होंने इतनी आशा नहीं की थी।

गाना शुरू हुआ। संकोचकी जड़ता,—अक्षमताकी दुविधा कहीं भी नहीं है,—निर्मल कण्ठ अबाध जलस्रोतकी तरह प्रवाहित होने लगा। जानता हूँ, इस विद्यामें वह सुशिक्षिता है,—यह उसकी जीविका थी, पर जानता नहीं था कि बंगालके अपने संगीतकी इस धारापर भी उसने इतने यत्नके साथ अधिकार कर रक्खा है। किसे मालूम था कि प्राचीन और आधुनिक वैष्णव कवियोंकी इतनी विभिन्न पदावलियोंको उसने कण्ठस्थ कर रक्खा होगा। सिर्फ सुर-ताल और लयमें नहीं, बल्कि वाक्यकी विशुद्धता, उच्चारणकी स्पष्टता और प्रकाश-भंगीकी मधुरतासे उसने इस धामको जिस विस्मयकी सृष्टि की वह कल्पनातीत थी। पत्थरके देवता उसके सामने हैं और दुर्वासा देवता पीछे,—कहना मुश्किल है कि उसकी यह आराधना किसको ज्यादा प्रसन्न करनेके लिए थी। क्या जाने, यह बात आज उसके मनमें थी या नहीं कि गंगामाटीके अपराधका थोड़ा-सा क्षालन भी इससे हो जाय।

वह गा रही थी—

एके पद-पंकज पंके विभूषित, कंटक जरजर भेल,
तुया दरसन आसे कछु नाहिं जानलुँ, चिरदुख अब दूर गेल।
तोहारि मुरली जब श्रवणे प्रवेशल, छोड़नु गृहसुखआस,
पंथक दुख तृणहुँ करि न गणनु कहतहिं गोविन्ददास॥

बूढ़े गुसाईंजीकी आँखोंसे अश्रुधारा बह रही थी, वे आवेग और आनन्दकी प्रेरणासे उठ खड़े हुए। मूर्तिके कण्ठसे मल्लिकाकी माला उतारकर उन्होंने राजलक्ष्मीके गलेमें पहना दी और कहा, "प्रार्थना करता हूँ, तुम्हारे सब अकल्याण दूर हो जायँ।"

राजलक्ष्मीने झुककर नमस्कार किया, फिर उठकर मेरे पास आई, सबके सामने पैरोंकी धूल माथेपर लगाई और धीरेसे कहा, "यह माला रक्खी है,

बदनामीका डर न दिखाया होता तो यहीं तुम्हारे गलेमें पहना देती।" कहकर तुरत ही वह चली गई।

गानेकी बैठक खत्म हुई। ऐसा लगा मानों आज जीवन सार्थक हो गया। क्रमशः प्रसाद-वितरणका आयोजन शुरू हुआ। अन्धकारमें उसे जरा ओटमें बुलाकर कहा, "वह माला रख दो। यहाँ नहीं, पर डेरेपर तुम्हारे हाथोंसे ही पहनूँगा।"

राजलक्ष्मीने कहा, "यहाँ ठाकुर-घरमें पहन लोगे तो फिर उतार नहीं सकोगे,—शायद इसी बातका डर है?"

"नहीं, अब डर नहीं है, वह दूर हो गया है। अगर सारी दुनिया मेरी होती तो तुम्हें आज वह भी दान कर देता।"

"ओह, कैसे दानी हो! पर वह तो तुम्हारी ही रहती जी।"

"तुम्हें आज असंख्य धन्यवाद।"

"क्यों, बताओ तो सही?"

"आज समझ गया हूँ, मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। रूप, गुण, रस, विद्या, स्नेह और सौजन्यसे परिपूर्ण जो धन मुझे बिना याचनाके ही मिला है, उसकी संसारमें तुलना नहीं है। अपनी अयोग्यताके मारे शर्म आती है लक्ष्मी,—तुम्हारे निकट मैं सचमुच बहुत छोटा हूँ।"

राजलक्ष्मीने कहा, "इस बार मैं सचमुच नाराज हो जाऊँगी।"

"तो हो जाओ। सोचता हूँ कि इस ऐश्वर्यको मैं कहाँ रखूँगा?"

"क्यों, चोरी जानेका डर है?"

"नहीं, ऐसा आदमी तो कोई नजर नहीं आता लक्ष्मी। चोरी करके तुम्हें रख छोड़ने लायक जगह वह बेचारा कहाँ पावेगा?"

राजलक्ष्मीने उत्तर नहीं दिया, मेरा हाथ खींचकर थोड़ी देरतक हृदयके समीप रख छोड़ा। फिर कहा, "अन्धकारमें ऐसे आमने-सामने खड़े रहेंगे तो लोग हँसेंगे नहीं? पर सोच रही हूँ कि रातको तुम्हें कहाँ सुलाऊँगी—जगह तो है ही नहीं।"

"रहने दो, कहीं भी सोकर रात काट दूँगा।"

"रात तो काट लोगे, पर तबीयत तो तुम्हारी अच्छी है नहीं, बीमार पड़ सकते हो।"

"तुम्हें फिक्र करनेकी जरूरत नहीं, ये लोग कुछ-न-कुछ करेंगे ही।"

राजलक्ष्मीने चिन्ताके स्वरमें कहा, "सब कुछ देख तो रही हूँ, पता नहीं क्या व्यवस्था करेंगे। पर मैं फिक्र न करूँ और ये करें!—जाओ, थोड़ा-सा खाकर सो जाना।"

लोगोंकी भीड़के कारण सोनेको सचमुच ही जगह न थी। उस रातको किसी तरह एक कुएँ बरामदेमें मसहरी लगाकर मेरे सोनेकी व्यवस्था की गई। त्रुटियों के कारण राजलक्ष्मी अशान्ति भोग करने लगी शायद रातको बीच-बीचमें आकर देख भी गई पर मेरी नींदमें कोई बाधा नहीं पड़ी।

दूसरे दिन बिछौनेसे उठनेपर देखा कि दोनों बहुत सारे फूल तोड़कर लौट आई हैं। कमललताने आज मेरे बदले राजलक्ष्मीको ही साथी बना लिया था। यह नहीं जानता था कि वहाँ अकेलेमें उनमें क्या-क्या बातें हुईं पर आज उन दोनोंका चेहरा देखकर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। मानो दोनों बहुत पुरानी सखियाँ हैं, न जाने कितने जन्मकी आत्मीय। कल दोनों एक साथ एक ही शय्यापर सोई थीं —आचारके विचारने वहाँ किसी तरहका रोड़ा नहीं अटकाया। इस बारेमें कि एक-दूसरेके हाथका नहीं खातीं कमललताने मुझसे हँसकर कहा, "तुम कुछ ख्याल न करना गुसाईं इसका प्रबन्ध हमारा हो गया है। अगली बार मैं बड़ी बहन होकर पैदा होऊँगी और इसके दोनों काम अच्छी तरहसे मल दूँगी।"

राजलक्ष्मीने कहा "इसके बदले मैंने भी एक शर्त करा ली है गुसाईं, कि अगर मैं मर जाऊँ तो इसे वैष्णवीपनसे इस्तीफा देकर तुम्हारी सेवामें नियुक्त होना पड़ेगा। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम्हारे बिना मुझे मुक्ति नहीं मिलेगी और तब भूत बनकर दीदीके सिरपर चढ़ी फिरूँगी,—उसे छिन्नवार बहूजीके कन्धेपर भूरे रेशमकी तरह,—कन्धेपर बैठे-बैठे इसके द्वारा सब काम करा लूँगी, तब छोड़ूँगी।"

कमललताने सहास्य कहा, "तुम्हें मरनेकी जरूरत नहीं बहन, तुम्हें कन्धेपर लिये मैं हर वक्त नहीं घूम सकूँगी।"

सबेरे चाय पीकर गौहरकी तलाशमें बाहर निकला। कमललताने आकर कहा "ज्यादा देर न करना गुसाईं और उन्हें भी साथ लेते आना। इधर देवताका भोग तैयार करनेके लिए एक ब्राह्मण पकड़ लाई हूँ। कैसा मजा है

है वैसा ही आदमी । उसे सहायता देने राजलक्ष्मी गाँवमें गई हैं ।"

"यह अच्छा नहीं किया । राजलक्ष्मीका खाना तो हो जायगा, पर तुम्हारे देवता उपासे रहेंगे ।"

कमललताने डरसे जीभ काटते हुए कहा, "ऐसी बात न कहो गुसाईं, उनके कानोंमें भनक पड़ जायगी तो फिर यहाँ जल भी ग्रहण नहीं करेगी ।"

हँसकर कहा, "चौबीस घण्टे भी नहीं बीते कमललता पर तुमने उसका पहचान लिया है ।" उसने भी हँसकर कहा, "हाँ गुसाईं, पहिचान लिया है । करोड़ोंमें खोजनेपर भी तुम्हें ऐसा एक भी मनुष्य नहीं मिलेगा भाई । तुम भाग्यवान् हो ।"

गौहरसे मुलाकात नहीं हुई, वह घरपर नहीं था । उसकी एक विधवा बहिन सुनाम ग्राममें रहती है । नवीनने बताया कि वहाँ न जाने कौन-सा एक नया रोग फैला है, बहुत आदमी मर रहे हैं । दरिद्र बहिन बाल-बच्चोंको लेकर आफतमें पड़ गई है, इसीलिए दवा-दारू कराने वह गया है । आज दस-बारह दिनोंसे कोई खबर नहीं है, नवीन डरके मारे मरा जा रहा है, पर कोई भी रास्ता उसे नहीं सूझता । एकाएक बड़े जोरसे चीख मारकर वह रोने लगा । बोला, "शायद मेरे बाबू अब जिन्दा नहीं हैं । मैं एक मूरख किसान हूँ, कभी गाँवसे बाहर नहीं गया, नहीं जानता कि कहाँ वह देश है और कहाँसे जाना होता है, नहीं तो सारी घर-गृहस्थी डूब जाती तो भी नवीन अबतक घर न बैठा रहता । चक्रवर्तीकी दिन-रात खुशामद करता हूँ कि महाराज, दया करो, जमीन बेचकर तुम्हें सौ रुपये देता हूँ, एक बार मुझे ले चलो, पर वह धूर्त ब्राह्मण जरा भी नहीं डिगता । पर यह भी कहे देता हूँ बाबू कि अगर मेरे मालिक मर गये तो चक्रवर्तीके मकानको आग लगाकर भस्म दूँगा और फिर उसी आगमें आत्महत्या करके मर जाऊँगा । इतने बड़े नमकहरामको मैं जिन्दा नहीं रहने दूँगा ।"

उसको सान्त्वना देकर पूछा, "जिलेका नाम जानते हो नवीन ?"

नवीनने कहा, "केवल यह सुना है कि वह गाँव नदिया जिलेके किसी कोनेमें है । स्टेशनसे बैलगाड़ीमें काफी दूर जाना होता है ।" फिर बोला, "चक्रवर्ती जानता है, पर ब्राह्मण यह भी नहीं बतलाना चाहता ।"

नवीन पुरानी चिट्ठियाँ वगैरह ढूंढ कर लाया, पर उनसे कोई पता नहीं चला । सिर्फ यह पता लगा कि दो महीने पहले विधवा बेटीकी लड़कीकी शादीके

लिए चक्रवर्तीने गौहरसे दो सौ रुपये वसूल किये थे।

मूर्ख गौहरके पास बहुत रुपया है, फलतः अधम दरिद्र उसे ठगेंगे ही—इसके लिए क्षोभ करना वृथा है, फिर भी इतनी बड़ी शैतानी बहुत कम नजर आती है।

नवीनने कहा, "उसके लिए तो बाबूका मरना ही अच्छा है, इसलिये कि बच जायगा न। उधारका एक पैसा भी नहीं चुकाना पड़ेगा।" यह असंभव नहीं है।

दोनों आदमी चक्रवर्तीके घर गये। इतना विनयी, ऐसा मीठी बातें करने वाला और ऐसा पर-दुःखकातर भद्र व्यक्ति संसारमें दुर्लभ है। पर वृद्ध हो जानेके कारण स्मृतिशक्ति इतनी क्षीण हो गई है कि उसे किसी भी तरह याद नहीं आया, यहाँतक कि किसीका नाम भी खयाल न आया। बड़ी कोशिशोंके बाद एक टाइम-टेबल लाकर उत्तर और पूर्व बंगालके रेलवे स्टेशनोंके सबके सब नाम पढ़ गया फिर भी वह स्मरण न कर सका। दुःख प्रकट करते हुए बोला, "ऐसे न जाने कितनी चीजें और रुपया-पैसा उधार ले जाते हैं बाबा, याद नहीं नहीं रहता और फिर कोई लौटाने भी नहीं आता। मन ही मन कहता हूँ कि सिरपर भगवान् हैं, वे ही इसका विचार करेंगे।"

नवीन और बर्दाश्त न कर सका, गरज उठा, "हाँ, वे ही तुम्हारा विचार करेंगे। अगर न करेंगे तो फिर मैं करूँगा!"

चक्रवर्तीने स्नेहार्द्र मधुर कण्ठसे कहा, "नवीन, झूठमूठके लिए क्यों नाराज होते हो भैया, तीन पन बीत गये, एक पन बाकी रहा है। यदि जानता तो क्या इतना भी न करता? गौहर क्या मेरे लिए पराया है? वह तो मेरे लड़केकी तरह है रे!"

नवीनने कहा, "यह सब मैं नहीं जानता। तुमसे अन्तिम बार कहता हूँ कि बाबूजीके पास ले चलना है तो ले चलो, नहीं तो जिस दिन उनकी कोई बुरी खबर मिलेगी, उस दिन या तो तुम और या मैं।"

चक्रवर्तीने प्रत्युत्तरमें कपालपर हाथ मारकर सिर्फ इतना कहा, "तकदीर नवीन, तकदीर। नहीं तो तुम मुझसे ऐसी बातें कहते।"

अतएव, फिर दोनों आदमी लौट आये। मकानके बाहर खड़े होकर मैंने आशा की कि अनुतप्त चक्रवर्ती शायद अब भी बुला ले। पर कोई उत्तर नहीं मिला, दरवाजेकी आड़से झाँककर देखा कि चक्रवर्ती बुझी हुई चिलम फूँककर

बड़े यत्नोंके साथ भुस्का तैयार कर रहा है।

गौहरका संवाद पानेका उपाय सोचते-सोचते जब मैं अखाड़ेमें पहुँचा, तब करीब तीन बजे थे। देवताके कमरेके बरामदेमें औरतोंकी भीड़ लगी हुई थी। बाबाजीओंमें कोई नहीं है, सम्भवतः सुमधुर प्रसाद-सेवाके परिश्रमसे निर्जीव हो कहीं विश्राम कर रहे हैं,—चूँकि रातके वक्त फिर एक बार प्रसादसे जूझना होगा, अतएव उसके लिए भी बल-संचय करना जरूरी है।

झाँककर देखा कि भीड़के बीच एक हाथ देखनेवाला पण्डित बैठा हुआ है—पत्रा, पोथी, खड़िया, स्लेट, पेंसिल इत्यादि गणनाके विविध उपकरण उसके पास हैं। सबसे पहले पद्माकी नजर ही मुझपर पड़ी, वह चिल्ला उठी, "नये गुसाईं आ गये!"

कमललताने कहा, "तब ही जान गई थी कि गौहर गुसाईं तुम्हें यों ही नहीं छोड़ देंगे, उन्होंने क्या खिलाया!—"

राजलक्ष्मीने उसका मुँह दबा दिया, "रहने दो दीदी, यह मत पूछो।"

कमललताने उसका हाथ हटाते हुए कहा, "धूपमें मुँह सूख गया है, रास्तेकी धूल-मिट्टी सिरपर जम गई है—नहाना-धोना हो गया क्या!"

राजलक्ष्मीने कहा, "देख तो पूछे नहीं, "इसलिए नहा-धो लेनेपर भी पता नहीं चलेगा दीदी।"

"इसमें शक नहीं कि नवीनने हर प्रकारकी कोशिश की, पर मैंने स्वीकार नहीं किया, बिना नहाये-खाये ही वापस लौट आया हूँ।"

राजलक्ष्मीने बड़े आनन्दके साथ कहा, "ज्योतिषीने मेरा हाथ देखकर कहा है कि राजरानी होऊँगी।"

"क्या दिया!"

पद्माने कह दिया, "पाँच रुपया। राजलक्ष्मी दीदीके आँचलमें बँधे थे।"

मैंने हँसकर कहा, "मुझे देतीं तो मैं उससे भी अच्छा बता सकता था।"

ज्योतिषी उड़िया ब्राह्मण था, बहुत अच्छी बंगला बोलता था,—बंगाली कहा जा सकता है। उसने भी हँसकर कहा, "नहीं महाराज, रुपयेके लिए नहीं, रुपये तो मैं बहुत कमाता हूँ। सच कहता हूँ कि ऐसा अच्छा हाथ मैंने दूसरा नहीं देखा। देखिएगा, मेरा हाथ देखना कभी झूठ नहीं होता।"

कहा, "ज्योतिषीजी, बिना हाथ देखे कुछ बता सकते हो!"

"बता सकता हूँ। एक फूलका नाम लीजिए।"

"सेमरका फूल।"

ज्योतिषीने हँसकर कहा, "सेमरका फूल ही सही। मैं बता दूँगा कि आप क्या चाहते हैं।" कहकर उसने खड़ियासे दो मिनटतक हिसाब लगाकर कहा, "आप एक खबर जानना चाहते हैं।"

"कौन-सी खबर?"

वह मेरी ओर देखकर कहने लगा, "नहीं, मामले-मुकदमेकी नहीं, आप किसी आदमीकी खबर जानना चाहते हैं।"

"कैसी खबर है, बता सकते हैं?"

"बता सकता हूँ। खबर अच्छी है, वो एक दिनमें ही मिल जायगी।" सुनकर मन ही मन विस्मित हुआ, मेरा चेहरा देखकर उसने ही यह अनुमान किया।

राजलक्ष्मीने खुश होकर कहा, "देखा न! मैं कहती हूँ कि ये बड़ी अच्छी गणना करते हैं, पर तुम लोग तो किसी बातपर विश्वास ही नहीं करना चाहते,— हँसकर उड़ा देते हो।"

कमललताने कहा, "अविश्वास किसका! नये गुसाईं, जरा अपना हाथ भी तो एक बार ज्योतिषीजीको दिखाओ।"

मेरे हाथ फैलाते ही ज्योतिषीजीने अपने हाथमें मेरा हाथ ले लिया, दो तीन मिनटतक पर्यवेक्षण किया, हिसाब लगाया, फिर कहा, "महाशय, देखता हूँ कि आपके लिए एक बहुत बड़ी विपत्ति—"

"विपत्ति! कब?"

"बहुत जल्दी। मरने-जीनेकी बात है।"

राजलक्ष्मीकी ओर ताककर देखा कि उसके चेहरेपर खून नहीं है,—वह डरसे सफेद पड़ गया है।

ज्योतिषीने मेरा हाथ छोड़कर राजलक्ष्मीसे कहा, "माँ, तुम्हारा हाथ एक बार और—"

"नहीं, मेरा हाथ अब नहीं देखना होगा, देख चुके।"

उसका तीव्र भावान्तर अत्यन्त स्पष्ट था। चतुर ज्योतिषी फौरन समझ गया कि हिसाब करनेमें उसने गलती नहीं की है। बोला, "मैं तो माँ दर्पण-मात्र हूँ, जो छाया पड़ेगी वही कहूँगा,—पर ग्रहको भी शान्त किया जा सकता है,

इसकी विधि है—सिर्फ दस-बीस रुपये खर्च करनेकी बात है।"

"तुम हमारे कलकत्तेके मकानपर आ सकते हो?"

"क्यों न आ सकूँगा माँ, के आनेपर चला जाऊँगा।"

"अच्छा।"

देखा कि लड़के कोष्ठके प्रति तो उसको पूरा विश्वास है, पर उसे प्रसन्न कर लेनेके बारेमें काफी सन्देह है।

कमललताने कहा, "चलो गुसाईं, तुम्हारी चाय तैयार कर दूँ, वक्त हो गया है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मैं बना लाती हूँ दीदी तुम जरा इनके बैठनेकी जगह ठीक कर दो और रतनसे हुक्का तैयार करनेके लिए कह दो। कलसे तो उसकी छाया भी नजर नहीं आई।"

ज्योतिषीको लेकर सब कलरव करने लगीं, हम चले आये।

दक्षिणके खुले बरामदेमें मेरी रस्सीकी खाट पड़ी है, रतनने झाड़-पोंछ दी हुक्का दिया, मुँह-हाथ धोनेको पानी ला दिया। कल सवेरेसे ही बेचारेको कामसे फुर्सत नहीं मिली है, फिर भी मालिकिन कहती हैं कि उसकी छायातक नहीं दीखी। मेरा विपत्ति-योग आरम्भ है, पर रतनसे पूछनेपर वह अवश्य कहता 'जी नहीं, विपत्ति-योग आपका नहीं—मेरा है।'

कमललता नीचे बरामदेमें बैठकर गौहरका संवाद पूछ रही थी। राजलक्ष्मी चाय ले आई, चेहरा बहुत भारी हो रहा है, सामनेके स्टूलपर प्याली रखकर बोली, "देखो, तुमसे हजार दफा कह चुकी कि वन-जंगलोंमें मत घूमा करो,—आफत आते कितनी देर लगती है। गलेमें आँचल डाल और हाथ जोड़कर तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि मेरी बात मानो।"

अबतक चाय बनाते-बनाते राजलक्ष्मीने शायद यही सोचकर स्थिर किया था। 'बहुत जल्दी' का दूसरा क्या अर्थ हो सकता है!

कमललताने आश्चर्यके साथ कहा, "वन-जंगलोंमें गुसाईं कब गये थे?"

राजलक्ष्मीने कहा, "कब गये, क्या यह मैं देखा करती हूँ दीदी! मुझे क्या दुनियामें और कोई काम नहीं है!"

मैंने कहा, "देखा कभी नहीं है, सिर्फ अन्दाज है। ज्योतिषी मेरा ... माथेमें डाल गया!"

सुनकर रतन दूसरी ओर मुँह फेर जल्दीसे चला गया।

राजलक्ष्मीने कहा, "ज्योतिषीका क्या दोष है, वह जो देखेगा वही तो बतलाएगा! संसारमें विपत्ति-योग नामकी क्या कोई चीज ही नहीं है! भाग्यमें क्या कभी कोई नहीं पड़ता!"

इन सब प्रश्नोंका उत्तर देना कठिन है। राजलक्ष्मीको कमललताने भी पहचान लिया है, वह भी चुप रही।

चायकी प्याली अपने हाथोंमें लेते ही राजलक्ष्मीने कहा, "दो-चार फल और थोड़ी-सी मिठाई ले आऊँ?"

कहा, 'नहीं।'"

"नहीं क्यों! 'नहीं' छोड़कर 'हाँ' कहना क्या भगवान्ने तुम्हें सिखाया ही नहीं?" पर मेरे मुँहकी ओर देखकर सहसा अतिशय उद्विग्न कण्ठसे प्रश्न किया, "तुम्हारी दोनों आँखें इतनी लाल क्यों दिखाई दे रही हैं? नदीके ठंडे पानीमें नहाकर तो नहीं आये हो?"

"नहीं आज स्नान ही नहीं किया।"

"और वहाँ खाया क्या?"

"कुछ भी नहीं खाया। इच्छा भी नहीं हुई।"

जाने क्या सोचकर नजदीक आकर उसने मेरे सिरपर हाथ रक्खा, फिर वही हाथ कुर्तेके भीतर मेरी छातीके नजदीक डालकर कहा, "जो सोचा था ठीक वही है। कमल दीदी, देखो तो इनका शरीर गरम मालूम नहीं पड़ रहा है?"

कमललता व्यस्त होकर उठी नहीं। बोली "जरा सा गरम हो गया तो क्या हुआ राजू—डर क्या है?"

यह नामकरण करनेमें अत्यन्त पटु है। यह नया नाम मेरे कानोंमें भी पड़ा।

राजलक्ष्मीने कहा, "इसके मानी ज्वर जो है दीदी!"

कमललताने कहा, "अगर ज्वर ही हो तो तुम लोग पानीमें नहीं आ पड़ी हो! हमारे पास आई हो, हम ही इनकी व्यवस्था कर देंगे बहन,—तुम्हें फिक्र करनेकी कोई जरूरत नहीं।"

अपनी इस असंगत व्याकुलतामें दूसरेके अविचलित शान्त कण्ठने राजलक्ष्मीको प्रकृतिस्थ कर दिया। शरमिन्दा होकर उसने कहा, "अच्छी बात है दीदी, पर एक तो यहाँ डाक्टर-वैद्य नहीं हैं, फिर हमेशा देखा है कि यदि इन्हें कुछ हो

आता है, तो जल्दी आराम नहीं होता,—बहुत भोगना पड़ता है। फिर कलमुँहा ज्योतिषी न जाने कहाँसे आकर डर दिखा गया—"

"दिखा जाने दो।"

"नहीं दीदी, मैंने देखा है कि इनकी अच्छी बातें तो नहीं फलतीं, पर अशुभ बातें ठीक निकल जाती हैं।"

कमललताने स्मित हास्यसे कहा, "डरनेकी बात नहीं राजू, इस क्षेत्रमें उनकी बात ठीक न होगी। सवेरेसे ही गुसाईं धूपमें घूमते रहे हैं, ठीक वक्तपर स्नान-आहार नहीं हुआ, शायद इसी कारण शरीर कुछ गर्म हो गया है,—कल सुबहतक नहीं रहेगा।"

लालूकी माँने आकर कहा, "माँ, रसोईघरमें ब्राह्मण-रसोइया तुम्हें बुला रहा है।"

"आती हूँ," कहकर कमललताकी तरफ कृतज्ञ दृष्टिपात करके वह चली गई।

मेरे रोगके सम्बन्धमें कमललताकी बात ही फली। ज्वर ठीक सुबह ही तो नहीं गया, पर एक-दो दिनमें ही मैं स्वस्थ हो गया। किन्तु इस घटनासे कमललताको हमारी भीतरकी बातोंका पता चल गया, शायद एक और व्यक्तिको भी पता चला—स्वयं बड़े गुसाईंजीको।

जानेके दिन कमललताने हम लोगोंको आड़में बुलाकर पूछा, "गुसाईं, तुम्हें अपनी शादीका हाल याद है?" निकट ही देखा कि एक थालीमें देवताका प्रसाद, चंदन और फूलोंकी माला रखी है।

प्रश्नका जवाब दिया राजलक्ष्मीने, कहा, "इन्हें क्या खाक मालूम होगा, मुझे याद है।"

कमललताने हँसते हुए कहा, "यह कैसी बात है कि एकको तो याद रहे और दूसरेको नहीं!"

राजलक्ष्मीने कहा, "बहुत छोटी उम्र थी न, इसीलिए। इन्हें तब भी ठीक ज्ञान न था।"

"पर उम्रमें तो यही बड़े हैं, राजू!"

"ओः बहुत बड़े हैं! कुल पाँच-छः साल। मेरी उम्र तब आठ-नौ सालकी थी। एक दिन गलेमें माला पहनाकर मैंने मन ही मन कहा, "आजसे तुम मेरे दूल्हा हुए! दूल्हा! दूल्हा!" कहकर मुझे इशारेसे दिखाते हुए कहा, "

देखता उसी वक्त मेरी मालाको नहीं रखे-रखे ला गये !"

कमललताने आश्चर्यसे पूछा, "फूलोंकी माला किस तरह ला गये ?"

मैंने कहा, "फूलोंकी माला नहीं, पके हुए करौंदोंकी माला थी। जिसे कोई नहीं ले जायगा।"

कमललता हँसने लगी। राजलक्ष्मीने कहा, "पर वहींसे मेरी दुर्गति शुरू हो गई। इन्हें खो बैठी। इसके बादकी बातें मत जानना चाही दीदी,—पर लोग जो कल्पना करते हैं वो बात भी नहीं है,—वे तो न जाने क्या-क्या सोचते हैं। इसके बाद बहुत दिनोंतक रोती-पीटती भटकती फिरी और तपस्या करती रही। आखिर भगवान्‌की दया हुई, और जैसे एक दिन खुद ही देकर एकाएक छीन लिया था, वैसे ही अकस्मात् एक दिन हाथोंहाथ लौटा भी दिया।" कहकर उसने भगवान्‌के उद्देश्यसे प्रणाम कर लिया।

कमललताने कहा, "उन्हीं भगवान्‌की माला बड़े गुसाईंने भेजी है, आज जानेके दिन तुम दोनों एक-दूसरेको पहना दो।"

राजलक्ष्मीने हाथ जोड़कर कहा, 'इनकी इच्छा ये जानें, पर इसके लिए मुझे आदेश न करो। बचपनकी वह मेरी लाल रंगकी माला आज भी आँखें बन्द करनेपर इनके उसी किशोर गलेमें झूलती हुई दिखाई देती है। भगवान्‌की दी हुई मेरी वह माला हमेशा बनी रहे दीदी।"

मैंने कहा, 'पर वह माला तो खा डाली थी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "हाँ जी देखना, इस बार मुझे भी खा डालो।" कहकर हँसते हुए उसने चन्दनकी कटोरीमें अँगुलियाँ डुबोकर मेरे मस्तकपर छाप लगा दी।

हम सब मिलनेके लिए द्वारिकादासके कमरेमें गये। वे न जाने किस ग्रन्थका पाठ करनेमें लगे हुए थे, आदरसे बोले, "आओ भाई बैठो।"

राजलक्ष्मीने जमीनपर बैठकर कहा, "बैठनेका वक्त नहीं है गुसाईं। बहुत उपद्रव किया है इसलिए जानेके पहले नमस्कार कर आपसे क्षमाकी भिक्षा माँगने आई हूँ।"

गुसाईं बोले, "हम वैरागी आदमी हैं भिक्षा ले तो सकते हैं, दे नहीं सकते। लेकिन फिर कब उपद्रव करने आओगी बताओ दीदी? आश्रममें तो आज अन्धकार हो जायगा।"

कमललताने कहा, "सच है गुसाईं —सचमुच यही मालूम होता कि आज कहीं भी बत्ती नहीं जली है, सब जगह अन्धकार हो रहा है।"

बड़े गुसाईंने कहा, "गान, आनन्द और हास-परिहासके कारण इन कई दिनोंसे ऐसा लग रहा था कि मानो हमारे चारों ओर विद्युत् दीपक जल रहे हैं—यह और कभी नहीं देखा। मैंने सुना, कमललताने तुम्हारा नाम 'नये गुसाईं' रखा है, और मैंने इन्हें नाम दिया है आनन्दमयी—"

इस बार उनके उच्छ्वासमें मुझे बाधा देनी पड़ी। कहा, "बड़े गुसाईं, विद्युत्का दीपक ही आप लोगोंकी आँखोंने देखा है, पर जिनके कर्ण-रन्ध्रोंमें उसकी कड़कड़ ध्वनि दिन-रात पहुँचती रहती है, उनसे तो जरा पूछिए! आनन्दमयीके सम्बन्धमें कमसे कम रतनकी राय—"

रतन पीछे खड़ा था, भाग गया।

राजलक्ष्मीने कहा, "इनकी बातें तुम न सुनो गुसाईं, मुझसे ये दिन-रात ईर्ष्या करते हैं।" फिर मेरी ओर देखकर कहा, "इस बार अब जाऊँगी तो इस रोगी और अरसिक आदमीको कमरेमें ताला लगाकर बन्द कर जाऊँगी, इसके मारे मुझे कहीं चैन नहीं मिलती।"

बड़े गुसाईंने कहा, "नहीं आनन्दमयी, नहीं बनेगा, छोड़कर नहीं जा सकोगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "अवश्य जा सकूँगी। बीच बीचमें मेरी ऐसी इच्छा होती है गुसाईं कि मैं जल्दी मर जाऊँ।"

बड़े गुसाईंजी बोले, "यह इच्छा तो वृन्दावनमें एक दिन उनके मुँहसे भी निकली थी बहन, पर वैसा हो नहीं सका। हाँ, आनन्दमयी, तुम्हें क्या वह बात याद नहीं है!—

सखी, दे जाऊँ मैं किसको कन्हैयालालकी सेवा।
ये जानें क्या बताओ तो—"

कहते-कहते वे मानो अन्यमनस्क हो गये। बोले, "सच्चे प्रेमके बारेमें हम लोग कितना-सा जानते हैं! केवल छलनामें अपनेको भुलाये रखते हैं। पर तुम जान सकी हो बहिन इसलिए कहता हूँ कि तुम जिस दिन यह प्रेम श्रीकृष्णको अर्पण कर दोगी, आनन्दमयी—"

सुनकर राजलक्ष्मी मानो सिहर उठी, व्यस्त होकर बाधा

"ऐसा आशीर्वाद मत दो गुसाईं, मेरे भाग्यमें ऐसा न घटे। बल्कि यह आशीर्वाद दो कि इसी तरह हँसते-खेलते इनके सामने ही एक दिन मर जाऊँ।"

कमललताने बात सँभालते हुए कहा, "भोले गुसाईं तुम्हारे प्रेमकी बात ही कह रहे हैं राजू, और कुछ नहीं।"

मैंने भी समझ लिया कि अन्य भावोंके माफिक द्वारिकादासकी विचार-धारा सहसा एक और पथपर चली गई थी, बस।

राजलक्ष्मीने शुष्क मुँहसे कहा, "एक तो यह शरीर और फिर एक-न-एक रोग साथ लगा ही रहता है,—एकांगी आदमी, किसीकी बात सुनना नहीं चाहते,—मैं रातदिन किस तरह डरी सहमी रहती हूँ दीदी, किसे बताऊँ!"

अब तो मैं मन ही मन उद्विग्न हो उठा। जाते वक्त बातों ही बातोंमें कहाँका पानी कहाँ पहुँच गया, इसका ठिकाना ही नहीं। मैं जानता हूँ कि मुझे अपदेवताके हाथ विदा करनेकी मर्मान्तिक आत्मग्लानि लेकर ही इस बार राजलक्ष्मी काशीसे आई है और गंगामाटीके दान-परिहासके अन्तरालमें न जाने किस अनजान कठिन दण्डकी आशंका उसके मनमें बनी रहती है जो किसी तरह मिटना ही नहीं चाहती। इसीको शान्त करनेके अभिप्रायसे मैं हँसकर बोला, "लोगोंके आगे मेरे दुबले-पतले शरीरकी तुम चाहे जितनी निन्दा क्यों न करो लक्ष्मी, पर इस शरीरका विनाश नहीं है। तुम्हारे पहले मरे बिना मैं मरनेका नहीं यह निश्चित है।"

उसने बात खतम भी न करने दी, जल्दीसे मेरा हाथ पकड़कर कहा, "अब इन सबके सामने मुझे छूकर तीन बार कसम खाओ। कहो कि यह बात कभी झूठ न होगी!" कहते-कहते उसका ओठ और उसकी दोनों आँखें भर पड़ीं।

सबके सब अवाक् हो रहे। लज्जाके मारे उसने मेरा हाथ जल्दीसे छोड़ दिया और जबरदस्ती हँसकर कहा, "इन कलमुँहे ज्योतिषियोंने सचमुच ही मुझे इतना डरा दिया कि—"

यह बात भी वह खतम न कर सकी और चेहरेकी हँसी तथा लज्जाकी बाधाके होते हुए भी उसकी आँखोंसे आँसुओंकी बूँदें दोनों गालोंपर ढुलक पड़ीं।

एक बार फिर सबसे एक-एक करके विदा ली गई। बड़े गुसाईंने वचन दिया कि इस बार कलकत्ते जानेपर वे हमारे यहाँ भी पधारेंगे और पद्माने कभी शहर नहीं देखा है, इसलिए वह भी साथमें आयगी।

स्टेशनपर पहुँचते ही सबसे पहले वही 'कलमुँहा' ज्योतिषी नजर आया। प्लेटफार्मपर कम्बल बिछाकर वही शानसे बैठा है और उसके आसपास काफी लोग जमा हो गये हैं।

पूछा, "यह भी साथ चलेगा क्या ?"

राजलक्ष्मीने दूसरी ओर देखकर अपनी सलज्ज हँसी छिपा ली। पर सिर हिलाकर बताया कि "हाँ, जायगा।"

कहा, "नहीं नहीं जायगा।"

"लेकिन जानेसे कुछ भला न होगा तो बुरा भी तो न होगा। साथ चलने दो न ?"

"नहीं। भला-बुरा कुछ भी हो वह साथ नहीं चलेगा। उसे जो कुछ देना हो, दे-दिलाकर यहींसे विदा कर दो। ग्रह शान्त करनेकी क्षमता और साधुता अगर उसमें हो भी, तो तुम्हारी आँखोंकी आड़में ही वह करे।"

"तो यही कह देती हूँ," कहकर रतनको उसे बुलानेके लिए भेज दिया। नहीं मालूम कि उसे क्या दिया, पर वह बार माथा हिलाकर और अनेक आशीर्वाद देकर हँसते हुए ही उसने विदा ली।

थोड़ी देर बाद ही ट्रेन आकर हाजिर हुई और हम कलकत्तेको चल दिये।

१२

राजलक्ष्मीके एक प्रश्नके उत्तरमें रुपयोंकी प्राप्तिका किस्सा बताना पड़ा। "हमारे बर्मा आफिसके एक ऊँचे दर्जेके साहबने घुड़दौड़में सर्वस्व गँवा कर मेरे इकट्ठे किये हुए रुपये उधार ले लिये थे और खुद ही उन्होंने यह शर्त की थी कि सिर्फ सूद ही नहीं, बल्कि अगर अच्छे दिन आये तो मुनाफेका भी आधा हिस्सा देंगे। इस बार कलकत्ते लौटकर रुपये माँगनेपर उन्होंने कर्जका चौगुना रुपया भेज दिया। बस यही मेरी पूँजी है।"

"वह कितनी है ?"

"मेरे लिए तो बहुत है, पर तुम्हारे निकट अतिशय तुच्छ।"

"सुनूँ तो कितनी ?"

"सात आठ हजार।"

"वह मुझे देनी होगी।"

मैंने कहा, "यह कैसी बात है! लक्ष्मी तो दान ही करती हैं, वे हाथ भी फैलाती हैं क्या?"

राजलक्ष्मीने सहास्य कहा, "लक्ष्मी अपव्यय सहन नहीं करतीं और अयोग्य समझकर संन्यासी-फकीरोंका विश्वास नहीं करतीं। लाओ रुपये।"

"क्या करोगी?"

"अपने खाने-कपड़ेकी व्यवस्था करूँगी। इससे यही होगा मेरे जीवित रहनेका मूल-धन।"

"पर इतने मूल-धनसे काम कैसे चलेगा? तुम्हारे झुंडके झुंड नौकर नौकरानियोंकी पन्द्रह दिनकी तनख्वाह भी तो इससे पूरी नहीं होगी। इनके अलावा गुरु-पुरोहित हैं, तैंतीस करोड़ देवता हैं, बहुत-सी विधवाओंका भरण पोषण है—उनका क्या उपाय होगा?"

"उनके लिए फिक्र मत करो, उनका मुँह बन्द न होगा। मैं अपने ही भरण पोषणकी बात सोच रही हूँ। समझे?"

कहा, "समझ गया। अपने आपको एक मायामें भुलाये रखना चाहती हो,—यही न?"

राजलक्ष्मीने कहा, "नहीं, सो नहीं। वह सब रुपया दूसरे कामोंके लिए है। मेरे भविष्यकी पूँजी यही होगा जो आजसे तुम्हारे सामने हाथ पसारनेपर मिलेगा। उसीसे भरपेट खाऊँगी, नहीं तो उपवास करूँगी।"

"तो तुम्हारे भाग्यमें यही लिखा है?"

"क्या लिखा है,—उपवास?" यह कह कर उसने हँसते हुए कहा, "तुम सोच रहे हो कि साधारण-सी पूँजी है पर यह विद्या मैं जानती हूँ कि साधारणको ही किस तरह बढ़ाया जाता है। एक दिन समझोगे कि मेरे धनके बारेमें तुम जो सन्देह करते हो वह सच नहीं है।"

"यह बात तुमने इतने दिनोंसे क्यों नहीं कही?"

"इसीलिए नहीं कही कि विश्वास नहीं करोगे। मेरा रुपया तुम घृणाके मारे छूतेतक नहीं, पर तुम्हारी घृणासे मेरी छाती फट जाती है।"

व्यथित होकर कहा "अचानक आज ये सब बातें क्यों कह रही हो लक्ष्मी?"

राजलक्ष्मी क्षण-भरतक मेरे चेहरेकी ओर देखती रही फिर बोली "यह बात तुम्हें आज एकाएक लगती है पर मेरी तो रात-दिन यही भावना रही है।

तुम क्या यह समझते हो कि मन्मथकी कमाईसे ही मैं देवी-देवताओंकी सेवा करती हूँ? उस धनका एक अणु भी अगर तुम्हारी चिकित्सामें मैं खर्च करती तो तुम्हें बचा सकती? अवश्य ही मेरे पाससे भगवान् तुम्हें छीन लेते। इस बातको सत्य मानकर तुम क्या विश्वास करते हो कि मैं तुम्हारी ही हूँ?"

"विश्वास तो करता हूँ।"

"नहीं, नहीं करते।"

उसके प्रतिवादका तात्पर्य नहीं समझा। वह कहने लगी, "कमललतासे तुम्हारा दो दिनका परिचय है, तो भी तुमने उसकी सारी कहानी मन लगाकर सुनी, उसकी सारी बाधायें मिट गए,—वह मुक्त हो गई। पर तुमने मुझसे कभी कोई बात नहीं पूछी, कभी तो नहीं कहा कि लक्ष्मी, अपने जीवनकी सारी घटनायें खोलकर बताओ। क्यों नहीं पूछा? तुम विश्वास नहीं करते मेरा और न विश्वास कर सकते हो अपने ऊपर?"

कहा, "उससे भी नहीं पूछा, जानना भी नहीं चाहा। उसने खुद ही जबरदस्ती सुनाई है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तो भी सुनी तो है। वह पराई है इसलिए उसकी कहानी नहीं सुनना चाहते थे, क्योंकि जरूरत नहीं थी। पर मुझसे भी क्या यही कहोगे?"

"नहीं, यह नहीं कहूँगा। पर क्या तुम कमललताकी चेली हो? उसने जो कुछ किया है तुम्हें भी वही करना होगा?"

"इन बातोंमें मैं भूलनेवाली नहीं। मेरी सारी बातें तुम्हें सुननी ही पड़ेंगी।"

"यह तो बड़ी मुश्किल है। मैं सुनना नहीं चाहता तो भी सुननी पड़ेगी?"

"हाँ, सुननी पड़ेगी। डर लगता है कि सुननेपर शायद मुझे प्यार नहीं कर सकोगे या मुझे बिदा देनी पड़ेगी।"

"तब तुम्हारी विवेचनाके अनुसार यह क्या तुच्छ बात है?"

राजलक्ष्मी हँस पड़ी, बोली, "नहीं यह नहीं होगा, तुम्हें सुनना ही होगा। तुम पुरुष हो, तुम्हारे मनमें क्या इतनी भी शक्ति नहीं है कि उचित मालूम होने-पर मुझे दूर कर सको?"

इस असमर्थताको अत्यन्त लज्जासे कबूल करते हुए कहा, "तुम जिन शक्तिशाली पुरुषोंका उल्लेख करके मुझे अपमानित कर रही हो लक्ष्मी, वे और

पुरुष हैं,—नमस्कार करने योग्य हैं। उनकी पद-धूलिकी योग्यता भी मुझमें नहीं। तुम्हें विदा देकर मैं एक दिन भी नहीं रह सकूँगा, शायद उसी वक्त श्रीरा ध्वाने के लिए दौड़ पड़ूँगा और तुमने यदि 'ना' कर दिया तो मेरी दुर्गतिकी सीमा नहीं रहेगी। अतएव, इन बेकार विषयोंकी आलोचना बन्द करो।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तुम्हें मालूम है, बचपनमें माँने मुझे एक मैथिल राजकुमारके हाथों बेच दिया था।"

"हाँ और एक राजकुमारकी ही जबानी यह खबर बहुत दिनों बाद सुनी थी। वह मेरा मित्र था।"

राजलक्ष्मीने कहा, "हाँ, वह तुम्हारे मित्रका मित्र था। एक दिन नाराज होकर मैंने माँको विदा कर दिया और उन्होंने घर लौटकर मेरी मृत्युकी अफवाह फैला दी। यह खबर तो सुनी थी?"

"हाँ, सुनी थी।"

"सुनकर तुमने क्या सोचा था?"

"सोचा था, आह, बेचारी लक्ष्मी मर गई।"

"यही? और कुछ नहीं?"

"और यह भी सोचा था कि काशीमें मरनेके कारण और कुछ न भी हो सद्गति तो हुई ही। आह!"

राजलक्ष्मीने नाराज होकर कहा, "जाओ, झूठी आह-आह करके दुःख प्रकट करनेकी जरूरत नहीं। मैं कसम खाकर कह सकती हूँ कि तुमने एक बार भी 'आह' न की थी। लो, मुझे छूकर कहो तो।"

कहा, "इतने दिनों पहलेकी बातें क्या ठीक-ठीक याद रहती हैं? की थी, यही तो याद आता है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "खैर, यह करके इतनी पुरानी बातें अब याद करनेकी जरूरत नहीं, मैं जानती हूँ।" फिर थोड़ी देर ठहरकर उसने कहा, "और मैं? रोज सुबह विश्वनाथजीसे रो-रोकर कहती थी, भगवान्, मेरे भाग्यमें तुमने यह क्या लिख दिया? तुम्हें साक्षी बनाकर जिसके गलेमें माला डाली थी क्या इस जीवनमें उससे फिर कभी मिलना नहीं होगा? चिरकालतक क्या ऐसी अपवित्रता में ही दिन बिताने पड़ेंगे? उन दिनोंकी बातें याद आते ही आज भी आत्म हत्या करके मर जानेकी इच्छा होती है।"

उसके चेहरेकी ओर देखकर क्षोभ बोध हुआ, पर यह सोचकर चुप ही रहा कि मेरा निषेध नहीं मानेगी।

इन बातोंको उसने कितने दिनों मन ही मन कितनी तरहसे उलट-पलट कर सोचा-विचारा है, उसके अपराध-भाराक्रान्त मनने नीरव ही कितनी मर्मान्तक वेदना सहन की है, फिर भी इस डरसे कि कुछ करते कुछ न हो जाय, कुछ जाहिर करनेका साहस नहीं किया है, इतने दिनोंके बाद आज वह यह शक्ति कमललतासे अर्जन कर पाई है। अपनी प्रच्छन्न कलुषताको अनावृत करके वैष्णवीने मुक्ति पा ली है, राजलक्ष्मी भी आज मन और बड़ी मर्यादाकी जंजीरोंको तोड़कर उसीकी तरह सरल होकर खड़ी होना चाहती है, फिर उसके भाग्यमें कुछ भी क्यों न हो। यह शिक्षा उसे कमललताने दी है। संसारमें इस एक व्यक्तिके आगे इस दर्पिता नारीने सिर झुकाकर अपने दुष्कृतके क्षमादानकी भिक्षा माँगी है, पर बिना किसी संशयके समग्र लेनेपर मुझे बहुत सन्तोष मिला।

कुछ देर दोनों ही चुप रहे। सहसा राजलक्ष्मी बोली, "राजपुत्र एकाएक मर गया, माँने मुझे फिर बेचनेका षड्यन्त्र रचा—"

"इस बार किसके हाथ?"

"एक दूसरे राजकुमारके—तुम्हारे उन्हीं मित्र-रत्नके हाथ—जिनके साथ साथ शिकार करनेके लिए आये हुए—क्या हुआ, याद नहीं है?"

"शायद नहीं। बहुत पुरानी बात है न। पर उसके बाद?"

राजलक्ष्मीने कहा, "वह षड्यन्त्र सफल नहीं। मैं बोली, 'माँ तुम घर जाओ।' माँने कहा 'हजार रुपये जो ले चुकी हूँ!' कहा, 'वह रुपया लेकर तुम देश चली जाओ। दासीका रुपया चाहे जैसे होगा मैं चुका दूँगी। आज रातकी गाड़ीसे ही तुम विदा न होगी माँ, तो कल सवेरे ही मैं अपनेको लेकर गंगा माताके पानीमें डुबा दूँगी। मुझे तो तुम जानती हो माँ, झूठा डर नहीं दिखा रही हूँ।' माँ विदा हो गई। उन्हींकी जबानी मेरी मौतकी खबर सुनकर तुमने दुःख प्रकट करते हुए कहा था, 'आह! बेचारी मर गई!'" यह कहकर वह खुद ही कुछ हँसी और बोली, "सच होती तो तुम्हारे मुँहसे निकली हुई यह 'आह' ही मेरे लिए बहुत थी, पर अब जिस दिन सचमुच मरूँगी, उस दिन दो बूँद आँसू जरूर गिराना। कहना कि संसारमें अनेक वर-वधुओंने अनेक मालायें बदली हैं, उनके प्रेमसे संसार पवित्र—परिपूर्ण हो रहा है, पर

कुमारी राजलक्ष्मीने अपनी नौ वर्षकी उम्रमें उस किशोर वरको एक मनसे जितना ज्यादा प्यार किया था, इस संसारमें उतना ज्यादा प्यार कभी किसीने किसीको नहीं किया।—कहो कि मेरे कानोंमें उस वक्त यह बात कहोगे ! मैं मरकर भी सुन सकूँगी।"

"यह क्या तुम तो रो रही हो !"

उसने आँखोंके आँसू आँचलसे पोंछकर कहा, "तुम क्या सोचते हो कि इस निरपराध बच्चीपर उसके आत्मीय स्वजनोंने जितना अत्याचार किया है, उसे अन्तर्यामी भगवान् देख नहीं सके !—इसका न्याय वे नहीं करेंगे !—आँखें बन्द किये रहेंगे !"

कहा, 'सोचता तो हूँ कि आँखें बन्द किये रहना उचित नहीं है, पर उनकी बातें तुम लोग ही अच्छी तरह जानती हो, मेरे जैसे पापियोंका परामर्श वे कभी नहीं लेते।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मजाक !" पर दूसरे ही क्षण गम्भीर होकर कहा, "अच्छा लोग कहते हैं कि स्त्री और पुरुषका धर्म एक न होनेसे काम नहीं चलता, पर धर्म-कर्ममें तो मेरा और तुम्हारा सम्पर्क साँप और नेवले जैसा है। फिर भी हम दोनोंका कैसे चलता है !"

"साँप-नेवलेकी तरह ही चलता है। इस जमानेमें आपसी मार काटमें बड़ी हलचल है इसलिए एक व्यक्ति दूसरेका वध नहीं करता निर्मम होकर विदा कर देता है,—तब जब कि यह आशंका होती है कि उसकी धर्म-साधनामें विघ्न पड़ रहा है !"

"उसके बाद क्या होता है !"

हँसकर कहा "उसके बाद वह दूसरा ही रोते-रोते वापस आता है, दाँतोंमें तिनका दबाकर कहता है कि मुझे बहुत सजा मिल चुकी है इस जीवनमें अब इतनी बड़ी भूल नहीं करूँगा। गया मेरा जप-तप गुरु पुरोहित,—मुझे क्षमा करो।"

राजलक्ष्मी भी हँसी बोली "पर क्षमा मिल तो जाती है !"

'हाँ मिल जाती है। पर तुम्हारी कहानीका क्या हुआ ?

राजलक्ष्मीने कहा 'कहती हूँ।' क्षण-भर मेरी ओर निष्पलक नेत्रोंसे देख कर कहा, 'माँ देश चली गई। उन दिनों मुझे एक बूढ़ा उस्ताद गाना-बजाना

सिखाता था। वह संन्यासी था। किसी जमानेमें संन्यासी था, पर इसीलिए देकर फिर संसारी हो गया था। उसके घरमें मुसलमान स्त्री थी, वह मुझे नाच सिखाने आती थी। मैं उसे बाबा कहती थी और मुझे सचमुच वह बहुत प्यार करता था। रोकर कहा 'बाबा, तुम मेरी रक्षा करो, यह सब अब मुझसे न होगा।' वह गरीब आदमी था। एकाएक साहस न कर सका। मैंने कहा कि मेरे पास बहुत रुपया है उससे काफी दिनोंतक चल जायगा। फिर भाग्यमें जो बदा होगा, वह होगा। पर अब चलो भाग चलें। इसके बाद उसके साथ कितनी जगह घूमी —इलाहाबाद, लखनऊ, दिल्ली, आगरा, जयपुर, मथुरा,—अन्तमें इस पटनामें आकर आश्रय लिया। आधा रुपया एक महाजनकी गद्दीमें जमा करा दिया और आधे रुपयेसे एक मनिहारी और कपड़ेकी दूकान खोल दी। मकान खरीदकर बंकूको तलाश किया, उसे लाकर स्कूलमें भर्ती करा दिया और कौड़ियोंके लिए जो कुछ करती थी वह तो तुमने खुद अपनी आँखोंसे देखा है।"

उसकी कहानी सुनकर कुछ देरतक स्तब्ध रहा, फिर बोला "तुम कहती हो इसलिए अविश्वास नहीं होता पर और कोई कहता तो समझता कि सिर्फ एक मनगढ़न्त झूठी कहानी सुन रहा हूँ।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मैं शायद झूठ नहीं बोल सकती!"

कहा "शायद बोल सकती हो, पर मेरा विश्वास है कि मुझसे आजतक नहीं बोलीं।"

"यह विश्वास क्यों है?"

"क्यों! तुम्हें डर है कि झूठी प्रवंचना करनेके कारण पीछे कहीं देवता रुष्ट न हो जावें और तुम्हें दण्ड देनेके लिए कहीं मेरा अकल्याण न कर बैठें।"

"मेरे मनकी बात तुमने कैसे जान ली?"

"मेरे मनकी बात भी तो तुम जान लेती हो!"

"मैं जान सकती हूँ, क्योंकि यह मेरी रात-दिनकी भावना है, पर तुम्हारे तो यह नहीं है।"

"अगर हो तो खुश होओगी?"

राजलक्ष्मीने सिर हिलाकर कहा, "नहीं होऊँगी। मैं तुम्हारी दासी हूँ, दासीको इससे ज्यादा मत समझना, मैं यही चाहती हूँ।"

उत्तरमें कहा, "तुम उस युगकी मनुष्य हो,—यही

संस्कार हैं।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मैं ऐसी ही हो गई और हमेशा ऐसी ही रहूँ।" मा
झुकाकर क्षणभर मेरी ओर देखा फिर कहा "तुम सोचते हो कि इन तुमको औरतें
मैंने नहीं देखी हैं! बहुत देखी हैं। बल्कि तुमने नहीं देखी हैं और देखी भी
तो पहचाने। इनमेंसे किसीके साथ मुझे बदल लो, तो देखूँ कि तुम कैसे रह सकते
हो! अभी मुझसे मजाक करते हुए कहा था कि आँखोंमें तिनका दबाकर आ
थी, तब तुम इस हाथ दूसरे घरोंमें छिपकर दबाये आओगे।"

पर जब इसकी मीमांसा हो ही नहीं सकती तब झगड़ा करनेसे क्या फायदा
सिर्फ यही कह सकता हूँ कि उनके बारेमें तुमने अत्यन्त अविचार किया है।"

राजलक्ष्मीने कहा 'अविचार अगर किया हो तो भी कह सकती हूँ कि
अत्यन्त अविचार नहीं किया। ओ गुसाईं, मैं भी बहुत घूमी हूँ, बहुत देखा है।
तुम लोग जहाँ जन्मे हो वहाँ भी हमारी इन थोड़ी आँखें घूमी हुई हैं।"

"पर जो कुछ देखा है रंगीन चश्मेसे देखा है, इसलिए सब गलत देखा है
इन थोड़ी भी व्यर्थ हैं।"

राजलक्ष्मीने हँसते हुए कहा, "क्या कहूँ, मेरे हाथ-पैर बँधे हुए हैं, नहीं तो
ऐसे करारे हाथों देती कि जन्मभर न भूलते। पर जाने दो, अब मैं उस मुगल
तरह तुम्हारी दासी होकर ही रहती हूँ, अब तुम्हारी सेवा ही मेरे लिए सबसे
बड़ा काम है। पर तुम्हें अपने बारेमें जरा भी न सोचने दूँगी। संसारमें तुम्हारे
लिए बहुत काम है, अपने वे ही करने होंगे। इस अभागिनीके पीछे तुम्हारा
काफी वक्त व्यर्थ और भी बहुत कुछ नष्ट हो गया है, अब मैं और नष्ट नहीं
करने दूँगी।"

कहा, "इसीलिए तो मैं जितनी जल्दी हो सके उसी पुरानी नौकरीपर
जाकर हाजिर हो जाना चाहता हूँ।"

राजलक्ष्मीने कहा, 'नौकरी मैं तुम्हें नहीं करने दूँगी।"

"पर मनिहारीकी दूकान भी मैं नहीं चला सकूँगा।"

"क्यों नहीं चला सकोगे?"

'पहला कारण तो यह है कि चीजोंका दाम मुझे याद नहीं रहता, दूसरे,
दाम लेना और फौरन हो हिसाब करके बाकी पैसा लौटा देना तो और भी
असम्भव है। दूकान तो उठ ही जायगी, मगर खरीददारोंके साथ लाठी न चल

आज तो गनीमत है।"

"तो कपड़ेकी एक दूकान करो।"

"इससे अच्छा है कि बंगाली टोले मछुओंकी एक दूकान करा दो, मेरे लिए उसे चलाना ज्यादा आसान होगा।"

राजलक्ष्मी हँस पड़ी। बोली, "मन लगाकर इतनी आराधना करनेके बाद भी अन्तमें भगवान्ने मुझे एक ऐसा अकर्मण्य मनुष्य दिया जिसके द्वारा संसारका रत्ती-सा भी काम नहीं हो सकता।"

कहा, 'आराधनामें त्रुटि थी। उसे सुधारनेका वक्त है, अब भी तुम्हें कर्मठ आदमी मिल सकता है—काफी सुन्दर, स्वस्थ, लम्बा-चौड़ा जवान जिसे न कोई हरा सकेगा और न ठग ही सकेगा जिसपर कामका भार देकर निश्चिन्त, हाथमें रुपया-पैसा सौंपकर निर्भय हुआ जा सकेगा। जिसकी खबरदारी नहीं करनी होगी, भीड़में जिसे खो देनेकी आकुलता नहीं जिसे समझाकर तृप्ति, मानकर आनन्द,—'हाँ' के बदले जो 'ना' बोलना ही नहीं जानता—"

राजलक्ष्मी चुपचाप मेरे मुँहकी तरफ देख रही थी, अकस्मात् उसके सारे शरीरमें काँटे उठ आये। मैंने कहा "अरे यह क्या?"

"नहीं, कुछ नहीं।"

"काँप जो उठीं?"

राजलक्ष्मीने कहा, "मुँहजबानी ही तुमने जो तसवीर खींची है, उसका अगर आधा भी सच हो तो शायद मैं मारे डरके ही मर जाऊँगी।"

"पर मेरे जैसे अकर्मण्य आदमीको लेकर तुम क्या करोगी?"

राजलक्ष्मीने हँसी दबाकर कहा, "करूँगी और क्या। भगवान्को कोसूँगी! और हमेशा जलती-भुनती रहकर मरूँगी। इस जन्ममें और तो कुछ आँखोंसे दिखाई नहीं देता।"

"बल्कि इससे अच्छा तो यही है कि तुम मुझे मुरारीपुरके अखाड़ेमें भेज दो।"

"वहाँका तुम कौन-सा उपकार करोगे?"

"उनके फूल तोड़ दिया करूँगा और देवताका प्रसाद पाकर जिन्दा हूँ पड़ा रहूँगा। इसके बाद वे उसी बकुलके तले मेरी क्या किसी दिन कमलको दीपक जला जायगी,—जिस दिन

दिन दीप न जलेगा। सुबहके फूल तोड़कर उसके पाससे कमललता जब निकलेगी तो कभी एक मुट्ठी मल्लिकाके फूल बिखेर देगी और कभी कुन्दके फूल। यदि कभी कोई परिचित रास्ता भूलकर आ जायगा तो उसे समाधि दिखाकर कहेगी, यहाँ हमारे नये गुसाईं रहते हैं,—यहाँ जो जरा ऊँची जगह है, वहाँ मल्लिकाके तले और कुन्दके तले पूलोंके साथ मिलकर झरे हुए बकुलके फूल छाये हुए हैं—वहीं।"

राजलक्ष्मीकी आँखोंमें आँसू भर आये, पूछा, "और वह परिचित व्यक्ति तब क्या करेगा?"

मैंने कहा, "यह मैं नहीं जानता। हो सकता है कि बहुत-सा रुपया खर्च कर मन्दिर बनवा जावे—"

राजलक्ष्मीने कहा, "नहीं ऐसा न होगा। वह उस बकुलके तलेको छोड़ कर कहीं न जायगा। पेड़की हर डालपर पक्षी कलरव करेंगे, गाना गावेंगे लड़ेंगे—तीखड़ी सूखे पत्ते सूखी हुई डालें गिरायेंगे—उन सबको साफ करनेका भार उसपर रहेगा। सुबह चुनकर और साफकर फूलोंकी माला गूँथेगा, रातको सबके सो जानेपर उन्हें वैष्णव कवियोंके गीत सुनायेगा फिर बक्त आनेपर कमललता दीदीको बुलाकर कहेगा हमें एकत्र करके समाधि देना, कहीं अन्तर न रहने पावे, अलग-अलग न पहचाने जावें। और वह जो रुपये, इनसे मन्दिर बनवा देना, राधा-कृष्णकी मूर्ति प्रतिष्ठित करना, पर कोई नाम मत लिखना, कोई चिह्न मत रखना,—किसीको मालूम न होने पावे कि कौन हैं और कहाँसे आये।"

कहा, "लक्ष्मी, तुम्हारी तसवीर तो हो गई और भी मधुर, और भी सुन्दर।"

राजलक्ष्मीने कहा "क्योंकि यह तसवीर सिर्फ बातोंसे नहीं गढ़ी गई है गुसाईं, यह सच जो है और यहींपर दोनोंमें फर्क है। मैं कर सकूँगी, पर तुमसे नहीं होगा। तुम्हारे द्वारा अंकित बातोंकी तसवीर सिर्फ बातें होकर ही रह जायगी।"

"कैसे जाना?"

"जानती हूँ। स्वयं तुमसे भी ज्यादा जानती हूँ। यह तो मेरी पूजा है, मेरा ध्यान है। पूजा छोड़ करके किसके पैरोंपर अर्घ्य चढ़ाती हूँ? किसके पैरोंपर फूल देती हूँ? तुम्हारे ही तो।"

भीतरसे रसोइयेकी पुकार आई, "माँ, रतन नहीं है, चायका पानी तैयार

हो गया !"

"आती हूँ !" कह आर्सी पोंछकर वह उसी वक्त चली गई।

कुछ देर बाद चायकी प्याली ले आई और उसे मेरे सामने रखकर बोली, "तुम्हें किताबें पढ़ना अच्छा लगता है, तो अबसे वही क्यों नहीं करते !"

"उससे रुपये तो आयेंगे नहीं !"

"रुपयोंका क्या होगा ? रुपया तो हम लोगोंके पास बहुत है !"

कुछ रुककर कहा, "ऊपरवाला यह दक्खिनका कमरा तुम्हारे पढ़नेका कमरा होगा। आनन्द देकर किताबें खरीदकर लायेंगे और मैं अपने मनके मुताबिक सजाकर रखूँगी। उसकी एक बगलमें मेरा सोनेका कमरा होगा, और दूसरी ओर ठाकुरजीका कमरा। बस, इस जन्ममें मेरा यही त्रिभुवन है,—इसके बाहर मेरी दृष्टि कभी जाय ही नहीं !"

पूछा, "और तुम्हारा रसोईघर ? आनन्द संन्यासी आदमी है, उधर नजर न रक्खोगी तो उसे एक दिन भी नहीं रख सकोगी।—पर उसका पता कैसे मिला ? वह कब आवेगा ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "कुशारीजीने पता दिया है, कहा है कि आनन्द बहुत जल्दी आयगा। इसके बाद हम मिलकर गंगामाटी जायेंगे और वहीं कुछ दिन रहेंगे।"

कहा, "समझ लो कि वहाँ चली ही गई; किन्तु उनके निकट जाते हुए इस बार तुम्हें शर्म नहीं आयेगी ?"

राजलक्ष्मीने कुंठित हास्यसे सिर हिलाकर कहा, "पर उनमेंसे तो कोई भी यह नहीं जानता कि काशीमें बाल वगैरह कटाकर मैंने स्वाँग बनाया था। बाल अब बहुत-कुछ बढ़ गये हैं, पता नहीं चल सकता कि कभी कटे थे, और फिर मेरे सारे अन्याय और सारी ओर लज्जा दूर करनेके लिए तुम भी तो मेरे साथ हो ?"

कुछ ठहरकर बोली, "खबर मिली है कि वह सौभागिनी माधवी फिर लौट आई है और साथ लाई है अपने पतिको। उसके लिए एक हार गढ़वा दूँगी।"

कहा, "ठीक है, गढ़ा देना किन्तु वहाँ जाकर फिर अगर सुनन्दाके पल्ले पड़ जाओ—"

राजलक्ष्मी जल्दीसे बोल उठी, "नहीं जी नहीं, अब वह डर कैसा ?

और भ्रम दूर हो गया है। बाप रे बाप, ऐसी भ्रम-बुद्धि थी कि रात-दिन न तो आँखोंके आँसू ही रोक सकी, न खाना ही खा सकी और न सो सकी। यही बहुत है कि पागल नहीं हुई।" फिर उसने हँसकर कहा, "तुम्हारी लक्ष्मी चाहे जैसी हो, लेकिन आखिर मनकी नहीं है। उसने एक बार जिसे सत्य समझ लिया, फिर उसे उससे कोई डिगा नहीं सकता।' कुछ क्षण नीरव रहकर फिर बोली, "मेरा सारा मन मानो इस वक्त आनन्दमें डूबा हुआ है। हर वक्त ऐसा लगता है कि इस जीवनका सब-कुछ मिल गया है, अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। यदि यह भगवान्का निर्देश नहीं तो और क्या है, बताओ? प्रतिदिन पूजा कर देवताके चरणोंमें अपने लिए कुछ कामना नहीं करती, केवल यही प्रार्थना करती हूँ कि ऐसा आनन्द संसारमें सबको मिले। इसीलिए तो आनन्द देवरको बुला भेजा है कि उनके काममें अपनी थोड़ी-बहुत सहायता करूँगी।"

"अच्छी बात है, करो।"

राजलक्ष्मी अपने मनमें न जाने क्या सोचने लगी फिर सहसा कह उठी,— "देखो इस सुनन्दाके जैसी अच्छी निर्लोभ और सत्यवादी और कोई दूसरी औरत मैंने नहीं देखी, पर जबतक उसकी विद्याकी गरमी न जायगी तबतक यह विद्या किसी काम नहीं लगेगी।"

"पर सुनन्दाको विद्याका घमंड तो नहीं है?"

राजलक्ष्मीने कहा, "नहीं, दूसरोंकी तरह नहीं है,—और यह बात मैंने कही भी नहीं। वह कितने श्लोक कितनी धर्म-कथायें, कितने उपाख्यान जानती है। उसके मुँहसे सुन-सुनकर ही तो मेरी यह धारणा हुई थी कि मैं तुम्हारी कोई नहीं हूँ हमारा सम्बन्ध झूठा है,—और विश्वास भी तो यही करना चाहा था,—पर भगवान्ने मेरी गरदन पकड़ कर समझा दिया कि इससे बढ़कर मिथ्या और कुछ नहीं है। इसीसे समझ गई कि उसकी विद्यामें कहीं जबरदस्त भूल है। इसीलिए देखती हूँ कि वह किसीको सुखी नहीं कर सकती, सिर्फ दुःख ही दे सकती है। उसकी जेठानी उससे बहुत बड़ी है। सीधी-सादी है, पढ़ना लिखना नहीं जानती, पर दिलमें दया-माया भरी हुई है। कितने दुःखी और दरिद्र परिवारोंका वह छुप-छिपकर प्रतिपालन करती है —किसीको पता भी नहीं चलता। तुम्हारे-परिवारके साथ जो एक सुव्यवस्था हो गई, वह क्या कभी सुनन्दाके जरिए हो सकती थी? तुम क्या यह सोचते हो कि वह तेज दिखलाकर

मकान छोड़कर चले जानेके कारण हुई है ? कभी नहीं। यह तो उसकी बड़ी बेचारीने अपने पतिके पैरों पड़ और रो-धोकर किया है। सुनन्दाने सारी दुनिया के सामने अपने बड़े जेठको चोर कहकर छोटा कर दिया,—यही क्या शास्त्र-शिक्षाका सुफल है ? उसकी पोथीकी विद्या जबतक मनुष्योंके सुख दुःख, भलाई बुराई, पाप-पुण्य लोभ-मोहके साथ सामंजस्य नहीं कर पाती तबतक पुस्तकोंके पढ़े हुए कर्तव्य ज्ञानका दम्भ मनुष्योंको बिना कारण छेदेगा, अत्याचार करेगा और तुम्हें बतलाये देती हूँ कि संसारमें किसीका भी कल्याण नहीं करेगा।"

मैं बातें सुनकर विस्मित हुआ, पूछा, 'यह सब तुमने सीखा किससे ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "क्या मालूम किससे, शायद तुमसे ही। तुम कुछ करते नहीं, कुछ माँगते नहीं, किसीपर जोर नहीं डालते। इसीलिए तुमसे सीखना सिर्फ सीखना नहीं है, वह तो स्वभावमें पाना है। इसलिए एक दिन आश्चर्यके साथ सोचना पड़ता है कि यह सब कहाँसे आया ! पर इसे जाने दो, इस बार जाकर वही कुमारी-गोस्वामीसे मिलना करूँगी और उस दफा उनकी अवहेलना करके जो गलती की है, अबकी बार उसे सुधारूँगी। चलोगे न गंगामाटी ?"

"किन्तु क्यों ? नौकरी ?"

"फिर वह नौकरी ? अभी तो कहा कि मैं तुम्हें नौकरी नहीं करने दूँगी।"

"लक्ष्मी, तुम्हारा स्वभाव सच है। तुम कहती कुछ नहीं, चाहती कुछ नहीं, किसीपर जोर भी नहीं करतीं,—विशुद्ध वैष्णव-उदासीनताका नमूना सिर्फ तुम्हारे ही निकट मिलता है।"

"इसीलिए क्या किसकी जो इच्छा होगी, उसीका अनुमोदन करना पड़ेगा ? संसारमें क्या और किसीका दुःख-सुख नहीं है ? तुम्हीं सब-कुछ हो ?"

"ठीक कहती हो, किन्तु अभया ? उसने लोगोंका भय नहीं किया। अगर उस दुर्दिनमें आश्रय देकर वह न बचाती तो शायद आज तुम मुझे पातीं ही नहीं। आज उसका क्या हुआ, यह क्या बिलकुल ही न सोचूँ ?"

राजलक्ष्मी क्षणभरमें ही करुणा और कृतज्ञतासे विगलित होकर बोली,—"तो तुम रहो, आनन्द देवरको लेकर मैं ही बर्मा जाती हूँ, पकड़कर उन लोगोंको ले आऊँगी। यहाँ उनके लिए कोई प्रबन्ध हो ही जायगा।"

"यह हो सकता है, किन्तु वह बहुत अभिमानिनी है। मैं न गया तो शायद

देखा कि रतन दरवाजेपर खड़ा है। तब जरा जीभ दबाकर कहा, "रतन बुरा न मानना भाई, मैंने समझा था कि तुम ऊपर चले गये हो, पुकारनेपर उत्तर नहीं मिला था न!"

राजलक्ष्मी हँसने लगी, मुझसे भी बिना हँसे न रहा गया। रतनकी भौंहें नहीं चढ़ीं, उसने गम्भीर आवाजमें कहा, "मैं चाकर जरूर हूँ माँ, किसने चायका पानी चढ़ा दिया है।" और वह चला गया। राजलक्ष्मीने कहा, "शायद रतनकी आनन्दसे नहीं बनती!"

आनन्दने कहा "हाँ, पर मैं उसे दोष नहीं दे सकता दीदी। वह आपका हितैषी है—ऐरे-गैरोंको नहीं घुसने देना चाहता। पर आज उससे मेल कर लेना होगा, नहीं तो खाना बख्त पर नहीं मिलेगा। बहुत दिनोंका भूखा हूँ।"

राजलक्ष्मीने जल्दीसे बरामदेमें आकर कहा, "रतन, और कुछ रुपये ले जा भाई, क्योंकि एक बड़ी-सी रुई मछली लानी होगी।" लौटकर कहा "मुँह-हाथ धो लो भाई, मैं चाय तैयार कर लाती हूँ।" कहकर वह नीचे चली गई।

आनन्दने कहा, "दादा, एकाएक तबदीली क्यों हुई?"

"इसकी कैफियत क्या मैं दूँगा आनन्द?"

आनन्दने हँसते हुए कहा, "देखता हूँ कि दादाका अब भी वही भाव है—नाराजगी दूर नहीं हुई है। फिर कहीं चम्पत हो जानेका इरादा तो नहीं है! उस दफा गंगामाटीमें कैसी मुश्किलमें डाल दिया था! इधर सारे देहाती लोगोंका निमन्त्रण और उधर मकानका मालिक लापता! बीचमें मैं,—नया आदमी—इधर दौड़ूँ, उधर दौड़ूँ, दादी पैर फैलाकर रोने बैठ गईं, रतनने लोगोंको भगानेका उद्योग किया —कैसी विपत्ति थी! वाह दादा, आप खूब हैं!"

मैं भी हँस पड़ा, बोला, "अबकी बार नाराजगी दूर हो गई है। डरो मत।"

आनन्दने कहा, "पर भरोसा तो नहीं होता। आप जैसे निःसंग, एकाकी लोगोंसे मैं डरता हूँ और अकसर सोचता हूँ कि आपने अपनेको संसारमें क्यों बँधने दिया।"

मन-ही-मन कहा, तकदीर! और मुँहसे कहा, "देखता हूँ कि मुझे भूले नहीं हो, बीच-बीचमें याद करते थे?"

आनन्दने कहा, "नहीं दादा, आपको भूलना भी मुश्किल है और समझना भी कठिन है, मोह दूर करना तो और भी कठिन है। अगर विश्वास न हो तो

चाहिए, दीदीको बुलाकर बधाई दे दूँ। आपसे सिर्फ दो-तीन दिनका ही तो परिचय है, पर उस दिन दीदीके साथ सुरमें सुर मिलाकर मैं भी जो रोने नहीं बैठ गया तो सिर्फ इसलिए कि वह संन्यासी धर्मके बिल्कुल खिलाफ है।"

बोला, "वह शायद दीदीकी खातिर। उनके अनुरोधसे ही तो इतनी दूर आये हो?"

आनन्दने कहा, "बिल्कुल झूठ नहीं है दादा। उनका अनुरोध तो सिर्फ अनुरोध नहीं है, वह तो मानों माँकी पुकार है, पैर अपने आप चलना शुरू कर देते हैं। न जाने कितने घरोंमें आश्रय लेता हूँ, पर ठीक ऐसा तो कहीं नहीं देखता। सुना है कि आप भी तो बहुत घूमे हैं, आपने भी कहीं कोई इनके जैसी और देखी है?"

कहा, "बहुत।"

राजलक्ष्मीने प्रवेश किया। कमरेमें घुसते ही उसने मेरी बात सुन ली थी, चायकी प्याली आनन्दके निकट रखकर मुझसे पूछा, "बहुत क्या जी?"

आनन्द शायद कुछ विस्मयमें हो गया; मैंने कहा, "तुम्हारे गुणोंकी बातें। इन्होंने संदेह जाहिर किया था, इसलिए मैंने जोरसे उसका प्रतिवाद किया है।"

आनंद चायकी प्याली मुँहसे लगा रहा था, हँसीकी धक्कसे थोड़ी-सी चाय जमीनपर गिर पड़ी। राजलक्ष्मी भी हँस पड़ी।

आनंदने कहा, "दादा, आपकी उपस्थित-बुद्धि अद्भुत है। यह ठीक उल्टी बात क्षण-भरमें आपके दिमागमें कैसे आ गई?"

राजलक्ष्मीने कहा, "इसमें आश्चर्य क्या है आनंद! अपने मनकी बात दबाते-दबाते और कहानियाँ गढ़कर सुनाते-सुनाते इस विद्यामें ये पूरी तरह महा महोपाध्याय हो गये हैं।"

कहा, "तो तुम मेरा विश्वास नहीं करतीं?"

"जरा भी नहीं।"

आनंदने हँसकर कहा, "गढ़कर कहनेकी विद्यामें आप भी कम नहीं हैं दीदी। तत्काल ही जवाब दे दिया "जरा भी नहीं"।"

राजलक्ष्मी भी हँस पड़ी। बोली, "सुन-सुनकर सीखना पड़ा है भाई। पर अब तुम देर मत करो. चाय पीकर नहा लो। यह अच्छी तरह

कल ट्रेनमें तुम्हारा भोजन नहीं हुआ। इनके मुँहसे मेरी सुख्याति सुननेके लिए ही तुम्हारा सारा दिन भी कम होगा।" यह कहकर वह चली गई।

आनंदने कहा, "आप दोनों जैसे दो व्यक्ति संसारमें विरल हैं। भगवान्ने मजमून सोच लिखकर आप लोगोंको दुनियामें भेजा है।"

"उसका नमूना देख लिया न?"

"नमूना तो उस पहले ही दिन साँईथियाँ स्टेशनके पेड़-तले देख लिया था। इसके बाद और कोई कमी नजर नहीं आया।"

"आहा! ये बातें यदि तुम उनके सामने ही कहते आनंद!"

आनंद कामका आदमी है, काम करनेका उद्यम और शक्ति उसमें विपुल है। उसको निकट पाकर राजलक्ष्मीके आनंदकी सीमा नहीं। रात-दिन जानेकी तैयारियाँ तो प्रायः अबकी सीमातक पहुँच गईं। दोनोंमें लगातार कितने परामर्श होते रहे उन सबको मैं नहीं जानता। कानमें सिर्फ यह भनक पड़ी कि गंगामाटीमें एक लड़कोंके लिए और एक लड़कियोंके लिए स्कूल खोला जायगा। वहाँ काफी गरीब और नीच जातिके लोगोंका वास है और शायद वे ही उपलक्ष्य हैं। सुना कि चिकित्साका भी प्रबन्ध किया जायगा। इन सब विषयोंकी मुझमें रत्तीभर भी पटुता नहीं। परोपकारकी इच्छा है पर शक्ति नहीं। यह सोचते ही कि कहीं कुछ खड़ा करना या बनाना पड़ेगा, मेरा श्रान्त मन 'आज नहीं, कल' कह-कहकर दिन टालना चाहता है। अपने नये उद्योगमें बीच-बीचमें आनन्द मुझे घसीटने आता, पर राजलक्ष्मी हँसते हुए बाधा देकर कहती, 'इन्हें मत मत छेड़ो आनन्द, तुम्हारे सब संकल्प पंगु हो जायगे।"

सुननेपर प्रतिवाद करना ही पड़ता। कहता, "अभी-अभी उस दिन तो कहा कि मेरा बहुत काम है और अब मुझे बहुत-कुछ करना होगा?"

राजलक्ष्मीने हाथ जोड़कर कहा, 'मेरी गलती हुई गुसाईं, अब ऐसी बात कभी जबानपर नहीं लाऊँगी।"

"तब क्या किसी दिन कुछ भी नहीं करूँगा?"

"क्यों नहीं करोगे? यदि बीमार पड़कर डरके मारे मुझे अधमरा न कर डालो, तो इससे ही मैं तुम्हारे निकट चिरकृतज्ञ रहूँगी।"

आनन्दने कहा, "दीदी, इस तरह ही आप सचमुच ही इन्हें अकर्मण्य बना देंगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मुझे नहीं बनाना पड़ेगा भाई, जिस विधाताने इनकी सृष्टि की है उसीने इनकी व्यवस्था कर दी है,—कहीं भी त्रुटि नहीं रहने दी है।"

आनन्द हँसने लगा। राजलक्ष्मीने कहा, "और फिर यह कलमुँहा ज्योतिषी ऐसा डर दिखा गया है कि इनके मकानसे बाहर पैर रखते ही मेरी छाती धक् धक् करने लगती है—जबतक लौटते नहीं तबतक किसी भी काममें मन नहीं लग सकता।"

"इस बीच ज्योतिषी कहाँ मिल गया? क्या कहा उसने?"

इसका उत्तर मैंने दिया, कहा, "मेरा हाथ देखकर यह बोला कि बहुत बड़ा विपद्-योग है—जीवन मरणकी समस्या।"

'दीदी, इन सब बातोंपर आप विश्वास करती हैं!"

मैंने कहा, "हाँ, करती हैं, जरूर करती हैं। तुम्हारी दीदी कहती हैं कि क्या विपद्-योग नामकी कोई बात ही दुनियामें नहीं है! क्या कभी किसीपर आफत नहीं आती!"

आनन्दने हँसकर कहा, "आ सकती है, पर हाथ देखकर कोई कैसे बता सकता है दीदी!"

राजलक्ष्मीने कहा, "यह तो नहीं जानती भाई, पर मुझे यह भरोसा जरूर है कि जो मेरे जैसी भाग्यवती है, उसे भगवान् इतने बड़े दुःखमें नहीं डुबायेंगे।"

क्षण-मात्रक लज्जाके साथ उसके मुँहकी ओर देखकर आनन्दने दूसरी बात छेड़ दी।

इसी बीच मकानकी लिखा-पढ़ी, बन्दोबस्त और व्यवस्थाका काम चलने लगा, ढेरकी ढेर ईंटें, काठ, चूना, सुरखी, दरवाजे, खिड़कियाँ वगैरह आ पहुँचीं। पुराने घरको राजलक्ष्मीने नया बनानेका आयोजन किया।

उस दिन शामको आनन्दने कहा, "चलिए दादा, जरा घूम आवें।"

आजकल मेरे बाहर जानेके प्रस्तावपर राजलक्ष्मी अनिच्छा जाहिर किया करती है। बोली, "घूमकर लौटते-लौटते रात्रि हो जायेगी आनन्द, ठण्ड नहीं लगेगी?"

आनन्दने कहा, "गरमीसे तो लोग मरे जा रहे हैं दीदी, ठण्ड कहाँ है?"

आज मेरी तबीयत भी बहुत अच्छी न थी। कहा, "इसमें शक नहीं कि

ठंड लगनेका डर नहीं, पर मानो उठनेकी भी वैसी इच्छा नहीं हो रही है आनन्द।"

आनन्दने कहा, "डर अवश्य है। शामके वक्त कमरेमें बैठे रहनेसे अनिच्छा और भी बढ़ जायगी—चलिए, उठिए।"

राजलक्ष्मीने इसका समाधान करनेके लिए कहा, "इससे अच्छा एक दूसरा काम करें न आनन्द। परसों विलियम मुझे एक अच्छा हारमोनियम खरीद कर दे गया है, अबतक उसे देखनेका वक्त ही नहीं मिला। मैं भगवान्‌का नाम लेती हूँ, तुम बैठकर सुनो—शाम कट जायगी।" यह कह उसने रतनको पुकारकर बक्स खोलनेके लिए कह दिया।

आनन्दने विस्मयसे पूछा, "भगवान्‌का नाम माने क्या गीत दीदी?"

राजलक्ष्मीने सिर हिलाकर 'हाँ' की। "दीदीको यह विद्या भी आती है क्या?"

"बहुत साधारण-सी।" फिर मुझे दिखाकर कहा, "बचपनमें इन्होंने ही अभ्यास कराया था।"

आनन्दने खुश होकर कहा, "दादा तो छिपे हुए रुस्तम हैं, बाहरसे पहचाननेका कोई उपाय ही नहीं।"

उसका मन्तव्य सुन लक्ष्मी हँसने लगी, पर मैं सरल मनसे साथ न दे सका। क्योंकि आनन्द कुछ भी नहीं समझेगा और मेरे इनकारको उस्तादके विनय-वाक्य समझ और भी ज्यादा तंग करेगा, और अन्तमें शायद नाराज भी हो जायगा। पुत्र-शोकातुर धृतराष्ट्र-विलापका दुर्योधनवाला गाना जानता हूँ, पर राजलक्ष्मीके बाद इस बैठकमें वह कुछ जँचेगा नहीं।

राजलक्ष्मीने हारमोनियम आनेपर पहले दो-एक भगवान्‌के ऐसे गीत सुनाये जो हर जगह प्रचलित हैं और फिर वैष्णव-पदावली आरम्भ कर दी। सुनकर ऐसा लगा कि उस दिन मुरारीपुरके अखाड़ेमें भी शायद इतना अच्छा नहीं सुना था। आनन्द विस्मयसे अभिभूत हो गया, मेरी ओर इशारा कर मुग्ध चित्तसे बोला, "यह सब क्या इन्हींसे सीखा है दीदी?"

"सब क्या एक ही आदमीके पास कोई सीखता है आनन्द?"

"यह सही है।" इसके बाद उसने मेरी तरफ देखकर कहा, "दादा, अब आपको दया करनी होगी। दीदी कुछ थक गई हैं।"

"नहीं भाई, मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।"

"तबीयतके लिए मैं जिम्मेदार हूँ, क्या अतिथिका अनुरोध नहीं मानेंगे?"

"माननेका उपाय जो नहीं है, तबीयत बहुत खराब है।"

राजलक्ष्मी गम्भीर होनेकी चेष्टा कर रही थी पर सफल न हो सकी, हँसीके मारे लोट-पोट हो गई। आनन्दने अब मामला समझा, बोला, "दीदी, तो सच बताओ कि आपने किससे इतना सीखा?"

मैंने कहा, "जो रुपयोंके परिवर्तनमें विद्या-दान करते हैं उनसे, मुझसे नहीं भैया। दादा इस विद्याके पाससे भी कभी नहीं फटका।"

क्षणभर मौन रहकर आनन्दने कहा, "मैं भी कुछ थोड़ा-सा जानता हूँ दीदी, पर ज्यादा सीखनेका वक्त नहीं मिला। यदि इस बार सुयोग मिला तो आपका शिष्यत्व स्वीकार कर अपनी विद्याको सम्पूर्ण कर लूँगा। पर आज क्या नहीं रुक जायँगी, और कुछ नहीं सुनायँगी?"

राजलक्ष्मीने कहा, "अब वक्त नहीं है भाई, तुम लोगोंका खाना भी तैयार करना है।"

आनन्दने निःश्वास छोड़कर कहा, "जानता हूँ कि संसारमें जिनके ऊपर भार है उनके पास वक्त कम है। पर उसमें मैं छोटा हूँ, आपका छोटा भाई। मुझे सिखाना ही होगा। अपरिचित स्थानमें जब अकेला वक्त कटना नहीं चाहेगा, तब आपको इस दयाका स्मरण करूँगा।"

राजलक्ष्मीने स्नेहसे विगलित होकर कहा, "तुम डाक्टर हो, विदेशमें अपने इस स्वास्थ्यहीन दादाके प्रति दृष्टि रखना भाई, मैं जितना भी जानती हूँ उतना तुम्हें प्यारसे सिखाऊँगी।"

"पर इनके अलावा क्या आपको और कोई फिक्र नहीं है दीदी?"

राजलक्ष्मी चुप रही। आनन्दने मुझे उद्देश कर कहा, "दादा जैसा भाग्य सहसा नजर नहीं आता।"

मैंने इसका उत्तर दिया, "और ऐसा अकर्मण्य व्यक्ति ही क्या जल्दी नजर आता है आनन्द! ऐसोंको ठीक पकड़नेके लिए भगवान् मजबूत आदमी भी दे देता है, नहीं तो वे बीच समुद्रमें ही डूब जायँ—किसी तरह घाटतक पहुँच ही न पावें। इसी तरह संसारमें सामंजस्यकी रक्षा होती है भैया, मेरी बातें मिलाकर देखना, प्रमाण मिल जायगा।"

राजलक्ष्मी भी मुहूर्त-भर निःशब्द देखती रही, फिर उठ गई। उसे बहुत काम है।

इन कुछ दिनोंके अन्दर ही मकानका काम शुरू हो गया, चीज-बस्तको एक कमरेमें बन्दकर राजलक्ष्मी यात्राके लिए तैयारी करने लगी। मकानका भार बूढ़े मुख्तीयारपर रहा।

जानेके दिन राजलक्ष्मीने मेरे हाथमें एक पोस्टकार्ड देकर कहा, "मेरी चार पन्नेकी चिट्ठीका यह जवाब आया है—पढ़कर देख लो।" और वह चली गई।

दो-तीन लाइनोंमें कमललताने लिखा है—

"सुखसे ही हूँ बहन, जिनकी सेवामें अपनेको निवेदन कर दिया है, मुझे अच्छा रखनेका भार भी उन्हींपर है। यही प्रार्थना करती हूँ कि तुम लोग कुशल रहो। बड़े गुसाईंजी अपनी आनन्दमयीके लिए सदा मङ्गल करते हैं।

—इति श्री-श्रीराधाकृष्णचरणाश्रिता, कमललता।"

उसने मेरे नामका उल्लेख भी नहीं किया है। पर इन कई अक्षरोंकी आड़में उसकी न जाने कितनी बातें छुपी रह गईं। खोजने लगा कि चिट्ठीपर एक बूँद आँसूका दाग भी क्या नहीं पड़ा है? पर कोई भी चिह्न नज़र नहीं आया।

चिट्ठीको हाथमें लेकर चुप बैठा रहा। खिड़कीके बाहर धूपसे तपा हुआ नीलाभ आकाश है, पड़ोसीके घरके दो नारियलके वृक्षोंके पत्तोंकी फाँकसे उसका कुछ अंश दिखाई देता है। वहीं अकस्मात् ही दो चेहरे पास ही पास मानों तैर आये, एक मेरी राजलक्ष्मीका—कल्याणकी प्रतिमा, दूसरा कमललताका, अपरिस्फुट, अनमन जैसे कोई स्वप्नमें देखी हुई छवि।

रतनने आकर ध्यान भंग कर दिया। बोला, "स्नानका वक्त हो गया है बाबू, माँने कहा है।"

स्नानका समय भी नहीं बीत जाना चाहिए!

फिर एक दिन सुबह हम गंगामाटी जा पहुँचे। उस बार आनन्द अनाहूत अतिथि था, पर इस बार आमन्त्रित बान्धव। मकानमें भीड़ नहीं समाती, गाँवके आत्मीय और अनात्मीय न जाने कितने लोग हमें देखने आये हैं। सभीके चेहरों-पर प्रसन्न हँसी और कुशल-प्रश्न है। राजलक्ष्मीने कुशारीजीकी पत्नीको प्रणाम

किया। सुनन्दा रसोईके काममें लगी थी, बाहर निकल आई और हम दोनोंको प्रणाम करके बोली, "दादा, आपका शरीर तो वैसा अच्छा दिखाई नहीं देता!"

राजलक्ष्मीने कहा, "अच्छा और कब दिखता था बहन! मुझसे तो नहीं हुआ, अब शायद तुम इन्हें अच्छा कर सको,—इसी आशासे यहाँ ले आई हूँ।"

मेरे विगत दिनोंकी बीमारीकी बात शायद बड़ी बहूको याद आ गई, उन्होंने स्नेहार्द्र कण्ठसे दिलासा देते हुए कहा,—"डरकी कोई बात नहीं है बेटी, इस देशके हवा-पानीसे दो दिनमें ही ये ठीक हो जायेंगे।" मेरी समझमें नहीं आया कि मुझे क्या हुआ है और किसलिए इतनी दुश्चिन्ता है।

इसके बाद नाना प्रकारके कामोंका आयोजन पूरे उद्यमके साथ शुरू हो गया। पोड़ामाटीको खरीदनेकी बातचीतसे शुरू करके शिशु-विद्यालयकी प्रतिष्ठाके लिए स्थानकी खोज तक किसी भी काममें किसीको जरा भी आलस्य नहीं।

सिर्फ मैं अकेला ही मनमें कोई उत्साह अनुभव नहीं करता। या तो यह मेरा स्वभाव ही है, या फिर और ही कुछ जो दृष्टिके अगोचर मेरी समस्त प्राण शक्तिका धीरे-धीरे मूलोच्छेदन कर रहा है। एक सुभीता यह हो गया है कि मेरी उदासीनतासे कोई विस्मित नहीं होता मानो मुझसे और किसी बातकी प्रत्याशा करना ही असंगत है। मैं दुर्बल हूँ, मैं कभी हूँ और कभी नहीं हूँ। फिर भी कोई बीमारी नहीं है, खाता-पीता और रहता हूँ। अपनी डाक्टरी विद्या द्वारा ज्यों ही कभी आनन्द हिलाने-डुलानेकी कोशिश करता है त्यों ही राजलक्ष्मी स्नेह उपहासके रूपमें बाधा देते हुए कहती है, "उन्हें ठीक करनेका काम नहीं भाई, न जाने क्यासे क्या हो जाय। तब हमें ही भोगना पड़ेगा।"

आनन्द कहता, "आपको सावधान किये देता हूँ कि जो व्यवस्था की है उससे भोगनेकी मात्रा बढ़ेगी ही, कम नहीं होगी दीदी।"

राजलक्ष्मी सहज ही स्वीकार करके कहती, "यह तो मैं जानती हूँ आनन्द, कि भाग्यने मेरे जन्म-कालमें यह दुःख कपालमें लिख दिया है।"

इसके बाद और तर्क नहीं किया जा सकता।

कभी किताबें पढ़ते हुए दिन कट जाता है, कभी अपनी विगत कहानीको लिखनेमें और कभी सूने मैदानोंमें अकेले घूमते-घूमते। एक बातसे निश्चिन्त हूँ कि कर्मकी प्रेरणा मुझमें नहीं है। लड़-झगड़कर उछल-कूद मचाकर संसारमें दस आदमियोंके सिरपर चढ़ बैठनेकी शक्ति भी नहीं और संकल्प भी नहीं। सहज ही

जो मिल जाता है, उसे ही यथेष्ट मान लेता हूँ। मकान-घर, रुपया-पैसा, जमीन व्यापार, मान-सम्मान, ये सब मेरे लिए छायामय हैं। दूसरोंकी देखा-देखी अपनी वासनाको यदि कभी कर्मबुद्धिकी उत्तेजनासे सचेत करना चाहता हूँ तो देखता हूँ कि थोड़ी ही देरमें वह फिर आँखें बन्द किये ऊँघ रही है,—हिलाने धक्के देनेपर भी हिलना-डुलना नहीं चाहती। देखता हूँ कि सिर्फ एक विषयमें उत्कण्ठातुर मन कल्पनासे तरंगित हो उठता है और वह है मुरारीपुरके दस दिनोंकी स्मृतिका आलोड़न। मानो कानोंमें सुनाई पड़ रहा है, वैष्णवी कमललताका स्नेह अनुरोध—'नये गुसाईं यह कर दो न भाई।—अरे बाप रे, सब नष्ट कर दिया! ऐसी गलती हुई जो तुमसे काम करनेके लिए कहा, अब उठो। कलमुँही पद्मा कहाँ गई, जरा पानी चढ़ा देगी, तुम्हारा चाय पीनेका समय हो गया है गुसाईं।'

उन दिनों वह खुद चायके पात्र धोकर रखती थी इस डरसे कि कहीं टूट न जायँ। उनका प्रयोजन खत्म हो गया है, तथापि क्या मालूम कि फिर कभी काममें आनेकी आशासे उसने अब भी उन्हें यत्नपूर्वक रख छोड़ा है या नहीं, जानता हूँ कि वह भागूँ भागूँ कर रही है। ठीक नहीं जानता, तो भी मनमें सन्देह नहीं है कि मुरारीपुरके आश्रममें उसके दिन हर रोज संक्षिप्त होते जा रहे हैं। एक दिन अकस्मात् शायद, यही खबर मिलेगी। यह कल्पना करते ही आँखोंमें आँसू आ जाते हैं कि वह निराश्रय, निःसम्बल पथ-पथपर भिक्षा माँगती हुई घूम रही है। भूला-भटका मन सान्त्वनाकी आशामें राजलक्ष्मीकी ओर देखता है जो सबकी उत्तम शुभचिन्ताओंके अविश्राम कर्ममें नियुक्त है—मानो उसके दोनों हाथोंकी दसों अँगुलियोंसे कल्याण अजस्र धारासे झर रहा है। सुप्रसन्न मुँहपर शान्ति और सन्तोषकी स्निग्ध छाया पड़ रही है। करुणा और ममतासे हृदयकी यमुना किनारेतक पूर्ण है—निरवच्छिन्न प्रेमकी सर्वव्यापी महिमाके साथ वह मेरे हृदयमें जिस आसनपर प्रतिष्ठित है, नहीं जानता कि उसकी तुलना किससे की जाय।

विदुषी सुनन्दाके दुर्निवार प्रभावने कुछ कालके लिए उसे जो विभ्रान्त कर दिया था, उसके दुःख परितापसे उसने अपनी पुरानी सत्ता फिरसे पा ली है। एक बात आज भी वह मेरे मानो कानोंमें कहती है कि "तुम भी कम नहीं हो जी, कम नहीं हो! भला यह कौन जानता था कि तुम्हारे पल्ले आनेके पत्थर

ही मेरा सर्वस्व पलक मारते ही छीन लेगा। उफ़! वह कैसी भयंकर बात थी! सोचनेपर भी डर लगता है कि मेरे वे दिन कैसे बीते थे। धड़कन बन्द होकर मर नहीं गई, यही आश्चर्य है!" मैं उत्तर नहीं पाता हूँ, सिर्फ चुपचाप देखता रहता हूँ।

अपने बारेमें अब उसकी जरा भी पकड़नेकी गुंजाइश नहीं है। सौ कामोंके बीच भी सौ दफा चुपचाप आकर देख जाती है। कभी एकाएक आकर नजदीक बैठ जाती है और हाथकी किताब हटाते हुए कहती है, "आँखें बन्द करके जरा सो जाओ न, मैं सिरपर हाथ फेर देती हूँ। इतना पढ़नेपर आँखोंमें दर्द जो होने लगेगा।"

आनन्द आकर बाहरसे ही कहता है, "एक बात पूछनी है, आ सकता हूँ?"

राजलक्ष्मी कहती है, "आ सकते हो। तुम्हें आनेकी कहाँ मनाई है आनंद?"

आनंद कमरेमें घुसकर आश्चर्यसे कहता है, "इस असमयमें क्या आप इन्हें सुला रही हैं दीदी?"

राजलक्ष्मी हँसकर जवाब देती है, "तुम्हारा क्या नुकसान हुआ? नहीं सोनेपर भी तो ये तुम्हारी पाठशालाके लड़कोंको पढ़ाने नहीं जायेंगे?"

"देखता हूँ कि दीदी इन्हें मिट्टी कर देंगी।"

"नहीं तो खुद जो मिट्टी हुई जाती हूँ, फिक्रीसे कोई काम-काज ही नहीं कर पाती।"

"आप दोनों ही असमय पागल हो जायेंगे," कहकर आनंद बाहर चला जाता है।

स्कूल बनवानेके काममें आनंदको साँस लेनेकी भी फुरसत नहीं है, और सम्पत्ति खरीदनेके हंगामेमें राजलक्ष्मी भी पूरी तरह डूबी हुई है। इसी समय कलकत्तेके मकानसे घूमती हुई, बहुत-से पोस्ट आफिसोंकी मुहरोंको पीठपर लिये हुए, बहुत देरमें, नवीनकी सांघातिक चिट्ठी आ पहुँची,—गौहर मृत्युशय्यापर है। सिर्फ मेरी ही राह देखता हुआ अब भी जी रहा है। यह खबर मुझे शूल जैसी चुभी। यह नहीं जानता कि यतीनके मकानसे वह कब लौटा। वह इतना ज्यादा पीड़ित है, यह भी नहीं सुना—सुननेकी विशेष चेष्टा भी नहीं की और आज एकदम शेष संवाद आ गया। प्रायः छह दिन पहलेकी चिट्ठी है, इसलिए अब वह जिन्दा है या नहीं—यही कौन जानता है। तार द्वारा खबर पानेकी

व्यवस्था इस देशमें नहीं है और उस देशमें भी नहीं। इसलिए इसकी चिन्ता व्यर्थ है। चिट्ठी पढ़कर राजलक्ष्मीने सिरपर हाथ रखकर पूछा, "तुम्हें क्या जाना पड़ेगा?"

"हाँ।"

"तो चलो, मैं भी साथ चलूँ।"

"यह कहीं हो सकता है! इस आपदके समय तुम कहाँ जाओगी?"

यह उसने खुद ही समझ लिया कि प्रस्ताव असंभव है, मुरारीपुरके अखाड़ेकी बात भी फिर वह जबान न ला सकी। बोली, "रतनको कबसे बुखार है, साथमें कौन जायगा? आनन्दसे कहूँ?"

"नहीं, वह मेरे बिस्तर उठानेवाला आदमी नहीं है।"

"तो फिर साथमें किसन जाय?"

"भले जाय, पर जरूरत नहीं है।"

"जाकर रोज चिट्ठी दोगे बोलो?"

"समय मिला तो दूँगा।"

"नहीं, यह नहीं सुनूँगी। एक दिन चिट्ठी न मिलनेपर मैं खुद आ जाऊँगी चाहे तुम कितने ही नाराज क्यों न हो।"

अवश्य राजी होना पड़ा और हर रोज खबर देनेकी प्रतिज्ञा करके उसी दिन चल पड़ा। देखा कि दुश्चिन्तासे राजलक्ष्मीका मुँह पीला पड़ गया है, उसने आँखें पोंछकर अन्तिम बार सावधान करते हुए कहा, "वादा करो कि शरीरकी अपेक्षा नहीं करोगे?"

"नहीं, नहीं करूँगा।"

"कहो कि लौटनेमें एक दिनकी भी देरी नहीं करोगे?"

"नहीं, सो भी नहीं करूँगा।"

अन्तमें बैलगाड़ी रेलवे स्टेशनकी तरफ चल दी।

आषाढ़का महीना था। तीसरे पहर गौहरके मकानके सदर दरवाजेपर जा पहुँचा। मेरी आवाज सुनकर नवीन बाहर आया और पछाड़ खाकर पैरोंके पास गिर पड़ा। जो डर था वही हुआ। उस दीर्घकाय बलिष्ठ पुरुषके प्रचण्ड कण्ठके उस छाती फाड़नेवाले क्रन्दनमें शोककी एक नई मूर्ति देखी। वह जितनी गम्भीर थी, उतनी ही बड़ी और उतनी ही सत्य। गौहरकी माँ नहीं, बहन

नहीं कन्या नहीं, पत्नी नहीं। उस दिन इस संगीहीन मनुष्यको आँसुओंकी माला पहनाकर विदा करनेवाला कोई न था तो भी ऐसा मालूम होता है कि उसे स्वजनहीन, भूषणहीन, कंगाल वेशमें नहीं जाना पड़ा, उसकी लोकान्तर यात्राके पथके लिए शेष पाथेय अकेले नवीनने ही दोनों हाथ भरकर उड़ेल दिया है।

बहुत देर बाद जब वह उठकर बैठ गया तब पूछा, "गौहर कब मरा नवीन?"

"परसों। कल सुबह ही हमने उन्हें दफनाया है।"

"कहाँ दफनाया?"

"नदीके किनारे आमके बगीचेमें। और वह उन्होंने कहा था। ममेरी बहिनके मकानसे बुखार लेकर लौटे और वह बुखार फिर नहीं गया।"

"इलाज हुआ था?"

"यहाँ जो कुछ हो सकता है सब हुआ, पर किसीसे भी कुछ लाभ न हुआ। बाबू खुद ही सब जान गये थे।"

"अखाड़ेके वह गुसाईंजी आते थे?"

नवीनने कहा, "कभी-कभी। नवद्वीपसे उनके गुरुदेव आये हैं, इसीलिए रोज आनेका वक्त नहीं मिलता था।" और एक व्यक्तिके बारेमें पूछते हुए शर्म आने लगी, तो भी संकोच दूर कर प्रश्न किया, "यहाँसे और कोई नहीं आया नवीन?"

नवीनने कहा, "हाँ, कमललता आई थी।"

"कब आई थी?"

नवीनने कहा, "हर-रोज। अन्तिम तीन दिनोंमें तो न उन्होंने खाया और न सोया, बाबूका बिछौना छोड़कर एक बार भी नहीं उठीं।"

और कोई प्रश्न नहीं किया, चुप हो रहा। नवीनने पूछा, "अब कहाँ जायेंगे, अखाड़ेमें?"

"हाँ।"

"जरा ठहरिए" कहकर वह भीतर गया और एक टीनका बक्स बाहर निकाल लाया। उसे मुझे देते हुए बोला, "आपको देनेके लिए कह गये हैं।"

"क्या है इसमें नवीन?"

"खोलकर देखिए," कहकर उसने मेरे हाथमें चाबी दे दी। खोलकर देखा कि उसकी कविताकी कापियाँ रस्सीसे बँधी हुई हैं। ऊपर लिखा है, "श्रीकान्त, रामायण खत्म करनेका वक्त नहीं रहा। बड़े गुसाईंजीको दे देना, वे इसे मठमें रख देंगे, जिससे नष्ट न होने पावे।" दूसरी छोटी-सी पोटली सूती लाल कपड़ेकी है। खोलकर देखा कि नाना मूल्यके एक बण्डल नोट हैं, और उनपर लिखा है, "भाई श्रीकान्त, शायद मैं नहीं बचूँगा। पता नहीं कि तुमसे मुलाकात होगी या नहीं। अगर नहीं हुई तो नवीनके हाथों यह बक्स दे जाता हूँ, इसे ले लेना। ये रुपये तुम्हें दे जा रहा हूँ, यदि कमललताके काममें आवें तो दे देना। अगर न ले तो जो इच्छा हो सो करना। भगवान तुम्हारा भला करे।—गौहर।"

दानका गर्व नहीं, अनुनय-विनय भी नहीं। मृत्युको आसन्न जानकर सिर्फ थोड़े-से शब्दोंमें बाल्य-बन्धुकी शुभकामना कर अपना शेष निवेदन रख गया है। भय नहीं, क्षोभ नहीं, उच्छ्वसित हाय-हायसे उसने मृत्युका प्रतिवाद नहीं किया। वह कवि था, मुसलमान फकीर-वंशका रक्त उसकी शिराओंमें था—शान्त मनसे यह शेष रचना अपने बाल्य-बन्धुके लिए लिख गया है। अबतक मेरी आँखोंके आँसू बाहर नहीं निकले थे, पर अब उन्होंने निषेध नहीं माना, वे बड़ी-बड़ी बूँदोंमें आँखोंसे निकलकर ढुलक पड़े।

आषाढ़का दीर्घ दिन उस वक्त समाप्तिकी ओर था। सारे पश्चिम आकाशमें काले मेघोंका एक स्तर ऊपर उठ रहा था। उसके ही किसी एक संकीर्ण छिद्र पथसे अस्तोन्मुख सूर्यकी रश्मियाँ लाल होकर आ पड़ीं, प्राचीरसे संलग्न शुभ्रकाय जामुनके पेड़के शिखरपर। इसीकी शाखाके सहारे गौहरकी माधवी और मालती लताओंके कुंज बने थे। उस दिन सिर्फ कलियाँ थीं। मुझे उनमेंसे ही कुछ उपहार देनेकी उसने इच्छा की थी। लेकिन चींटियोंके डरसे नहीं दे सका था। आज उनमेंसे गुच्छेके गुच्छे फूले हैं, जिनमेंसे कुछ तो नीचे झड़ गये हैं और कुछ हवासे उड़कर इर्द-गिर्द बिखर गये हैं। उनमेंसे कुछ उठा लिये,—बाल्य-बन्धुके स्वहस्तोंका शेषदान समझकर। नवीनने कहा, "चलिए, आपको पहुँचा आऊँ।"

कहा, "नवीन, जरा बाहरका कमरा तो खोलो देखूँगा।"

नवीनने कमरा खोल दिया। आज भी चौकीपर एक ओर बिछौना लिपटा हुआ रखा है, एक छोटी पेन्सिल और कुछ फटे कागजके टुकड़े भी हैं। इसी कमरेमें गौहरने अपनी स्वरचित कविता नन्दिनी सीताके दुःखकी कहानी गाकर

सुनाई थी। इस कमरेमें न जाने कितनी बार आया हूँ, कितने दिनोंतक खाया पीया और सोया हूँ और उत्सव कर गया हूँ। उस दिन हँसते हुए जिन्होंने सब कुछ सहन किया था, अब उनमेंसे कोई जीवित नहीं है। आज अपना सारा आना-जाना समाप्त करके बाहर निकल आया।

रास्तेमें नवीनके मुँहसे सुना कि गौहर ऐसी ही एक मोतियोंकी छोटी पोटली उसके लड़केको भी दे गया है। बाकी जो सम्पत्ति बची है, वह उसके ममेरे भाई-बहिनोंको मिलेगी, और उसके पिता द्वारा निर्मित मसजिदके रक्षणावेक्षणके लिए रहेगी।

आश्रममें पहुँचकर देखा कि बहुत भीड़ है। गुरुदेवके साथ बहुत-से शिष्य और शिष्याएँ आई हैं। खासी मजलिस जमी है, और हाव-भावसे उनके शीघ्र विदा होनेके लक्षण भी दिखाई नहीं देते। अनुमान किया कि वैष्णवसेवा आदि कार्य विधिके अनुसार ही चल रहे हैं।

मुझे देखकर द्वारिकादासने सम्वर्धना की। मेरे आगमनका हेतु वे जानते थे। गौहरके लिए दुःख जाहिर किया, पर उनके मुँहपर न जाने कैसा विषाद, अप्रसन्न भाव था, जो पहले कभी नहीं देखा। अन्दाज किया कि शायद इतने दिनोंसे वैष्णवोंकी परिचर्याके कारण वे श्रान्त और विपर्यस्त हो गये हैं, निश्चिन्त होकर बातचीत करनेका वक्त उनके पास नहीं है।

खबर मिलते ही पद्मा आई, उसके मुँहपर भी आज हँसी नहीं, ऐसी संकुचित-सी, मानो भाग जाये तो बचे।

पूछा, "कमललता दीदी इस वक्त बहुत व्यस्त हैं, क्यों पद्मा?"

"नहीं, दीदीको बुला दूँ।" कहकर वह चली गई। यह सब आज इतना अप्रत्याशित और असाधारण लगा कि मन ही मन शंकित हो उठा। कुछ देर बाद ही कमललताने आकर नमस्कार किया। कहा, "आओ गुसाईं, मेरे कमरेमें चलकर बैठो।"

अपने बिछौने इत्यादि स्टेशनपर ही छोड़कर सिर्फ बैग हाथमें लाया था और गौहरका वह बक्स मेरे नौकरके जिम्मे था। कमललताके कमरेमें आकर, उसे उसके हाथमें देते हुए बोला, "जरा सावधानीसे रख दो, बक्समें बहुत रुपये हैं।"

कमललताने कहा, "मालूम है।" इसके बाद उसे खाटके नीचे रखकर

पूछा, "शायद तुमने अभीतक चाय नहीं पी है ?"

"नहीं ।"

"कब आये ?"

"शामको ।"

"लाती हूँ तैयार कर अभी," कहकर वह नौकरको साथ लेकर चल दी और पद्मा भी हाथ-मुँह धोनेके लिए पानी देकर चली गई, खड़ी नहीं रही ।

फिर ख्याल हुआ कि बात क्या है ?

थोड़ी देर बाद कमललता चाय ले आई, साथमें कुछ फल-मूल, मिठाई और कुछ पकवान देवताका प्रसाद । बहुत देरसे भूखा था, फौरन ही बैठ गया ।

कुछ क्षण पश्चात् ही देवताकी सन्ध्या-आरतीके शंख और घण्टेकी आवाज सुनाई पड़ी । पूछा, "अरे, तुम नहीं गईं ?"

"नहीं मना है ।"

"मना है तुम्हें ? इसके मानी ?"

कमललताने म्लान हँसी हँसकर कहा, "मनाके माने है मना, गुसाईं । अर्थात् देवताके कमरेमें मेरा जाना निषिद्ध है ।"

आहार करनेमें रुचि न रही पूछा "किसने मना किया ?"

"बड़े गुसाईंजीके गुरुदेवने । और उनके साथ जो आये हैं, उन्होंने ।"

"वे क्या कहते हैं ?"

"कहते हैं कि मैं अपवित्र हूँ मेरी सेवासे देवता कलुषित हो जायँगे ।"

"तुम अपवित्र हो ?" विद्युत् वेगसे पूछा, "गौहरकी वजहसे ही सन्देह हुआ है क्या ?"

"हाँ इसीलिए ।"

कुछ भी नहीं जानता था, तो भी बिना किसी संशयके कह उठा, "यह झूठ है—यह असम्भव है ।"

"असम्भव क्यों है गुसाईं ?"

"यह तो नहीं बतला सकता कमललता, पर इससे बढ़कर और कोई बात मिथ्या नहीं । ऐसा लगता है कि मनुष्य-समाजमें अपने मृत्यु-पथ-यात्री बन्धुकी एकान्त सेवाका ऐसा ही घोर पुरस्कार दिया जाता है ।"

उसकी आँखोंसे आँसू आ गये । बोली, "अब मुझे दुःख नहीं है । देवता

अन्तर्यामी हैं, उनके निकट तो डर नहीं था, डर था सिर्फ तुमसे। आज मैं निर्भय होकर जी गई गुसाईं।"

"संसारके इतने आदमियोंके बीच तुम्हें सिर्फ मुझसे डर था? और किसीसे नहीं?"

"नहीं, और किसीसे नहीं, सिर्फ तुमसे था।"

इसके बाद दोनों ही स्तब्ध रहे। एक बार पूछा, "बड़े गुसाईंजी क्या कहते हैं?"

कमललताने कहा, "उनके लिए तो और कोई उपाय नहीं है। नहीं तो फिर कोई भी वैष्णव इस मठमें नहीं आवेगा।" कुछ देर बाद कहा, "अब यहाँ रहना नहीं हो सकता। यह तो जानती थी कि यहाँसे एक दिन मुझे जाना होगा, पर यही नहीं सोचा था कि इस तरह जाना होगा गुसाईं। केवल पद्माके बारेमें सोचनेसे दुःख होता है। लड़की है, उसका कहीं भी कोई नहीं है। बड़े गुसाईंजीको यह नवद्वीपमें पड़ी हुई मिली थी। अपनी दीदीके चले जानेपर वह बहुत रोवेगी। यदि हो सके तो जरा उसका ख्याल रखना। यहाँ न रहना चाहे तो मेरे नामसे रुपये दे देना—वह जो अच्छा समझेगी अवश्य करेगी।"

फिर कुछ क्षण चुपचाप कटे। पूछा, "इन रुपयोंका क्या होगा? न लोगी?"

"नहीं। मैं भिखारिन हूँ, रुपयोंका क्या करूँगी—बताओ?"

"तो भी यदि कभी किसी काममें आवें—"

कमललताने इस बार हँसकर कहा, "मेरे पास भी तो एक दिन बहुत रुपया था, वह किस काम आया? फिर भी, अगर कभी जरूरत पड़ी तो तुम किस लिए हो? तब तुमसे माँग लूँगी। दूसरेके रुपये क्यों लेने लगी?"

सोच न सका कि इस बातका क्या जवाब है, सिर्फ उसके मुँहकी ओर देखता रहा।

उसने फिर कहा, "नहीं गुसाईं, मुझे रुपये नहीं चाहिए। जिनके श्रीचरणोंमें सबको समर्पण कर दिया है, वे मुझे नहीं छोड़ेंगे। कहीं भी जाऊँ, वे सारा अभाव पूर्ण कर देंगे। मेरे लिए चिन्ता-फिक्र न करो।"

पद्माने कमरेमें आकर कहा, "नये गुसाईंके लिए क्या इसी कमरेमें प्रसाद ले आऊँ दीदी?"

"हाँ, यहीं ले आओ। नौकरको दिया ?"

"हाँ, दे दिया।"

तो भी पद्मा नहीं गई, कमरेमें इधर उधर करके बोली, "तुम नहीं खाओगी दीदी ?"

"खाऊँगी री कलमुँही, खाऊँगी। जब तू है, तब बिना खाये छुटकारा है ?"

पद्मा चली गई।

सुबह उठनेपर कमललता दिखाई नहीं पड़ी, पद्माकी जबानी मालूम हुआ कि वह ग्रामको जाती है। दिनभर कहाँ रहती है, कोई नहीं जानता। तो भी मैं निश्चिन्त नहीं हो सका, उसकी बातें याद करके डर होने लगा कि कहीं वह चली न गई हो और अब मुलाकात ही न हो।

बड़े गुसाईंजीके कमरेमें गया। सामने उन पोथियोंको रखकर बोला "गौहरकी रामायण है। उसकी इच्छा थी कि यह मठमें रहे।"

द्वारिकादासने हाथ बढ़ाकर रामायण ले ली, बोले, "यही होगा नये गुसाईं। जहाँ मठके और सब ग्रन्थ रहते हैं, वहीं उन्हींके साथ इसे भी रख दूँगा।"

कोई दो मिनटतक चुप रहकर कहा, "उसके सम्बन्धमें कमललतापर लगाये गये अपवादपर तुम विश्वास करते हो गुसाईं ?"

द्वारिकादासने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "मैं ? जरा भी नहीं।"

"तब भी उसे चला जाना पड़ रहा है ?"

"मुझे भी जाना होगा गुसाईं। निर्दोषीको दूर करके यदि खुद बना रहूँ, तो फिर मिथ्या ही इस पथपर आया और मिथ्या ही उनका नाम इतने दिनों तक लिया।"

"तब फिर उसे ही क्यों जाना पड़ेगा ? मठके कर्ता तो तुम हो, तुम तो उसे रख सकते हो ?"

द्वारिकादास 'गुरु ! गुरु ! गुरु !' कहकर मुँह नीचा किये बैठे रहे। समझा कि इसके अलावा गुरुका और आदेश नहीं है।

"आज मैं जा रहा हूँ गुसाईं," कहकर कमरेसे बाहर निकलते समय उन्होंने मुँह ऊपर उठाकर मेरी ओर ताका। देखा कि उनकी आँखोंसे आँसू गिर रहे

है। उन्होंने मुझे हाथ उठाकर नमस्कार किया और मैं प्रतिनमस्कार करके चला आया।

अपराह्न बेला क्रमशः संध्यामें परिणत हो गई, संध्या उत्तीर्ण होकर रात आई, किन्तु कमललता नजर नहीं आई। नवीनका आदमी मुझे स्टेशनपर पहुँचानेके लिए आ पहुँचा। सिरपर बैग रखे किशन जल्दी मचाकर कह रहा है—अब वक्त नहीं है—पर कमललता नहीं लौटी। पहला विश्वास था कि थोड़ी देर बाद ही आ जावेगी, पर मेरा सन्देह क्रमशः विश्वास बन गया कि वह नहीं आवेगी और शेष विदाईकी कठोर परीक्षासे मुक्त होकर वह पूर्वाह्नमें ही भाग गई है, दूसरा वस्त्र भी साथ नहीं लिया है। कल उसने भिक्षुकी वैरागिनी बताकर जो आत्म-परिचय दिया था, वह परिचय ही आज अक्षुण्ण रखा।

जानेके वक्त पद्मा रोने लगी। उसे अपना पता देते हुए कहा, "दीदीने तुमसे मुझे चिट्ठी लिखते रहनेके लिए कहा है,—तुम्हारी जो इच्छा हो वह मुझे लिखकर भेजना पद्मा।"

"पर मैं तो अच्छी तरह लिखना नहीं जानती, गुसाईं।"

"तुम जो लिखोगी मैं वही पढ़ लूँगा।"

"दीदीसे मिलकर नहीं जाओगे?"

"फिर मुलाकात होगी पद्मा, अब तो मैं जाता हूँ" कहकर बाहर निकल पड़ा।

१४

आँखें जिसे सारे रास्ते अन्धकारमें भी खोज रही थीं, उससे मुलाकात हुई रेलवे स्टेशनपर। वह लोगोंकी भीड़से दूर खड़ी थी, मुझे देख नजदीक आकर बोली, "एक टिकिट खरीद देना होगा गुसाईं—"

"तब क्या सचमुच ही सबको छोड़कर चल दीं?"

"इसके अलावा और तो कोई उपाय नहीं है।"

"सह नहीं होता कमललता?"

"यह बात क्यों पूछते हो गुसाईं, तुम तो जानते हो।"

"कहाँ जाओगी?"

"वृन्दावन जाऊँगी। पर इतनी दूरका टिकिट नहीं चाहिए। तुम ही किसी नजदीकका खरीद दो।"

"मतलब यह कि मेरा ऋण जितना भी कम हो उतना अच्छा। इसके बाद दूसरोंसे भिक्षा माँगना शुरू कर दोगी, जबतक कि पथ शेष नहीं हो। यही तो।

"भिक्षा क्या यह पहली बार ही शुरू होगी गुसाईं ! क्या कभी और नहीं माँगी ?"

चुप रहा। उसने मेरी ओर आँखें फिराकर कहा, "दो वृन्दावनका टिकिट ही खरीद दो।"

"दो चलें एक साथ ही चलें ?"

"तुम्हारा भी क्या यही रास्ता है ?"

कहा, "नहीं, यही तो नहीं है—तो भी जितनी दूरतक है, उतनी ही दूरतक सही।"

गाड़ी आनेपर दोनों उसमें बैठ गये। पासकी बेंचपर मैंने अपने हाथोंसे ही उसका बिछौना बिछा दिया।

कमललता व्यस्त हो उठी, "यह क्या कर रहे हो गुसाईं ?"

"वह कर रहा हूँ जो कभी किसीके लिए नहीं किया—हमेशा याद रखनेके लिए।"

'सचमुच ही क्या याद रखना चाहते हो ?"

"सचमुच ही याद रखना चाहता हूँ कमललता। तुम्हारे अलावा यह बात और कोई नहीं जानेगा।"

"पर मुझे तो दोष लगेगा गुसाईं।"

"नहीं, कोई दोष नहीं लगेगा—तुम मजेसे बैठो।"

कमललता बैठी, पर बड़े संकोचके साथ। कितने गाँव, कितने नगर, और कितने प्रान्तरोंको पार करती हुई ट्रेन चल रही थी। नजदीक बैठकर वह धीरे धीरे अपने जीवनकी अनेक कहानियाँ सुनाने लगी। जगह-जगह घूमनेकी कहानियाँ, मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, राधाकुण्ड-निवासकी बातें, अनेक तीर्थ भ्रमणोंकी कथाएँ और अन्तमें द्वारिकादासके आश्रममें मुरारीपुर आश्रममें आनेकी बात। मुझे उस वक्त उस व्यक्तिकी विदाके वक्तकी बातें याद आ गईं। कहा, "जानती हो कमललता, बड़े गुसाईं तुम्हारे कलंकपर विश्वास नहीं करते।"

"नहीं करते ?"

"कतई नहीं। मेरे आनेके वक्त उनकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे, बोले—

निर्लोभीको दूर करके यदि मैं यहाँ खुद बना रहूँ नये गुसाईं, तो उनका नाम लेना मिथ्या है और मिथ्या है मेरा इस पथपर आना।' मठमें वे भी न रहेंगे कमललता, और तब ऐसा निष्पाप मधुर आश्रम टूटकर बिल्कुल नष्ट हो जायगा।"

"नहीं, नहीं नष्ट होगा, भगवान् एक-न-एक रास्ता अवश्य दिखा देंगे।"

"अगर कभी तुम्हारी पुकार हो, तो फिर यहाँ लौटकर आओगी?"

"नहीं।"

"यदि वे पश्चात्ताप करके तुमको लौटाना चाहें?"

"तो भी नहीं।"

"पर अब तुमसे कहाँ मुलाकात होगी?"

इस प्रश्नका उसने उत्तर नहीं दिया, चुप रही। काफी वक्त खामोशीमें कट गया, पुकारा, 'कमललता!' उत्तर नहीं मिला, देखा कि गाड़ीके एक कोनेमें सिर रखकर उसने आँखें बन्द कर ली हैं। यह सोचकर कि सारे दिनकी थकानसे सो गई है, जगानेकी इच्छा नहीं हुई। उसके बाद फिर, मैं खुद कब सो गया, यह पता नहीं, हठात् कानोंमें आवाज आई, "नये गुसाईं!" देखा कि वह मेरे शरीरको हिलाकर पुकार रही है। बोली, "उठो, तुम्हारी साँइथियाकी ट्रेन खड़ी है।'

जल्दीसे उठ बैठा। पासके डिब्बेमें किसनसिंह था, पुकारनेके साथ ही उसने आकर बैग उतार दिया। बिछौना बाँधते वक्त देखा कि जिन दो चादरोंसे उसकी शय्या बनाई थी, उसने उनको पहलेसे ही तहकर मेरी बैंचपर एक ओर रख दिया है। कहा, "यह जरा-सा भी तुमने लौटा दिया—नहीं लिया?"

"न जाने कितनी बार चढ़ना उतरना पड़े, यह बोझा कौन उठायगा?"

"दूसरा वस्त्र भी साथ नहीं लाईं, यह भी क्या बोझा होता? एक-दो वस्त्र निकालकर दूँ?"

"तुम भी खूब हो! तुम्हारे कपड़े भिखारिणीके शरीरपर कैसे फबेंगे?"

"खैर, कपड़े अच्छे नहीं लगेंगे, पर भिखारीको भी खाना तो पड़ता है! पहुँचनेमें और भी दो-तीन दिन लगेंगे, ट्रेनमें क्या खाओगी? जो खानेकी चीजें मेरे पास हैं, उन्हें भी क्या फेंक जाऊँ,—तुम नहीं छुओगी?"

कमललताने इस बार हँसकर कहा, "अरे बाप गुस्सा हो गये! अच्छी उन्हें छुऊँगी। रहने दो उन्हें, तुम्हारे चले जानेके बाद मैं पेटभरके खा लूँगी।"

वक्त खत्म हो रहा था, मेरे उतरनेके वक्त बोली, "अब ठहरो तो गुसाईं, कोई है नहीं—आज छिपकर तुम्हें एक बार प्रणाम कर लूँ।" यह कहकर, उसने झुककर मेरे पैरोंकी धूल ले ली।

उतरकर प्लेटफार्मपर खड़ा हो गया। उस वक्त रात समाप्त नहीं हुई थी नीचे और ऊपर अंधकारके स्तरोंमें बँटवारा शुरू हो गया था। आकाशके एक प्रान्तमें कृष्ण त्रयोदशीका क्षीण चीर्ण शशि और दूसरे प्रान्तमें उषाकी आगमनी। उस दिनकी बात याद आ गई जिस दिन ऐसे ही वक्त देवताके लिए फूल तोड़ने जानेके लिए उसका साथी हुआ था। और आज!

सीटी बजाकर और हरे रंगकी लालटेन हिलाकर गार्ड साहबने यात्राका संकेत किया। कमललताने खिड़कीसे हाथ बढ़ाकर प्रथम बार मेरा हाथ पकड़ लिया। उसके कण्ठमें विनतीका जो सुर था वह कैसे समझाऊँ! बोली 'तुमसे कभी कुछ नहीं माँगा है, आज एक बात रखोगे?"

"हाँ रखूँगा" कहकर उसकी ओर देखने लगा।

कहनेमें उसे एक क्षणकी देर हुई, बोली, "जानती हूँ कि मैं तुम्हारे कितने आदरकी हूँ। आज विश्वासपूर्वक उनके पाद-पद्मोंमें मुझे सौंपकर तुम निश्चिन्त होओ, निर्भय होओ। मेरे लिए सोच-सोचकर अब तुम अपना मन खराब मत करना गुसाईं, तुम्हारे निकट मेरी यही प्रार्थना है।"

ट्रेन चल दी। उसका वही हाथ अपने हाथमें लिये कुछ दूर अग्रसर होते-होते कहा, "कमललता, तुम्हें मैंने उन्हींको सौंपा, वे ही तुम्हारा भार लें। तुम्हारा पथ, तुम्हारी साधना निरापद हो—अपनी कहकर अब मैं तुम्हारा असम्मान नहीं करूँगा।"

हाथ छोड़ दिया, गाड़ी दूरसे दूर जाने लगी। गवाक्षपथसे देखा, उसके झुके हुए मुँहपर स्टेशनकी प्रकाश-माला कई बार आकर पड़ी और फिर अन्धकारमें मिल गई। सिर्फ यही मालूम हुआ कि हाथ उठाकर मानो वह मुझे शेष नमस्कार कर रही है।

समाप्त